समणसुत्तं
श्रमणसूत्रं

जैन दर्शन सार

(ESSENCE OF JAINISM)

(दोहा, प्राकृत, संस्कृत, हिंदी, English)

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

दोहा लेखन - हेमंत लोढ़ा

समणसुत्तं

लेखक (दोहा)

हेमंत लोढ़ा

मो. : 9325536999
lodhah@gmail.com
www.hemantlodha.com

सृजन बिंब प्रकाशन
३०१, सनशाइन - २, के. टी. नगर,
काटोल रोड, नागपुर - ४४००१३
मोबा. : 8208529489 (रीमा)
9373271400 (अविनाश)

ई-मेल :
srijanbimb.2017@gmail.com

मुद्रक :
कवितास प्रिंट ओ पॅक
नागपूर

ISBN :
978-81-941621-4-8

प्रथम संस्करण : 2019

मूल्य : ₹ ३००/- © सर्वाधिकार लेखकाधीन

SAMANSUTTAM : DOHA By Hemant Lodha

भूमिका

'समणसुत्तं' नामक इस ग्रंथ की संरचना आचार्य विनोबाजी की प्रेरणा से १९७५ में हुई है। जैन दर्शन प्राचीन, आत्मवादी, अनीश्वरवादी, स्वतंत्र तथा वैज्ञानिक दर्शन है। जैन दर्शन विगत में निर्ग्रंथ, आर्यधर्म, श्रमणधर्म, अर्हत्धर्म आदि नामों से भी जाना गया है। जैन धर्म का अर्थ है जिनोपदिष्ट या जिनप्रवर्तित कल्याण मार्ग। 'जिन' वे कहलाते हैं जिन्होंने अपने देहगत और आत्मगत विकारों पर विजय प्राप्त कर ली है। जैन धर्म का लक्ष्य पूर्ण वीतराग विज्ञानता की प्राप्ति है। यह वीतरागता सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चरित्ररूपी रत्नत्रय की समनवित् साधना से उपलब्ध होती है।

इस ग्रंथ का प्रारंभिक संकलन जिनेन्द्र वर्णीजी ने किया है। भगवान् महावीरजी के २५सौवे निर्वाण महोत्सव के वर्ष में दिल्ली में इस ग्रंथ की सर्वमान्यता के लिए संगीती का आयोजन हुआ। अधिवेशन दो दिवस तक, चार बैठकों में संपन्न हुआ। चारों बैठकों की अध्यक्षता चारों आम्नयों के मुनि श्री सुशीलकुमारजी, मुनि श्री नथमल जी, मुनि श्री जनक विजयजी तथा उपाध्याय मुनि श्री विद्यानंद जी ने की। चारों बैठकों को आचार्य श्री तुलसी जी, आचार्य श्री धर्मसागरजी, आचार्य विजयसमुद्रसूरीजी एवं आचार्य देशभूषणजी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

सर्वप्रथम एक संकलन जैन धर्मसागर नाम से प्रकाशित किया गया। इसके संशोधन व सुझावों में पं. दलसुखभाई मालवनिया, डॉ. हुकुमचंदजी भारिल्ल, डॉ. कमलचंद सोगानी का सहयोग रहा। गाथाओं की शुद्धि में डॉ. उपाध्ये, डॉ. दरबारीलालजी कोठिया, पं. कैलाशचंद्रजी कोठिया, पं. कैलाशचंद्रजी शास्त्री, पं. बेचरदासजी दोशी और मुनि नथमलजी के सहयोग को भुलाया नही जा सकता।

ग्रंथ में ४ खंड, ४४ प्रकरण व ७५६ गाथाएँ है। गाथाओं का चयन प्राचीन मूल ग्रंथों से किया गया है। अतः यह समणसुत्तं (श्रमणसूत्रम) आगमवत् स्वतः प्रमाण है। प्रथम खंड ज्योतिर्मुख, द्वितीय मोक्षमार्ग, तृतीय तत्त्व दर्शन व चतुर्थ खंड स्याद्वाद है। इन चारों खंडों में जैन धर्म का सर्वांगीण संक्षिप्त परिचय आ गया है। यह सर्वसम्मत प्रतिनिधिक ग्रंथ है।

हेमंत लोढ़ा

About SamanSuttam (Wikipedia)

SamanSuttam is the religious text created in 1974 by a committee consisting of representatives of each of the major sects of Jainism to reconcile the teachings of the sects. After a gap of about nearly two thousand years following composition of Tattvartha Sutra by Acharya Umasvati this was the first text to be recognized by all Jain sects. At Umaswati's time, although multiple orders existed, there was no clear sectarian division. By the 20th century however, Jainism had gradually been divided into several sects.

For someone to compile a text at this time, and for it to be approved by all sects, was an exceptional event. Kshullak JinendraVarni compiled a book, drawing from the original Prakrit (Ardhamagadhi etc.) texts, and as a result of efforts undertaken by VinobaBhave. It was critically examined by several monks of different orders including Muni (now Acharya) Vidyanandaji, Muni (later Acharya) Sushil Kumarji, Muni Janakavijaya, Muni Nathamal (later Acharya Mahaprajna), as well as scholars like A.N. Upadhye, Darbari Lal Kothia, AgarachandNahta, et al. Finally in an assembly on 12

December 1974 it was approved by all. The text of SamanSuttam (its title referring to sayings of Sramans) includes 44 chapters with topics such as Mangal Sutra (on auspiciousness), Atma Sutra (on the soul), Moksha Marga Sutra (on the path to liberation), and is divided into four sections. Its 756 verses are compiled from Jain scriptures.

Whether it has been widely distributed and taught among sects, in place of traditional texts (which vary to the extent an oral tradition has been considered lost or not), Jain scholars have maintained that this work embodies essential principles of the Jain religion and philosophy, comprehensive as a textbook (though relatively brief as a body of work), the SamanSuttam (like the Tattvartha Sutra) is universal to the Jain religion, for what its followers share in common.

Dear Readers

Though I am born in Jain family, I was not much aware of Jainism till I attained age of 60. Few years back I learned how to write Doha from my doha Guru Shri Avinash Ji Bagde. Inspired by Pandit Aditya Tiwari, to understand Bhagvat Geeta and Asthavakra Maha Geeta in depth I have converted 700 & 206 sloks respectively in Doha format and published the book Bhagvad Geeta Roop Kavita and Ashtavakra Maha Geeta Roop Kavita.

After my father expired I found Samansuttam book in his collection which was first printed in1975. The book have 756 sloks in Prakrit, Sanskrit and Hindi translation. To understand more deeply I started converting in Doha. My son Pratik also took interest in reading the same but he wanted in English. I searched few translations on internet and selected best out of it.

The book is formatted in following sequence Doha (written by me), Prakrit and Sanskrit as verbatim from said book, Hindi and English duly edited from said book and internet respectively. I don't claim this to be the most authentic work however reading this book one can have primary understanding in Jainism and can instigate someone to read our aagams in depth.

I bow to Panch Parmesthi for passing on this sacred knowledge. I express my thanks to Shri. Avinash Ji Bagde, Smt. Kusum ji Patoria Jain, Shri. Bhag Chandra Ji Jain, Smt. Reema Ji Diwan Chadha, Madhu Singhi Ji and Kavita Tibdiwal ji for pains takingly editing the entire book. I thank my father and mother for giving me initial Jain teachings, my wife for continuous support and entire printing and editing staff for their untiring efforts.

I seek forgiveness for any mistake and ignorance while releasing this book.

- Hemant Lodha

30th March, 2019 Nagpur.

प्रिय पाठकों

यद्यपि मेरा जन्म जैन कुल में हुआ लेकिन ६० वर्ष की आयु पाने तक भी मुझे जैन दर्शन के बारे में नगण्य ज्ञान था। ३-४ साल पहले मैने श्री अविनाशजी बागड़े से दोहा बनाना सीखा व उस समय पंडित आदित्य जी तिवारी से प्रेरित होकर भगवद् गीता पढ़ने व समझने का भाव मन में आया। उसी धुन मे भगवद्गीता के ७०० व अष्टावक्रमहागीता के २०६ श्लोकों का हिंदी दोहों में रूपांतरण करके श्री भगवद्गीता रूपकविता व अष्टावक्रमहागीता रूप कविता का प्रकाशन किया.

मेरे पिताजी का देवलोक होने के बाद मुझे उनकी पुस्तकों में १९७५ में छपी समणसुत्त पुस्तक मिली जिसमें ७५६ प्राकृत व संस्कृत श्लोको में जैन दर्शन का सार दिया गया है। जैन दर्शन को गहराई में समझने के लिये मैने हर श्लोक का हिंदी दोहों में रूपांतरण करने का प्रयास किया और आज ये पुस्तक आपके हाथ में है। मेरे पुत्र प्रतीक की रुचि भी इसमें जागी पर उसने अंग्रेज़ी भाषा में रूपांतरण की माँग की। इंटरनेट पर ढूँढने से कुछ साइट्स पर अंगेज़ी में रूपांतरण मिल गया।

यह पुस्तक की रचना इस प्रकार है। हर श्लोक का दोहा (स्वलिखित), प्राकृत व संस्कृत में श्लोक तथा हिंदी अनुवाद (मूलपुस्तक से) व अंग्रेज़ी में व्याख्या इंटरनेट से। मेरा ऐसा कोई दावा नहीं है कि यह पुस्तक पूर्ण रूप से जैन आगमानुसार प्रमाणित है लेकिन मेरा मानना है कि इस पुस्तक को पढ़ने से जैन दर्शन व आगम के बारें में प्राथमिक जानकारी मिल सकेगी व पाठकों में जैन आगम क़ो गहराई से जानने की रुचि जागृत होगी।

मै पंचपरमेष्ठी को नमन करता हूँ जिन्होंने हमें यह (श्रुतज्ञान) दिया। मैं श्री अविनाश जी बागड़े, श्री भागचन्द्र जी जैन, श्रीमती कुसुम पटोरिया जैन, रीमा जी दीवान चड्ढा, मधु सिंघी जी व कविता तिबडीवाल जी का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने पुस्तक में संशोधन किये। मैं अपने माता-पिता का आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी वजह से मुझे जैन कुल में जन्म मिला व जैन धर्म की प्राथमिक शिक्षा मिली। मैं अपनी पत्नी प्रभा जी व परिवार का आभार व्यक्त करता हूँ जिनका मुझे पूर्ण सहयोग मिला। मैं प्रिंटिंग स्टाफ का धन्यवाद् करता हूँ जिनकी कड़ी मेहनत के बिना यह पुस्तक संभव नहीं थी।

इस पुस्तक के लिखने व प्रकाशन में जाने -अनजाने में हुई सभी त्रुटियों के लिए क्षमा चाहता हूँ।

मिच्छामिदुक्कडम

(नागपुर, १२ जून २०१९) **– हेमंत लोढ़ा**

पुरोवाक

जैसा हम सभी भलीभांति जानते हैं, समणसुत्तं आचार्य विनोबाजी की पुनीत प्रेरणा से सन् १९७५ में श्री जिनेन्द्र वर्णी के संयोजकत्व में संकलित किया गया था। चार बैठकों में उसे अन्तिम रूप दिया गया। मैं भी एक सम्मानित सदस्य के रूप में उसमे उपस्थित था।

इसी समणसुत्तं की लोकप्रियता एवं सर्व सम्प्रदायों की सहभागिता तथा निर्विवाद पूर्वक स्नेहिल स्वीकृति की यही प्रमाण है कि उसके अनेक संस्करण अभी तक प्रकाशित हो चुके है और विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी।

इन अनुवादों की श्रृंखला में श्री हेमन्त लोढ़ा का भी अनुवाद संयोजित हो गयहै जिसे उन्होंने दोहा में प्रस्तुत किया है। यह दोहा संस्कृत के अनुषृय इन्द्र का समरूप है। प्राकृत सहित्य में उसी को गाथा नाम से जाना जाता है। अपभ्रंश में यही दुहा नाम से अभिहित है। आचार्य हेमचंद्र ने अपने शब्दानुशासन में उसके दोहक, उपदोहक आदि में है की चर्चा की है। प्राकृत पैललाभ में उसके २३ भेदों का भी उल्लेख हुआ है। रीतिकाल में अनेक सतसइयाँ की निर्माण गाथा सतसई तथा आर्या सवृशनी के आदर्श पर हुआ है जिसके लिए दोहा शब्द अधिक उपयुक्त था। मुक्तक काव्य में भी वह किसी सीमातक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

श्री. हेमंत लोढ़ा ने समणसुत्तं का अनुवाद इन्ही दोहा बद्ध में बडे सुन्दर ढंगसे किया है विस्तृत विषय की संक्षेप में प्रस्तुत करना सरल नही होता। लोढ़ाजी ने उसे अपनी प्रतिभा से सरल और प्रभावक बना दिया है। उनके इस अनुवाद को यथावश्यक मैंने परिमार्जित कर दिया है। श्री लोढ़ा जी व्यावसायिक रूप से चार्टर्ड अकांउंटट है पर उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग साहित्यिक क्षेत्र में भी किया है। उनका यह प्रयास अभिनंदनीय है, प्रशंसनीय है। उनके अभिनव प्रयास से साहित्यिक क्षेत्र इसी तरह और समृद्ध होता रहेगा।

महामहोपाध्याय, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त
प्रोफेसर भागचंद्र जैन 'आस्कर'
भूतपूर्व अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग
नागपुर विश्व विद्यालय, नागपुर
९४२१३६३९२६

दि. ३०.४.२०१९

अभिमत

भगवान महावीर के उपदेशों का गणधरदेव के द्वारा द्वादशांग आगम के रूप में गुम्फन हुआ। यह आगम अत्यंत विशाल था, जिसका अनुमान परम्पराप्राप्त पदसंख्या व विषयसूची से होता है। द्वादशांग आगम के विलुप्त हो जाने पर भी उसके आधार पर लिखा गया जैनों का धार्मिक साहित्य विपुल है। इसमें जीवन के सभी पक्षों को विषय बताया गया है। अहिंसा का आचरण ही उसका मुख्य व मूल तत्त्व है। तत्त्वज्ञान उसी के संतोषण व संवर्द्धन के लिए है। दोनों सम्प्रदायों के इस व्यापक व विशाल साहित्य को कुरान, बाईबल आदि की भांति एक ग्रंथ में रखना कठिन था, किन्तु आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा से 'समणसुत्तं' प्रकाश में आया, जिसमें चवालीस अध्याय व सात सौ छप्पन गाथाएँ हैं।

इन गाथाओं का श्री हेमंत लोढ़ाजी ने दोहा छंद में हिंदी अनुवाद किया है। दोहा एक अत्यंत लोकप्रिय छंद है। अपभ्रंश काल में यह 'दूहा' नाम से प्रसिद्ध रहा है। प्राचीन राजस्थानी में भी 'द'हा छंद' लोकप्रिय रहा है। 'ढोला मारु रा दूहा' इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। कबीर और रहीम आदि के दोहे लोगों की जुबान पर रहे हैं। प्रशंसनीय है कि श्री लोढ़ाजी ने गाथाओं के अनुवाद के लिए इसी गाथा छंद को चुना है। गाथाओं के वर्ण्यविषय को लघुकाय दोहा छंद के सीमित अक्षरों में निबद्ध करना एक कठिन कार्य है। इसे श्री लोढ़ाजी ने संपन्न किया है।

अनुवाद अपने आप में एक क्लिष्ट कार्य है, फिर धार्मिक ग्रंथ का अनुवाद तो उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि उसके लिए पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान अनिवार्य है। इस अनुवाद को मैंने आद्योपांत पढ़ा है। अनुवाद समुचित व उत्तम हैं।

आशा है, यह अनुवाद जैन व जैनेतर सभी पाठकों को गाथा के हार्द को समझने में सहयोगी होगा। उनके कण्ठाग्र में विराजमान होगा।

इत्यलम्।

डॉ. कुसुम पटोरिया
पूर्व प्रोफेसर संस्कृत विभाग
नागपुर विश्वविद्यालय

Index- अनुक्रम

Part I, Source of Illumination – प्रथमखण्ड : ज्योतिर्मुखगाथाएँ

1. Precepts on the Auspicious - मंगलसूत्र 1-8
2. Precepts on the Jina's Teachings - जिनशासनसूत्र 9-12
3. Precepts on the Religious Order - संघसूत्र 13-16
4. Precepts on the Scriptural Exposition - निरुपणसूत्र 17-23
5. Precepts on the Transmigratory Cycle - संसारचक्रसूत्र 24-29
6. Precepts on the Karmas - कर्मसूत्र 30-35
7. Precepts on the Wrong faith - मिथ्यात्वसूत्र 36-37
8. Precepts on the Renunciation of Attachment - राग–परिहरसूत्र 38-43
9. Precepts on the Religion - धर्मसूत्र 44-63
10. Precepts on the Self-restraint - संयमसूत्र 64-72
11. Precepts on the Non-possessiveness - अपरिग्रहसूत्र 73-76
12. Precepts on the Nonviolence - अहिंसासूत्र 77-83
13. Precepts on the Vigilance - अप्रमादसूत्र 84-88
14. Precepts on the Education -शिक्षासूत्र 89-92
15. Precepts on the Soul - आत्मसूत्र 93-100

Part II, Path of Liberation – द्वितीयखंड : मोक्षमार्ग

16. Precepts on the Path of Liberation - मोक्षमार्गसूत्र 101-108
17. Precepts on Three Jewels - रत्नत्रयसूत्र 109-114
18. Precepts on Right Faith - सम्यग्दर्शनसूत्र 115-127
19. Precepts on Right Knowledge -सम्यग्ज्ञानसूत्र 128-136
20. Precepts on Right Conduct - सम्यक्चारित्रसूत्र 137-149
21. Precepts on Spiritual Realization - साधनासूत्र 150-153
22. Precepts on the Two Paths of Religion - द्विविध धर्म सूत्र 154-156
23. Precepts on Householder's Religion - श्रावकधर्मसूत्र 157-174

24. Precepts on Religion of Monks - श्रमणधर्मसूत्र 175-188
25. Precepts on Vows - व्रतसूत्र 189-198
26. Precepts on Carefulness and Self Control - समिति-गुप्तिसूत्र 199-215
27. Precepts on Obligatory Duties - आवश्यकसूत्र 216-226
28. Precepts on Penance - तपसूत्र 227-250
29. Precepts on Meditation - ध्यानसूत्र 251-261
30. Precepts on Reflection - अनुप्रेक्षासूत्र 262-274
31. Precepts on Soul-colouring - लेश्यासूत्र 275-283
32. Precepts on Spiritual Progress - आत्मविकाससूत्र 284-294
33. Precepts on Passionless Death - संलेखनासूत्र 295-305

Part III, Metaphysics – तृतीयखण्ड: तत्त्वदर्शन

34. Precepts on Fundamental - तत्त्वसूत्र 306-323
35. Precepts on Substance - द्रव्यसूत्र 324-337
36. Precepts on Universe - सृष्टिसूत्र 338-342

Part IV, Theory of Relativity – चतुथर्खण्ड: स्याद्वाद

37. Precepts on Non Absolutism - अनेकान्तसूत्र 343-349
38. Precepts on Valid Knowledge - प्रमाणसूत्र 350-359
39. Precepts on Viewpoint - नयसूत्र 360-376
40. Precepts on Theory of Relativity - and Seven Predictions - स्याद्वाद व सप्तीभंगीसूत्र 377-383
41. Precepts on Reconciliation or Synthesis - समन्वयसूत्र 384-393
42. Precepts on Installation - निक्षेपसूत्र 394-398
43. Conclusion - समापन 399-401
44. Hymn to Mahavira - वीरस्तवन 402-405

सृजनबिंब से...

अपनी साहित्यिक अभिरुचि को मानवीय मूल्यों को समर्पित करते हुये धार्मिक ग्रंथो में नीहित सारभर्भित बातों का दोहों में रुपांतरण के लिये कृत संकल्प आदरणीय हेमंत लोढ़ा जी श्रीमदभगवत गीता, अष्ट्रावक्र महागीता के बाद जैन दर्शन को रेखांकित करने वाले पावन ग्रंथ "श्रमण सूत्रं" का दोहानुवाद "समणसुत्तं" लेकर सार्वजनिक हो रहे है।

सृजन बिंब प्रकाशन से लेखक नहीं अपितु मार्गदर्शक और संबल बनकर जुड़े हुये हेमंत जी को भविष्य के उनके सभी प्रकाशन कर्मों के प्रति हमारी मनःपूर्वक शुभकामनायें ।

- अविनाश बागड़े
रीमा दीवान चड्ढा

प्रकरण १ - मंगलसूत्र

Chapter 1 - Percepts On The Auspicious

नमन करूँ अरिहंत-सिद्ध, आचारज नवकार ।
उपाध्याय को भी नमन, नमो साधु शत्बार ।।१.१.१.१।।
पंच नमन जब सब करे, हो पापों से पार ।
मंगल में है सकल यही, मंगल प्रथम विचार ।।१.१.२.२।।

णमो अरहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।
एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।२।।

नमः अर्हद्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः नमः आचार्येभ्यः ।
नमः उपाध्यायेभ्यः । नमो लोके सर्वसाधुभ्यः ।।१।।
एष पंचनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः ।
मङ्गलेषु च सर्वेषु, प्रथमं भवति मङ्गलम् ।।२।।

अर्हतों को नमस्कार । सिद्धों को नमस्कार । आचार्यों को नमस्कार । उपाध्यायों को नमस्कार । लोकवर्ती सर्वसाधुओं को नमस्कार ।।

यह पंच नमस्कार मन्त्र सब पापों का विनाश करनेवाला है और समस्त मंगलों में प्रथम मंगल है ।

I pay homage to embodied pure souls who have won their all enemies.(Arihantas); I pay homage to bodiless pure souls (Siddhas); I pay homage to the Heads of the saints (Acharyas); I pay homage to the preceptors in the order of saints (Upadhyayas); I pay homage to all saints (Sadhus) in the universe. (1)

This five homages (Pamcha-namokara-Mantra) is destructive of all sins and is the first bliss (mangal) of all the blisses (mangalas). (2)

मंगल हैं अरिहंत–सिद्ध, संत भी मंगल मान ।
केवलि पथ ही मंगलम्, चल कर उस पर जान ।।१.१.३.३।।
अरिहंत उत्तम लोक में, सिद्ध है उत्तम लोक ।
साधु लोक में उत्तम है, जिन पथ उत्तम लोक ।।१.१.४.४।।
शरण जाऊँ अरिहंत की, शरण सिद्ध की जाय ।
साधु की मैं शरण लूँ, जिन पथ शरण उपाय ।।१.१.५.५।।

अरहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं । साहू मंगलं । ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगल ।।३।।
अरहंता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।।४।।
अरहंते सरणं पव्वज्जामि । सिद्धे सरणं पव्वज्जामि ।
साहू सरणं पव्वज्जामि । केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।।५।।

अर्हन्तः मङ्गलम् । सिद्धाः मङ्गलम् । साधवः मङ्गलम् ।
केवलिप्रज्ञप्तः धर्मः मङ्गलम् ।।३।।
अर्हन्तः लोकोत्तमाः । सिद्धाः लोकोत्तमाः । साधव लोकोत्तमाः ।
केवलिप्रज्ञप्तः धर्मः लोकोत्तमः ।।४।।
अर्हतः शरणं प्रपद्ये । सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । साधून् शरणं प्रपद्ये ।
केवलिप्रज्ञप्तं धर्म शरणं प्रपद्ये ।।५।।

अर्हत् मंगल हैं । सिद्ध मंगल हैं । साधु मंगल हैं । केवलिप्रणीत धर्म मंगल है । अर्हत् लोकोत्तम हैं । सिद्ध लोकोत्तम हैं । केवलि–प्रणीत धर्म लोकोत्तम है । अर्हतों की शरण लेता हूँ । सिद्धों की शरण लेता हूँ । साधुओं की शरण लेता हूँ । केवलि–प्रणीत धर्म की शरण लेता हूँ ।

The Embodied pure and perfect souls (Arhats) are auspicious; Bodiless pure souls (Sidhas) are auspicious (Mangal); (3)

Saints (Sadhus) are auspicious (Mangal); The religion promulgated by omniscient (Kevali) is auspicions (Mangal). Embodied pure souls are best in the universe; Bodiless pure souls are best in universe; Saints (Sadhus) are best in universe; and religion promulgated by kevali is best in the universe. (4)

I take refuge under the Embodied pure souls (Arihants);
I take refuge under the bodiless pure souls(Siddhas);
I take refuge under saints; I take refuge under the religion promulgated by the omniscient (kevali). (5)

ध्यान पंच परमेष्ठी, मंगल उत्तम लोक ।
नर-सुर ज्ञानी पूजते, ऐसे वीर त्रिलोक ।।१.१.६.६।।

झायहि पंच वि गुरवे, मंगल चउ-सरण-लोय-परियरिए ।
णर-सुर-खेयर-महिए, आराहण-णायगे वीरे ।।६।।

ध्यायत पञ्च अपि गुरून्, मङ्गल-चतुः शरण-लोकपरिकरितान्
नरसुरखेचरमहितान् आराधननायकान् वीरान् ।।६ ।।

पंच परमेष्ठी का ध्यान करें। लोक में यही चार शरण मंगल हैं। नर सुर-खेचर (आकाशगामी विद्याधरों) से पूजित हैं। आराधना को जानने वाले हैं।

Meditate on five great teachers, who are best in universe; who are the conquers of the worst) enemies called Karmas; who are adored by human-beings.(6)

कर्म जो घातक काट ले, सूर्य त्रिलोक समान।
अरिहंत ज्ञानी परम सुखी, अनन्त जय सम्मान ।।१.१.७.७।।

घण-घाइ-कम्म-गहणा, तिहुवण-वर-भव्व-कमल-मत्तंडा।
अरिहा अणंत-णाणे, अणुवम-सोक्खा जयंतु जए ।।७।।

घनघातिकर्ममथनाः, त्रिभुवनवरभव्यकमलमार्तण्डाः।
अर्हाः (अर्हन्तः) अनन्तज्ञानिनः, अनुपमसौख्या जयन्तु जगति।।७।।

सभी घातक कर्मों का अंत करने वाले तीनों लोकों में श्रेष्ठ भव्य-कमलों के लिए सूर्य (मार्तण्ड) हैं। अरिहंत जो अनंत ज्ञानी व परम सुखी हैं, उनकी जगत में जय हो।

Let the embodied pure souls, who have destroyed all the intense karmas; who are like suns that belonging to all the three Universes; who are endowed with infinite knowledge and bliss-be ever victorious in the universe. (7)

आठों कर्मों से परे, मरण-जन्म बिन ज्ञान।
सकल तत्त्व के दृष्टा सिद्ध, सिद्धि करो प्रदान ।।१.१.८.८।।

अट्ठ-विह-कम्म-वियला, णिट्ठिय-कज्जा पणट्ठ-संसारा।
दिट्ठ-सयलत्थ-सारा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।८।।

अष्टविधकर्मविकलाः, निष्ठितकार्याः प्रणष्टसंसाराः।
दृष्टसकलार्थसाराः, सिद्धाः सिद्धिं मम दिशन्तु ।।८।।

अष्ट कर्मों से रहित, कृतकृत्य, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त तथा सकल तत्त्वार्थ के द्रष्टा सिद्ध मुझे सिद्धि प्रदान करें।

May Bodiless pure souls (SIDDHAS) who are devoid of all the eight karmas; who is free from the vicious circle of transmigration; and who perfectly perceive the significance of all the metaphysics (Sakal-Tatvartha) bless me with Salvation. (8)

व्रत पालन पाँचों करें, समयरूप श्रुत ज्ञान।
आचार्य गुण से भरे, कृपा करो मम दान ।।१.१.९.९।।

पंच-महव्वय-तुंगा, तक्कालिय-सपर-समय-सुदधारा।
णाणा-गुण-गण-भरिया, आइरिया मम पसीदंतु ।।९।।

पञ्चमहाव्रततुङ्गाः, तत्कालिकस्वपरसमयश्रुतधाराः।
नानागुणगणभरिता, आचार्या मम प्रसीदन्तु ।।९।।

पाँच व्रतों से उन्नत व स्व-पर श्रुत ज्ञान के ज्ञाता अनेक गुणों से परिपूर्ण आचार्य मुझ पर प्रसन्न हों।

May the heads of the saints (Acaryas) – who are highly elated owing to the adoption of five full vows, who are well conversant with the scriptures that deal with pure and impure souls; and who are full of various attributes be pleased with me.(9)

ज्ञानहीन चहुँ ओर हैं, करते ज्ञान प्रकाश।
उपाध्याय दो सत्य गति, भटकूँ ना आकाश ।।१.१.१०.१०।।

अण्णाण-घोर-तिमिरे, दुरंत-तीरम्हि हिंडमाणाणं।
भवियाणज्जोययरा, उवज्झया वर-मदिं देंतु ।।१०।।

अज्ञानघोरतिमिरे, दुरन्ततीरे हिण्डमानानाम् ।
भव्यानाम् उद्योतकरा, उपाध्याया वरगतिं ददतु ।।१०।।

अज्ञान रूपी घोर अंधकार में जहाँ किनारा प्राप्त करना कठिन है उसमें घूमते हुए भव्यों को ज्ञान का प्रकाश देने वाले उपाध्याय मुझे, उत्तम मति प्रदान करें।

May the great saints (Upadhyaya), who are enlightened souls, capable of attaining salvation, -bless me with light of wisdom .(10)

शीलरूप है राग नहीं, यश का है अंबार ।
विनय अलंकृत जीवन है, साधु सुखद मम् वार ।।१.१.११.११।।

थिर-धरिय-सील-माला, ववगय-राया जसोह-पडिहत्था ।
बहु-विणय-भूसियंगा, सुहाइं साहू पयच्छतु ।।११।।

स्थिरधृतशीलमाला व्यपगतरागा यशओघप्रतिहस्ताः ।
बहुविनयभूषिताङ्गाः, सुखानि साधवः प्रयच्छन्तु ।।११।।

शीलरूपी माला स्थिर रूप से धारण करने वाले, रागरहित, यशस्वी, विनय से भूषित, यश से परिपूर्ण तथा विनयशील साधु मुझे सुख प्रदान करें।

May the saints who are ever adorable with the moral conduct and character, who are un-attached; who are extremely renowned; and whose bodies are decorated with excellent modesty bless me with bliss. (11)

अरिहंत,सिद्ध आचार्य हैं, उपाध्याय, मुनि सार ।
पंचाक्षर मिलकर सदा, पंच परम ओंकार ।।१.१.१२.१२।।

अरिहंता असरीरा, आयरिया तह उवज्झया मुणिणो ।
पंचक्खर-णिप्पण्णो, ओंकारो पंच-परमेट्ठी ।।१२।।

अर्हन्तः अशरीराः, आचार्या उपाध्याय मुनयः ।
पञ्चाक्षरनिष्पन्नः, ओङ्कारः पञ्च परमेष्ठिनः ।।१२।।

अरिहंत, अशरीरी (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय तथा मुनि- इन पाँचो के प्रथम पाँच अक्षरों (अ+अ+आ+उ+म्) को मिलाकर ॐ बनता है जो पंचपरमेष्ठी का द्योतक है।

Arihant, Asariri, (Siddha) Acharya, Upadhyaya and Munis, the five supremebeings are found in this word OM. (12)

ऋषभ, अजित, संभव श्री, अभिनंदन, सुमति नाथ ।
पदम प्रभु, सुपारस नमु, चन्द्र प्रभु सर हाथ ।।१.१.१३.१३।।
सुविधि, शीतल श्रेयांस श्री, वासुपूज्य का हाथ ।
विमल, अनन्त, धर्म भगवन्त, वंदन शांति नाथ ।।१.१.१४.१४।।
कुन्थु नाथ, अर, मल्लि श्री, सुव्रत, नमीसुजान ।
अरिष्टनेमि, पारस नमन, महावीर भगवान ।।१.१.१५.१५।।

उसह-मजिय च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च ।
पउम-प्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।१३।।
सुविहिं च पुप्फयंत, सीयल सेयं च वायुपुज्जं च।
विमल-मणंत भयव धम्मं संतिं च वंदामि ।।१४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लि च सुव्वयं च मणिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढामाणं च ।।१५।।

ऋषभमजितं च वन्दे, संभवमभिनन्दनं च सुमतिं च ।
पद्मप्रभं सुपार्श्वं, जिनं च चन्द्रप्रभं वन्दे ।।१३।।
सुविधिं च पुष्पदन्तं, शीतलं श्रेयांसं वासुपूज्यं च ।
विमलम् अनन्तभगवन्तं, धर्मं शान्तिं च वन्दे ।।१४।।
कुन्थुंचजिनवरेन्द्रम्, अरं च मल्लिं च सुव्रतं च नमिम् ।
वन्दे अरिष्टनेमिं, तथा पार्श्वं वर्धमान च ।।१५।।

मैं ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभु, सुपार्श्व तथा चन्द्रप्रभु को वन्दन करता हूँ।
मैं सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति को वन्दन करता हूँ ।
मैं कुन्थू, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व तथा वर्धमान को वन्दन करता हूँ।

I bow to Rsabha, Ajit Sambhava, Abhinandan Sumsti, Padma-Prabhu, Suparava, Chandra-Prabhu Suvidhi (Puspa-Danta), Sitala Sreyance, Vashupujya, Vimala, Anantan, Dharma, Shanti, Kunthu, Ara, Malli, Munisuvrita, Nami, Arista-nami, Parsva and Vardhaman. (13, 14, 15)

चंद्र से निर्मल अधिक, रवि से प्रकाशवान ।
सागर से गहरे अधिक, सिद्ध हो मुक्ति प्रदान ।।१.१.१६.१६।।

चंदेहि णिम्मलयार, आइचेहिं म अहियं पयासंता ।
सायरवरगभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।१६।।

चन्द्रैर्निर्मलतरा, आदित्यैः अधिकं प्रकाशमानाः ।
सागरवरगम्भीराः, सिद्धाः सिद्धिं मम दिशन्तु।।१६।।

चन्द्र से अधिक निर्मल, सूर्य से अधिक प्रकाश करने वाले, सागर की भाँति गंभीर सिद्ध पुरुष मुझे मुक्ति प्रदान करे।

May the Siddhas (or the Liberated Souls) who are more immaculate than the moons, brighter than the sun and more serene than the oceans, show me the path of liberation. (16)

प्रकरण २ - जिनशासनसूत्र

Chapter 2 - Percepts on Jina's Teachings

लीन हो कर पार करे, सागर जगत विशाल ।
शरण मिले सब जीव को, जिनशासन चिरकाल ।।१.२.१.१७।।

जं संल्लीणा जीवा तरिंत संसार-सायर-मणंतं ।
तं सव्व-जीव-सरणं णंदउ जिण -सासणं सुइरं ।।१।।

यद् आलीना जीवाः तरन्ति संसारसागरमनन्तम् ।
तत् सर्वजीवशरणं, नन्दतु जिनशासनं सुचिरम् ।।१।।

जिस में लीन होकर जीव अनंत सागर को पार कर जाते हैं तथा जो समस्त जीवों को शरण देता है वह जिनशासन चिरकाल तक समृद्ध रहे।

May the teachings of Jina which enable all souls to cross over the endless ocean of mundane existence and which afford protection to all living beings, flourish for ever. (17)

विषयशुद्धि जिनवचन करे, औषध सुधा समान ।
जन्म-मरण से मुक्ति मिले, सब दुख हरता मान ।।१.२.२.१८।।

जिण-वयण-मोसह-मिणं विसय-सुह-विरयेणं् अमिदभूयं ।
जर-मरण-वाहि-हरणं, खय-करणं सव्व-दुक्खाणं ।।२।।

जिनवचनमौषधमिदं, विषयसुखविरेचनम्-अमृतभूतम् ।
जरामरणव्याधिहरणं, क्षयकरणं सर्वदुःखानाम् ।।२।।

ये जिनवचन विषयसुख के विरेचक (बाहर निकालने वाले) हैं, अमृतोपम औषधि हैं, जन्म-मरण व्याधि से मुक्ति देनेवाले तथा सब दुखों को हरने वाले हैं।

The preaching of Jina cures the problem of transmigration and destroys all sorrows permanently. The teachings of Jina are nectar-like medicine for relief from all miseries. (18)

भाषित है अरहंत अर्थ, ग्रंथ ले गणधर ज्ञान ।
भक्त शीश करता नमन, सागर है श्रुतज्ञान ।।१.२.३.१९।।

अरहंत–भाषित अर्थ है, गणधर ग्रंथित ज्ञान ।
भक्तिभर शिरोनति करूं, सागर है श्रुतज्ञान ।।३।।

अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सदणाणमहोदहिं सिरसा ।।३।।

मै उस सागर से गहरे ज्ञान को श्रुतज्ञान भक्तिपूर्वक नमन करता हूँ जो अरिहंतो ने कहा व गणधरो ने शब्दबद्ध किया।

I bow down my head with devotion to the vast ocean of scriptural knowledge preached by the Arhats and properly composed in the form of scriptures by the Ganadharas (group leaders of ascetic order).(19)

मुख से वचनामृत झरे, दोषरहित सुविचार ।
आगम इनको जानिये, सत्य तथ्य का सार ।।१.२.४.२०।।

तस्स मुहग्गद–वयणं, पुव्वा–वर–दोस–विरहियं सुद्धं ।
आगम– मिदि परिकहियं, तेणदु कहिया हवंति तच्चत्था ।।४।।

तस्य मुखोद्गतवचनं, पूर्वापरदोषविरहितं शुद्धम् ।
'आगम' इति परिकथितं, तेन तु कथिता भवन्ति तथ्यार्था: ।।४।।

जो अरिहंतों के मुख से वाणी निकली वो सत्य है, पूर्वापर दोषरहित और शुद्ध हैं। उसे आगम कहते है।

That which has come from the mouth of the Arhats is pure and completely free from contradictions is called the agama or the Scripture and what is recorded in the Scriptures is truth. (20)

जिनवचनों को पालते, ग्रहण करें जो सार।
स्वच्छ निर्मल बन तरते, भवसागर से पार ।।१.२.५.२१।।

जिणवयणे अणुरता गुरुवयणं जे करंति भावेण।
असंबल असंकिलट्ठा ते होंति परित संसारा ।।५।।

जिनवचनेऽनुरक्ताः, जिनवचनं ये करन्ति भावेन।
अमला असंक्लिष्टाः, ते भवन्ति परीतसंसारिणः ।।५ ।।

जो जिनवचनों में अनुरक्त हैं और उनका भावसहित पालन करते है, असंक्लिष्ट परिणाम वाले वे जल्द ही जीवन–मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

Those who are fully devoted to the preachings of the Arhats and practise them with sincerity shall attain purity and freedom from miseries and shortly get liberated from the ycle of birth and death. (21)

जगद् गुरु, वीतराग हे, मैं मोहित भगवान।
विरक्त हो पथ मोक्ष मिले, इष्टफलित सह ज्ञान ।।१.२.६.२२।।

जय वीयराय! जयगुरु! होउ मम तुह पभावओ भयवं!
भवणिव्वेओ मग्गाणुसारि या इट्ठफलसिद्धि ।।६।।

जय वीतराग! जगद्गुरो! भवतु मम तव प्रभावतो भगवन्!
भवनिर्वेदः मार्गानुसारिता इष्टफलसिद्धिः ।।६ ।।

हे वीतराग ! हे जगत के गुरु! भगवन् आपके प्रभाव से मुझे इस संसार से विरक्ति हो और मार्गानुसारी मुक्ति मिले।

Oh the Conqueror of all attachments: Oh, the teacher of universe: Oh the blessed one: through your grace may I develop detachment to the world, continue to follow the path of liberation. (22)

स्वसमय ज्ञाता रहे, शिव, सोम गुण भंडार।
दीप्तिमान निर्ग्रन्थ को, प्रवचन का अधिकार ।।१.२.७.२३।।

ससमय-परसमविऊ, गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो।
गुणसयकलिओ जुत्तो, पवयणसारं परिकहेउं ।।७।।

स्वसमय-परसमयवित्, गम्भीर- दीप्तिमान् शिवः सोमः।
गुणशतकलितः युक्तः, प्रवचनसारं परिकथयितुम् ।।७।।

निग्रन्थ प्रवचन देने का अधिकारी वही है जो स्वसमय व परसमय का ज्ञाता है, गम्भीर है, दीप्तिमान है, कल्याणकारी है, सौम्य है और सैंकड़ो गुणों से भरा है।

He alone is entitled to propagate the essence of the teachings of the possession-less saints) (Nirgranthas), who is well-versed in pure souls and impure-souls; who is deep, brilliant benevolent and modest and has hundreds of other virtues. (23)

चाहत जो अपने लिये, दूजे की भी चाह।
खुद सा जानो ओर को, जिनशासन की राह।।१.२.८.२४।।

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणं ।।८।।

यदिच्छसि आत्मतः, यच्च नेच्छसि आत्मतः।
तदिच्छ परस्यापि च, एतावत्कं जिनशासनम् ।।८।।

जिनशासन का उपदेश यही है कि जो आप अपने लिये चाहते हैं वो ही दूसरों के लिये चाहे और जो आप अपने लिये नहीं चाहते वो दूसरों के लिये भी न चाहे।

The teaching of Jina (Tirthankars) is that What you desire for yourself desire for others too, what you do not desire for yourself do not desire for others too. (24)

प्रकरण ३ - संघसूत्र

Chapter 3 - Percepts of Religious Order

संघ कर्म को काटता, संघ गुणों के साथ ।
ज्ञान चरित दर्शन रहे, संघ समन्वय हाथ ।।१.३.१.२५।।

संघो गुणसंघाओ, संघो य विमोचओ य कम्माणं ।
दंसण-णाण-चरित्ते, संघायंतो हवे संघो ।।१।।

संघो गुणसंघातः, संघश्च विमोचकश्च कर्मणाम् ।
दर्शनज्ञानचरित्राणि, संघातयन् भवेत् संघः ।।१।।

गुणों का समूह संघ है। संघ कर्मों को काटने में मदद करता है। संघ दर्शन, ज्ञान और चारित्र (त्रिरत्न या रत्नत्रय या तीन रत्न) का समन्वय करता है।

The order of saints is accumulation of virtues: a religious order emancipates people from the Karmas and coordinates together Right Faith, Right Knowledge and Right Conduct. (25)

तीन रत्न ही 'गण' कहे, 'गच्छ' मोक्ष पथ चाल।
संघ मेल गण से करे, शुद्ध आत्मा काल ।।१.३.२.२६।।

रयणत्तयमेव गणं, गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स ।
संघो गण-संघादो, समयो खलु णिम्मलो अप्पा ।।२।।

रत्नत्रयमेव गणः गच्छः गमनस्य मोक्षमार्गस्य ।
संघो गुणसंघातः, समयः खलु निर्मलः आत्मा ।।२।।

तीन रत्न (दर्शन, ज्ञान, चारित्र) ही 'गण' है। मोक्ष मार्ग में चलना ही 'गच्छ' है। गण का समूह ही संघ है। निर्मल आत्मा ही समय है।

"Gana" is constituted by three Jewels (i.e. Right Faith, Right Knowledge and Right conduct), what leads to the path of leads to the path of Salvation constitutes a gaccha: the accumulation of virtues is Sangha and a pure soul is "Samaya". (26)

आश्वासन विश्वास मिले, शीतल घर सा जान ।
माँ–पिता सा पाकर संघ, मिलता शरण समान ।।१.३.३.२७।।

आसासे वीसासो, सीयघरसमो य होइ मा भाहि ।
अम्मापितिसमाणो, संघो सरणं तु सव्वेसिं ।।३।।

आश्वासः विश्वासः शीतगृहसमश्च भवति मा भैषीः ।
अम्बापितृसमानः, संघः शरणं तु सर्वेषाम् ।।३।।

संघ आश्वासन व विश्वास देता है । शीतल छाया देता है । माता–पिता सा लगता है । शरण देता है इसलिये संघ से मत डरो ।

Don't fear order of Sangha. The Sangha grants assurance, evokes confidence and gives peace like a cold chamber. It is affectionate like the parents and affords shelter to all living beings. (27)

दर्शन ज्ञान चरित्र में, स्थिर भाग्य बलवान ।
धन्य होय गुरुकुल बसे, जीवन भर सम्मान ।।१.३.४.२८।।

नाणस्स होइ भागी, थिर–यरओ दंसणे चरित्ते य ।
धन्ना आव–कहाए, गुरुकुलवासं न मुंचंति ।।४।।

ज्ञानस्य भवति भागी, स्थिरतरको दर्शने चरित्रे च ।
धन्याः गुरुकुलवासं, यावत्कथया न मुञ्चन्ति ।।४।।

संघ स्थित साधु ज्ञान, दर्शन व चारित्र का अधिकारी है । वो धन्य है जो जीवन भर गुरुकुल नही छोड़ते ।

Blessed are those who reside life-long in Gurukul as they acquire knowledge and specially attain stability in faith and conduct. (28)

गुरु भक्ति सम्मान नहीं, गौरव–भय ना पास ।
ना ही लज्जा नेह नहीं, क्यूँ कर गुरुकुल वास ।।१.३.५.२९।।

जस्स गुरुम्मि न भत्ती, न य बहुमाणो न गउरवं न भयं ।
न वि लज्जा न वि नेहो, गुरुकुलवासेण किं तस्स? ।।५।।

यस्य गुरौ न भक्तिः, न च बहुमानः न गौरवं न भयम् ।
नावि लज्जा नापि स्नेहः गुरुकुलवासेन किं तस्य ? ।।५।।

जिसमें गुरु के प्रति भक्ति, सम्मान, गौरव, भय, लज्जा व स्नेह नहीं है उसे गुरुकुल में रहने का कोई अर्थ नहीं है ।

What is the sense, in staying in Gurukul for him who does not have a sense of devotion, sense of pride, reverence, regard and affection for the teacher. (29)

ज्ञान रत्न का पथ बड़ा, संघ है कमल समान ।
पंचमहाव्रत कर्णि स्थिर, गुण केसर सा जान ।।१.३.६.३०।।

श्रावक ज्यूँ मधुकर रहे, सूर्य तेज जिन ज्ञान ।
श्रमणगण सहस्रपत्र हैं, संघ कमल कल्याण ।।१.३.७.३१।।

कम्म–रय–जलोह विणिग्गयस्स, सुय–रयण–दीह–नालस्स ।
पंच–महव्वय–थिर–कण्णियस्स, गुण–केसरालस्स ।।६।।

सावग–जण–महुयर–परिवुडस्स, जिण–सूर–तेय–बुद्धस्स ।
संघ–पउमस्स भद्दं, समण–गण–सहस्स–पत्तस्स ।।७।।

कर्मरजजलीघविनिर्गतस्य, श्रुतरत्नदीर्घनालस्य ।
पञ्चमहाव्रतस्थिरकर्णिकस्य, गुणकेसरवतः ।।६।।

श्रावकजन–मधुकर–परिवृतस्य, जिनसूर्यतेजोबुद्धस्य ।
संघपद्मस्य भद्रं श्रमणगणसहस्रपत्रस्य ।।७।।

संघ कमल की तरह अलिप्त है। ज्ञान व आगम ही संघ का मूल है। पाँच महाव्रत उसे स्थिर रखते है व उत्तर गुण उसे खुशबू देते हैं। इसलिये श्रावक व श्राविका भँवरे की तरह संघ को घेरे रहते है। संघ जिनेश्वरदेव के सूर्य की तरह प्रकाश से प्रकाशित होता है। ऐसे संघ का कल्याण हो।

The order of saints (Sangha) is like a lotus flower. May the lotus like Sangha prosper which keeps itself aloof from the Karmic-dirt just as a lotus keeps itself away from the mud and water. Knowledge is the long stalk of this lotus; five great vows form its stalk (karnika) and Extra vows (uttar-gna) its saffron (kesar). this saffron is always surrounded by large black bees (Bhramaras) called layman (Sravakas). As the lotus blossoms on account of the sunrays, similarly the Sangha grows on account of the precepts of Jina. (30-31)

प्रकरण ४ - निरुपणसूत्र

Chapter 4 - Precepts on Scriptural Exposition

प्रमाण, नय, निक्षेप से, अर्थ बोध ना जान ।
उचित रहे अनुचित लगे, उचितो-अनुचित ज्ञान ।।१.४.१.३२।।

जो ण पमाण-णयेहिं, णिक्खेवेणं णिरिक्खदे अत्थं ।
तस्सा-जुत्तं जुत्तं, जुत्तं, मजुत्तं च पडिहादि ।।१।।
यो न प्रमाण-नयाभ्याम्, निक्षेपेण निरीक्षते अर्थम् ।
तस्यायुक्तं युक्तं, युक्तमयुक्तं च प्रतिभाति ।।१।।

जो प्रमाण, नय और निक्षेप द्वारा अर्थ नहीं जानता तो उचित अनुचित या अनुचित उचित प्रतीत होता है ।

The improper appears proper and the proper appears improper to the person, who does not understand the implications of elements by means of comprehensive knowledge (Pramana) different view points (Naya) and way of knowing (Nikshepa). (32)

ज्ञान यही प्रमाण है, नय ज्ञाता का ज्ञान।
है उपाय निक्षेप भी, अर्थ युक्ति से जान ।।१.४.२.३३।।

णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदय भावत्थो ।
निक्खेओ वि उवाओ, जुत्तीए अत्थ-पडिगहणं ।।२।।
ज्ञानं भवति प्रमाणं, नयोऽपि ज्ञातुः हृदयभावार्थः ।
निक्षेपोऽपि उपायः, युक्त्या अर्थप्रतिग्रहणम् ।।२।।

ज्ञान प्रमाण है । ज्ञाता का मन से जाना अभिप्राय (दृष्टिकोण) ''नय'' है । निक्षेप भी ज्ञान का उपाय है । इस तरह युक्तिपूर्वक अर्थ ग्रहण करना चाहिये ।

Knowledge is Authority (Pramana). The view point of knower is the stand-point (Naya). The ways and means of knowing is verbal/linguistic aspect (Nikshipa). One should understand the implications of elements, in this rational manner. (33)

निश्चय और व्यवहार ही, सकल मूल नय ज्ञान।
द्रव्यार्थक पर्याय अपि, नय निश्चय ही मान ।।१.४.३.३४।।

णिश्चय–ववहार–णया, मूलिम–भेया णयाण सव्वाणं ।
णिच्छय–साहण–हेउं, पज्जय–दव्वत्थियं मुणह ।।३।।

निश्चयव्यवहारनयौ, मूलभेदो नयानां सर्वेषाम् ।
निश्चयसाधनहेतू, पर्यायद्रव्यार्थिको मन्यध्वम् ।।३ ।।

निश्चय नय और व्यवहार नय समस्त नयों के मूल हैं। द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय निश्चय नय के साधन हेतु हैं।

The real point of view (Niscaya-naya) and the practical point of view (vyavahara-naya) are the two fundamental types of view-points (nayas). The substantial point of view (dravyarthika naya) and the modal point of view (paryayarthika-naya) are the two means for comprehending the real nature of a thing. (34)

स्यात् वाद वस्तु अखण्ड से, विविध धर्म का ज्ञान।
नय व्यवहारिक ज्ञान है, ही निश्चय जान ।।१.४.४.३५।।

जो सिय भेदुवयारं धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स ।
सो ववहारो भणियो विवरीओ णिच्छयो होइ ।।४।।

यः स्याद्भेदोपचारं, धर्माणां करोति एकवस्तुनः।
स व्यवहारो भणितः, विपरीतो निश्चयो भवति ।।४।।

स्यावाद् से एक अखण्ड वस्तु के विविध धर्मों का ज्ञान होता है जिसे व्यवहार नय कहते है। निश्चय नय अखण्ड वस्तु का अनुभव अखण्ड रुप में करता है।

The practical point of view (Vyavahara-nay) does take a thing as whole but concentrates on its units only. The opposite of it is called the real view-point (nischay nay) which takes a comprehensive view and takes into consideration the thing as a whole. (35)

दर्शन, ज्ञान,चरित्र है, नय जिसका व्यवहार ।
निश्चयनय त्रिरत्न नहीं, ज्ञायक शुद्ध विचार ।।१.४.५.३६।।

ववहारे–णुवदिस्सदि, णाणिस्स चरित्त–दंसणं णाणं ।
णवि णाणं ण चरित्तं, ण दंसणं जाणगो सुद्धो ।।५।।

व्यवहारेणोपदश्यते, ज्ञानिनश्चरित्रं दर्शनं ज्ञानम्
नापि ज्ञानं न चरित्रं, न दर्शनं ज्ञायकः शुद्धः ।।५।।

व्यवहार नय से यह कहा जाता है कि ज्ञानी के दर्शन, ज्ञान और चारित्र होता है किन्तु निश्चय नय से उसके ज्ञान, दर्शन व चारित्र (त्रिरत्न) नहीं है। ज्ञानी तो शुद्ध ज्ञायक है।

From the practical standpoint (vyavahara-naya) it is said that a knower has got right perception, right knowledge and right conduct. From Real stand-point (nischaya naya), the wise has neither right Perception, nor right knowledge, nor right conduct. He is purely a knower, a conscious being. (36)

व्यवहार–नय नकार दे, निश्चयनय का ज्ञान ।
निश्चयनय मुनिवर चले, मोक्ष मिलेगा जान ।।१.४.६.३७।।

एवं ववहार णओ, पडिसिद्धो जाण णिच्छय णयेण ।
णिच्छय–णय–संलीणा, मुणिणो पावंति णिव्वाणं ।।६।।

एवं व्यवहारनयं, प्रतिषिद्धं जानीहि निश्चयनयेन ।
निश्चयनयाश्रिताः पुनर्मुनयः प्राप्नुवन्ति निर्वाणम् ।।६।।

आत्माश्रित निश्चयनय द्वारा पराश्रित व्यवहारनय का प्रतिषेध किया जाता है। निश्चयनय का आश्रय लेने वाले मुनिजन ही निर्वाण प्राप्त करते हैं।

Know that the practical point of view is contradicted by the real point of view. The saints who take recourse to the real point of view (Niscaya-Naya) attain salvation. (37)

अनार्य वाणी चाहिये, दे अनार्य को ज्ञान ।
संभव ना व्यवहार बिना, परम अर्थ पहचान ।।१.४.७.३८।।

जह ण वि सक्कमणज्जो, अणज्ज-भासं विणा टु गाहेटु ।
तह ववहारेण विणा, परमत्थु-वदेसेण-मसक्कं ।।७।।

यथा नापि शक्योऽनार्योऽनार्यभाषां विना तु ग्राहयितुम ।
तथा व्यवहारेण विना, परमार्थोपदेशनमशक्यम् ।।७।।

जैसे अनार्य पुरुष को अनार्य भाषा के बिना समझाना संभव नही है, वैसे ही व्यवहार के बिना परम अर्थ का उपदेश संभव नहीं है ।

Just as it is impossible to explain things to a non- Arya without taking recourse to a non-Aryan language, similarly it is impossible to explain the ultimate truth without taking recourse to vyavahara-naya. (38)

सच आंशिक व्यवहारनय, निश्चयनय सत् नींव ।
आश्रय जो सच का मिले, सम्यक दृष्टि सजीव ।।१.४.८.३९।।

ववहारोऽभूयत्थो, भूयत्थो देसिदो टु सुद्ध-णओ ।
भूयत्थ-मस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।।८।।

व्यवयहारोऽभूतार्थो, भूतार्थो देशितस्तु शुद्धनयः ।
भूतार्थमाश्रितः खलु, सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः ।।८।।

व्यवहारनय आंशिक सत्य है तथा निश्चयनय पूर्ण सत्य (भूतार्थ) है। भूतार्थ का आश्रय लेने वाले ही सम्यगदृष्टि होते हैं ।

It is said that the practical point of view does not explain reality as it is, while the real point of view explains it as it is. He' who takes recourse to the reality as it is, attains the right faith. (39)

निश्चयनय आश्रय लिये, निश्चय हो ना पास ।
आचरण आलस्य सहित, चरणकरण का नाश ।।१.४.९.४०।।

निच्छयमवलंबंता, निच्छयतो निच्छयं अजाणंता ।
नसंति चरणकरणं, बाहिरकरणालसा केई ।।९।।

निश्चयमवलम्बमानाः,निश्चयतः निश्चयम् अजानन्तः ।
नाशयन्ति चरणकरणम्, बाह्याकरणाऽलसाः केचित् ।।९।।

निश्चय का सहारा लेने वाले कुछ जीव निश्चय को निश्चय से न जानने के कारण बाह्य आचरण में आलसी होकर आचार क्रिया का नाश कर देते है।

Those souls (Jiva), who do not understand the Real from the real standpoint, although they rely upon the real, spoil their conduct by becoming either idle or arbitrary, in their outward apparent behavior. (40)

परमभावथिर जीव को, निश्चयनय संदेश ।
अपरमभावी जीव को, नय व्यव्हार उपदेश ।।१.४.१०.४१।।

सुद्धो सुद्धादेसो, णायव्वो परमभाव–दरिसीहिं ।
ववहार–देसिदा पुण, जे टु अपरमे ट्ठिदा भावे ।।१०।।

शुद्धः शुद्धादेशो, ज्ञातव्यः परमभावदर्शिभिः ।
व्यवहारदेशिताः पुन–र्ये त्वपरमे स्थिता भावे ।।१०।।

परमभाव के जीवों के लिये निश्चयनय ही ज्ञातव्य है पर अपरमभाव में स्थित जीवों के लिये व्यवहारनय के द्वारा ही उपदेश करना उचित है।

Reality can be understood properly by those who have realized the highest truth: but for those who are in a lower state it is proper to explain the reality through the practical point of view. (41)

कठिन जानना श्रमण को, बैठा है किस भाव ।
स्थित जब हो विगत में, व्यवहारनय स्वभाव ।।१.४.११.४२।।

निच्छयओ टुण्णेयं, को भावे कम्मि वट्टई समणो ।
ववहारओ य कीरइ, जो पुव्वठिओ चरित्तम्मि ।।११।।

निश्चयतः दुर्ज्ञेयं, कः भावः कस्मिन् वर्तते श्रमणः ।
व्यवहारतस्तु क्रियते, यः पूर्वस्थितश्चारित्रे ।।११।।

श्रमण किस भाव में स्थित है यह जानना कठिन है। अतः जो पूर्व चारित्र में स्थित है उनकी क्रिया व्यवहार नय द्वारा चलती है।

It is very difficult to know the mental states of monks; therefore the criterion of senionrity in the order of monks should be decided by practical view-point. (42)

हैं वे नय मिथ्या सभी, पक्ष स्वयं का जान ।
भाव मिले सम्यक तभी, होय सकल पहचान ।।१.४.१२.४३।।

तम्हा सव्वे वि णया, मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा ।
अण्णोण्णणिस्सिया उण, हवंति सम्मत्तबभावा ।।१२।।

तस्मात् सर्वेऽपि नयाः, मिथ्यादृष्टयः स्वपक्षप्रतिबद्धाः ।
अन्योन्यनिश्रिताः पुनः, भवन्ति सम्यक्त्वसद्भावा ।।१२।।

अपने अपने पक्ष का आग्रह रखने वाले सभी नय मिथ्या है। परस्पर सापेक्ष हो जाने पर वे ही सम्यक् भाव को प्राप्त हो जाते है।

Hence all the nayas (view-points), so long as they remain confined to their own respective stand-points, are false, but when they are mutually dependent on one another, they become true. (43)

अपवादों उत्सर्ग करे, सत्य ज्ञान के काम ।
करे काम कुछ इस तरह, मिले सफलता आम ।।१.४.१३.४४।।

कज्जं णाणादीयं, उस्सग्गावववायओ भवे सच्चं ।
तं तह समायरंतो, तं सफलं होइ सव्वं पि ।।१३।।

कार्यं ज्ञानादिकं, उत्सर्गापवादतः भवेत् सत्यम् ।
तत् तथा समाचरन्, तत् सफलं भवति सर्वमपि ।।१३।।

ज्ञान आदि कार्य सामान्य विधि (उत्सर्ग) एवं विशेष विधि (अपवाद) से सत्य होते है । वे इस तरह से किये जायें कि सब कुछ सफल हो ।

Conduct, knowledge etc. are right when they satisfy general rules as well as the exceptional conditions. They should be practised in such a manner that they become fruitful. (44)

प्रकरण ५ – संसारचक्रसूत्र

Chapter 5 - Precepts on the Tranmigratory Cycle

थिर शाश्वत है जग नहीं, भारी दुख भण्डार ।
कर्म करूँ मैं कौन सा, दुर्गति मिले न द्वार ।।१.५.१.४५।।

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि टुक्खपउराए ।
किं नाम होज्जन नं कम्मयं, जेणाऽहं दुग्गइं न गच्छेज्जा ।।१।।

अध्रुवेऽशाश्वते, संसारे दुःखप्रचुरके।
किं नाम भवेत् तत् कर्मकं, येनाहं दुर्गतिं न गच्छेयम् ।।१।।

यह संसार स्थिर व नित्य नही है व अत्यंत दुखों से भरा हुआ है, मैं ऐसा कौन सा कर्म करु जिससे की मैं दुर्गति में न जाऊँ ?

In this world which is unstable, impermanent and full of misery, is there any thing by the performance of which I can be saved from taking birth in lower grade of life? (45)

सुख क्षणिक पर दुख लंबवत, सुख कम दुख अति जान।
काम शत्रु है मुक्ति का, बिना अर्थ की खान ।।१.५.२.४६।।

खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्शा अणिगामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ काम भोगा ।।२।।

क्षणमात्रसौख्या बहुकालदुःखाः, प्रकामदुःखाः अनिकामसौख्याः ।
संसारमोक्षस्य विपक्षभूताः, खानिरनर्थानां तु कामभोगाः ।।२।।

यह संसार काम भोग से क्षण भर सुख और अधिक दुख देने वाला है। संसार, मुक्ति का विरोधी और अनर्थो की खान है।

Sensuous enjoyments give worldly pleasure, but prolonged misery, more of misery and less of pleasure and they are the obstructions to salvation and is the mine of misfortunes. (46)

केले के ज्यूँ पेड़ में, दिखे न कोई सार।
विषय वासना भी लगे, दुख का ही व्यापार ।।१.५.३.४७।।

सुट्ठवि मग्गिज्जंतो, कत्थ वि केलीइ नत्थि जह सारो ।
इंदियअविसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठ वि गविट्ठं ।।३।।

सुष्ठवपि मार्ग्यमाणः, कुत्रापि कदल्यां नास्ति यथा सारः ।
इन्द्रियविषयेषु तथा, नास्ति सुखं सुष्ठवपि गवेषितम् ।।३।।

बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नही देता, वैसे ही इन्द्रिय विषयों में भी कोई सुख दिखाई नही देता।

As there is no essence in a banana tree, there is no real happiness in sensual pleasures. (47)

सुख चाहे हो इन्द्र का, परम अर्थ दुख राग।
फल दुखदायी है सदा, उचित दूर तू भाग ।।१.५.४.४८।।

नरविबुहेशरसुक्खं, दुक्खं परमत्थओ तयं बिंति ।
परिणामदारुणमसासयं च जं ता अलं तेण ।।४।।

नरविबुधेश्वरसौख्यं, दुःखं परमार्थतस्तद् ब्रुवते ।
परिणामदारुणमशाश्वतं, च यत् तस्मात् अलं तेन ।।४।।

इन्द्र का सुख भी परम अर्थ में दुख ही है। वह सुख है थोड़ी देर का पर उसका परिणाम भयंकर है। अतः उससे दूर रहना ही उचित है।

The pleasures/enjoyments of great emperors, kings of gods (clestial-beings) are ultimately pains. Such pleasures are momentary; and their consequences are. Hence, it is appropriate to remain away from them. (48)

खुजलाने से सुख मिले, जैसे खुजली भाय ।
काम मोह में जो फँसे, दुख को सुख समझाय ।।१.४.५.४९।।

जह कच्छुल्लो कच्छुं कंडयमाणो दुहं मुणइ सुक्खं ।
मोहाउरा मणुस्सा, तह कामदुहं सुहं विंति ।।५।।

यथा कच्छुरः कच्छुं, कण्ड्यन् दुःखं मनुते सोख्यम् ।
मोहातुरा मनुष्याः, तथा कामदुःखं सुखं ब्रुवन्ति ।।५।।

खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है वैसे ही मोह व काम से आतुर मनुष्य दुख को सुख मानता है।

Just as a person suffering from itching considers the scratching of his body to be a pleasure though reallyit is painful similarly people who are underthe spell of infatuation consider the sensuous enjoyment to be pleasurable. (49)

रत हो भोगविलास में, बुद्धि भ्रमित हो जाय ।
मंदबुद्धि की मूर्खता, मक्खी मल लिपटाय ।।१.५.६.५०।।

भोगा-मिस-दोस-विसण्णे, हिय-निस्सेयस बुद्धि-वोच्चत्थे ।
बले य मन्दिए मूढ़े, बज्झई मच्छिया व खेलंमिं ।।६।।

भोगामिषदोषविषण्णः, हितनिःश्रेयसबुद्धिविपर्यस्तः।
बालश्च मन्दितः मूढः, बध्यते मक्षिकेव श्लेष्मणि ।।६।।

विपरीत बुद्धिवाला अज्ञानी मन्द और मूढ़ जीव भोग विलास में इस तरह बंध जाता है जैसे मक्खी श्लेष्म में।

He who is immersed in sensual pleasures bcomes blind in knowing what is beneficial to spiritual welfare, becomes ignorant, dull and entangles himself in his own aramas like a fly caught in phlegm. (50)

समझे चिंतन का विषय, जनम-मरण दुख काल ।
अचरज! विषय विरक्त नहीं, सुदृढ़ माया जाल ।।१.५.७.५१।।

जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ, जम्मजरामरणसंभवं दुक्खं ।
न य विसएसु विरज्जई, अहो सुबद्धी कवडगंठी ।।७।।

जानाति चिन्तयति, जन्मजरामरणसम्भवं दुःखम् ।
न च विषयेषु विरज्यते, अहो! सुबद्धः कपटग्रन्थिः ।।७।।

जीवन मरण व जरा से होनेवाले दुख को जानता है उसका विचार भी करता है किन्तु भोगों से विरक्त नही हो पाता है। अहो! माया की गाँठ कितनी मजबूत होती है।

Everyone knows about the pains of birth, old age and death, and yet no one develops disregard for the objects of sensual pleasures. Oh: how strong is this knot of deciet? (51)

जीव बसे संसार में, ऐसे ही परिणाम ।
करमबद्ध परिणामतः, पाते गति हर शाम ।।१.५.८.५२।।

देह गति हर जनम मिले, इन्द्रिय तन परिणाम ।
विषयग्रहण करता रहे, राग द्वेष का धाम ।।१.५.९.५३।।

जीव भ्रमण करता रहे, जगत-चक्र का काम ।
अनंत चले या नियत हो, परिभ्रमण परिणाम ।।१.५.१०.५४।।

जो खलु संसारत्थो, जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादा कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ।।८।।

गदि-मधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते ।
ते हिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो वा दोसो वा ।।९।।

जायदि जीवस्सेवं भावो संसार-चक्क-वालम्मि ।
इदि जिणवरेहिं भणिदो, अणादि-णिधणो सणिधणो वा ।।१०।।

यः खलु संसारस्थो, जीवस्ततस्तु भवति परिणामः ।
परिणामात् कर्म, कर्मतः भवति गतिषु गतिः ।।८।।

गतिमधिगतस्य देहो, देहादिन्द्रियाणि जायन्ते ।
तैस्तु विषयग्रहणं, ततो रागो वा द्वेषो वा ।।९।।

जायते जीवस्यैवं, भावः संसारचक्र वाले ।
इति जिनवरैर्भणितो–ऽनादिनिधनः सनिधनो वा ।।१०।।

राग–द्वेष व कर्म बंधन के अनुसार संसारी जीव का जनम मरण का चक्र चलता रहता है । जन्म से शरीर व शरीर से इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं । इन्द्रियों से विषयों को भोगता है । उससे फिर राग द्वेष पैदा होता है । इस प्रकार जीव संसार में भ्रमण करता रहता है सम्यग्दृष्टि न होने के कारण यह चक्र अनन्त काल तक चलता रहता है।

A person who is worldly, becomes the subject of felling, words and actions of attachment (Raag) and aversion (Dwesha); as a consequence, karma binds his soul; the bondage of karmas results of birth , he gets a body the body will have its senses; the senses will lead to their respective enjoyments which in turn will give birth to attachment and aversion. The consequences of such wanderings, and absence of Right belief are beginning less and endless; but on the attainment of Right belief, such wanderings become beginning less but though not endless. (i.e. they are ended by the Right believing imperfect souls) (52-54)

जन्म मरण दुख रोग भी, वृद्धावस्था मार ।
क्लेष पावे जीव सभी, सकल दुखी संसार ।।१.५.११.५५।।

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जन्तवो ।।११।।

जन्म दुःखं, जरा दुक्खं रोगाश्च मरणानि च ।
अहो दुःखः खलु संसारः, यत्र क्लिश्यन्ति जन्तवः ।।११।।

जन्म, बुढ़ापा, रोग व मृत्यु दुख है। अहो! संसार में दुख ही दुख है और जीव कष्ट पाता रहता है।

Birth is painful, old age is painful, disease and death are painful. Oh! The world is nothing but a misery, where living beings undergoes through great sufferings. (55)

नियत मानिये अन्यथा, स्थित जैसा हो भाव ।
करे मान विपरीत सदा, अच्छा नहीं स्वभाव ।।१.६.१.५६।।

जो जेण पगारेणं, भावो णियओ तमन्नहा जो तु ।
मन्नति करेति वदति व, विप्परियासो भवे एसो ।।१।।

यो येन प्रकारेण, भावः नियतः तम् अन्यथा यस्तु ।
मन्यते करोति वदति वा, विपर्यासो भवेद् एषः ।।१।।

जो भाव जिस प्रकार से नियत है, उसे अन्य रूप से मानना, कहना या करना विपरीत बुद्धि है।

If a thing is possessed of a certain definite form, then to consider it otherwise, to act as if it were otherwise, or to describe as otherwise is adverse knowledge. (56)

जब जब उठते जीव में, जैसे जैसे भाव ।
तब तब बँधते कर्म के, अच्छे–बुरे प्रभाव ।।१.६.२.५७।।

जं जं समयं जीवो आविसइ जेण जेण भावेण ।
सो तंमि तंमि समए, सुहासुहं बंध कम्मं ।।२।।

यं यंसमयं जीवः, आविशति येन येन भावेन ।
सः तस्मिन् समये, शुभाशुभं बध्नाति कर्म ।।२।।

जिस समय जीव जैसे जैसे भाव करता है, वह उस समय वैसे ही अच्छे–बुरे कर्म का बंध करता है।

Whenever a soul experiences this or that mental state at that very time it gets bound by a corresponding good or bad karmas. (57)

तन–वचन तन्मय करता, धन–औरत का राग।
मल करम संचय कर ज्यूँ, रेत मले शिशुनाग ।।१.६.३.५८।।

कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागु व्व मट्टियं ।।३।।

कायेन वचसा मत्तः, वित्ते गृद्धश्च स्त्रीषु ।
द्विधा मलं संचिनोति, शिशुनाग इव मृत्तिकाम् ।।३।।

तन और वचनों में मत्त होकर धन और नारी में राग रखता है, वह उसी प्रकार से कर्म मल का संचय करता है जैसे शिशु नाग मुख और शरीर दोनों से मिट्टी का संचय करता है।

Whoever is careless about his physical activities and speech and greedy of wealth and woman. accumulates Karmic dirt of attachment and aversion just as an infant snake (earth warm) accumulates mud by both way (i.e., internally and externally). (58)

मित्र, पुत्र और बंधु भी, बाँट सके ना भाग।
दुख अनुभव ख़ुद ही करे, कर्त्ता करम अनुराग ।।१.६.४.५९।।

न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ, न मित्त–वग्गा न सुया न बंधवा ।
एक्को सयं पच्चणु होइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ।।४।।

नतस्य विभजन्ते ज्ञातयः, न मित्रवर्गा न सुता न बान्धवाः ।
एकः स्वयं प्रत्यनुभवति दुःखं, कर्तारमेवानुयाति कर्म ।।४।।

मित्र, पुत्र और बंधु उसका दुख नहीं बाँट सकते। जीव स्वयं अकेला दुख का अनुभव करता है क्योंकि कर्म कर्ता का अनुगमन करता है।

The sons, borthers, friends and athe caste-men can not share his misery. He has to suffer himself all alone. (It is so because karma pursue the doer (Karta). (59)

स्वकीय वश करना करम, परवश सब पश्चात् ।
चढ़े वृक्ष स्वेच्छा सदा, गिरे नहीं वश तात् ।।१.६.५.६०।।

कम्मं चिणंति सवसा, तस्सुदयम्मि उ परव्वसा होंति ।
रुक्खं दुरुहइ सवसो, विगलइस परव्वसो तत्तो ।।५।।

कर्म चिन्वन्ति स्ववशाः, तस्योदये तु परवशा भवन्ति ।
वृक्षामारोहति स्ववशः, विगलति स परवशः ततः ।।५।।

कर्म करना स्व वश है लेकिन भोगते समय उसके अधीन हो जाता है जैसे वृक्ष पर स्वेच्छा से चढ़ तो जाता है लेकिन गिरते समय परवश हो जाता है।

Just as a person is frree while climbing a tree but once he starts falling then he has no power to control it similarly a living being is free in accumulating the Karmas but once accumuled it is beyond his power to control their fruits. (60)

कहीं कर्म वश जीव है, करम जीव वश मान ।
धन दाता बलवान है, देते ऋणि बलवान ।।१.६.६.६१।।

कम्मवसा खलु जीवा, जीववसाइं कहिंचित कम्माई ।
कत्थइ धणिओ, बलवं, धारणिओ कत्थई बलवं ।।६।।

कर्मवशाः खलु जीवाः, जीववशानि कुत्रचित् कम ।
कुत्रचित् धनिकः बलवान्, धारणिकः कुत्रचित् बलवान ।।६।।

कही जीव कर्म के अधीन होता है तो कही कर्म जीव के अधीन होता है जैसे ऋण देते समय धनी बलवान होता है लेकिन लौटाते समय ऋणी बलवान हो जाता है ।।

Some time, the Jiva is dependent upon karmas; at others karmas are dependent upon the Jiva. At the time of issuing a loan, the power vests in the creditor; whereas, at the time of repayment, the power vests in the debtor. (61)

करम एक, पर भाग दो, द्रव्य-भाव विचार ।
पुद्गलपिण्ड द्रव्य करम, कर्म ये भाव विकार ।।१.६.७.६२।।

कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावो त्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गल-पिंडो दव्वं, तस्सत्ती भाव-कम्मं तु ।।७।।

कर्मत्वेन एकं, द्रव्यं भाव इति भवति द्विविधं तु ।
पुद्गलपिण्डो द्रव्यं, तच्छक्तिः भावकर्म तु ।।७।।

सामान्य रूप से कर्म एक है पर द्रव्य व भाव उसके दो भाग हैं। कर्म पुद्गल का पिण्ड द्रव्य कर्म हैं, पर उसके निमित्त से जीव में होने वाले राग द्वेष विकार भाव कर्म हैं।

Karma as such is of one type but it is divided also as, dravyakarma (objective) and bhavakarma (sujective). The dravyakarma is a mass of physical particles and the inherent capacity of it is bhavakarma (and this capaicty is originated from the attachment and aversion of the self). (62)

इन्द्रियजित् में ध्यान कर, आत्मा का उपयोग ।
कर्म से बँधता नहीं, पुनर्जनम नहीं रोग ।।१.६.८.६३।।

जो इंदियादिविजई, भवीय उवओगमप्पगं झादि ।
कम्मेहिं सो ण रंजदि, किह तं पाणा अणुचरंति ।।८।।

य इन्द्रियादिविजयी, भूत्वोपयोगमात्मकं ध्यायति।
कर्मभिः स न रज्यते, कस्मात् तं प्राणा अनुचरन्ति ।।८।।

जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ज्ञान दर्शन से आत्मा का ध्यान करता है वह कर्मों से नही बँधता । उसे नया जन्म धारण नही करना पड़ता ।

He who has gained victory over his senses and meditates on the very nature of soul is not bound by Karmas; Hence how can the material vitalities (Pondgalic-Prana) follow such goal? (such soul gets freedom from transmigration). (63)

ज्ञानावरणीय कर्म है, कर्म भी दर्शन जान ।
मोह वेदना में बँधे, आयुकर्म पहचान ।।१.६.९.६४।।

नामकर्म व गोत्र भी, कर्मान्तराय समान ।
आठ तरह के कर्म है, ऐसा ले लो ज्ञान ।।१.६.१०.६५।।

नाणस्सावरणिज्जं, दंणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ।।९।।

नामकम्मं च गोयंच, अंतरायं तहेव य ।
एवमयाइ कम्माइं, अट्ठे उ समासओ ।।१०।।

ज्ञानस्यावरणीयं, दर्शनावरणं तथा ।।
वेदनीयं तथा मोहम्, आयु:कर्म तथैव च ।।९।।

नामकर्म च गोत्रं, अन्तरायं तथैव च।
एवमेतानि कर्माणि, अष्टैव तु समागतः ।।१०।।

संक्षेप में आठ कर्म इस प्रकार है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

Feling (1) jnanavaraniya (knowledge obscuring), (2) Darsanavaraniaya (Apprehension obscuring), (3) Vedaniya (feeling producing), (4) Mohaniya (causing delusion), (5) Ayu (determining the life-span), (6) Nama (physique-determining) and (8) Antaraya (obcuring the power of self). (64-65)

पट, प्रहरी, तलवार सह, सुरा हलि चित्रकार ।
भंडारी व कुम्हार में, आठ कर्म प्रतिकार ।।१.६.११.६६।।

पड-पडिहार-सि-मज्ज-हडि-चित्त-कुलाल-भंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ।।११।।

पट प्रतिहारासि-मद्य, हडि-चित्र-कुलाल-भाण्डागारिणाम् ।
यथा एतेषां भावाः, कर्मणाम् अपि जीहि तथा भावान् ।।११।।

इन कर्मों का स्वभाव परदा, द्वारपाल, तलवार, मदिरा, हलि, चित्रकार, कुम्भकार तथा भण्डारी के स्वभाव की तरह है ।

The nature of (the above mentioned) Karmas is respectively like (that of) (1) Curtain; (2) doorkeeper; (3) sword; (4) Wine; (5) Kath (Hali); (6) painter (7) Pot-maker; and (8) Store-keeper. (66)

Explanation: This verse explains the nature of the eight karmas thus:

(1) The knowledgeobscuring karma, is like a curtain which prevents a person from knowing what is inside a room;

(2) The darsanavaraniya karma prevents a person from apprehension like a door-keeper who presents one from seeing a ignitary;

(3) Vedaniya karma is the cause of pleasure and pain which while licking becomes the cause of pleasure due to honey and pain as there is chance of an injury to the tongue;

(4) Mohaniya karma causes delusion as does wine;

(5) The Ayu karma keeps the soul tied down to a body, just as the woodenfetters on legs keep the person tied down to a place until they are removed;

(6) Nama-karma cause the soul to enter different kinds of bodies, just as a painter paints different pictures;

(7) Gotra-karma is responsible for birth in high or low families just as a potter prepares small or big pots;

(8) The Antaraya karma prevents a person from doing good deeds just as treasurer prevents his master from making gift and donations.

प्रकरण ७ - मिथ्यात्वसूत्र

Chapter 7 - Precepts On Wrong Faith

मोह मति से बँधा हुआ, सुगति पंथ अंजान ।
भव के वन चिरकाल फँस, रही भटकती जान ।।१.७.१.६७।।

हा! जग मोविमइणा, सुग्गइमग्गं अजाणमाणेणं ।
भोमे भवकंतारे, सुचिरं भमियं भयकरम्मि ।।१।।

हा! यथा मोहतमतिना, सुगतिमार्गमजानता ।
भीमे भवकान्तारे, सुचिरं भ्रान्तं भयंकरे ।।१।।

मुझे खेद है कि सुगति का पथ अनजान होने के कारण मैं मोह मति से बँधा हुआ भयंकर भव–वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।

Oh: what a pity? Due to my ignorance, I have not been able to know the part leading to spiritual progress so, I have been roaming about in the intense and dangerous forest of universe (Bava-vana). (68)

ग्रसित हो मिथ्यालाप से, दृष्टि उलट विचार ।
धर्म लगे रुचिकर नहीं, मधु रस लगे बुखार ।।१.७.२.६८।।

मिच्छत्तं वेदन्तो जीवो, विवरीय–दंसणो होदि ।
ण य धम्मं रोचिदि हु, मुहरं पि रसं जहा जरिदो ।।२।।

मिथ्यात्वं वेदयन, जीवो, विपरीतदर्शनो भवति ।
न च धर्म रोचते हि, मधुरं रसं यथा ज्वरितः ।।२।।

जो जीव मिथ्यात्व से ग्रसित होता है उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है । उसे धर्म रुचिकर नही लगता जैसे बुखार में मीठा रस रुचिकर नही लगता है।

The Drist/Vision of the imperfect soul, which is in the clutches of wrong-faith, becomes perverted. It does not like Dharma (Right-Conduct) in the manner, in which a man, suffering from fever, does not like even sweet juice. (68)

रहे आवरण झूठ का, कटुता रहे प्रभाव ।
देह–जीव इक आत्मा, बहिरात्म का भाव ।।१.७.३.६९।।

मिच्छत–परिणदप्पा तिव्व–कसाएण सुट्ठु आविट्ठो ।
जीव देहं एक्कं मण्णंतो होदि बहिरप्पा ।।३।।

मिथ्यात्वपरिणतात्मा, तीव्रकषायेण सुष्ठु आविष्टः ।
जीव देहमेकं, मन्यमानः भवति बहिरात्मा ।।३।।

मिथ्या दृष्टि से ग्रसित जीव शरीर व आत्मा को एक ही मानता है वह बहिरात्मा है।

A perverted soul, who remains completely in the grip of passions or intense moral impurities and due to this consider soul and body as one. Such a soul is an external soul (Bahiratma). (69)

भ्रमित कौन उससे बड़ा, तत्व ज्ञान ना चाल ।
बढ़ा रहा मिथ्यात्व को, कर शंकित बदहाल ।।१.७.४.७०।।

जो हजवायं न कुणइ, मिच्छादिट्ठी तओ हु को अन्ना ।
वड्ढ इ य मिच्छत्तं, परस्स संकं जणेमाणो ।।४।।

यो यथावादं न करोति, मिथ्यादृष्टिः ततः खलु कः अन्यः ।
वर्धते च मिथ्यात्वं, परस्य शंकां जनयमानः ।।४।।

उससे बड़ा भ्रमित कौन है जो तत्त्व विचार के अनुसार नही चलता है। वह दूसरों को शंकाशील बनाकर अपने मिथ्यात्व को बढ़ाता रहता है।

Could there be a person with greater wrong faith than the one who does not lead his life according to the precepts of Jina? He develops wrong beliefs by creating doubt in others (about the right path of Jina). (70)

प्रकरण ८ - राग-परिहर सूत्र

Chapter 8 - Precepts On Renunciation Of Attachment

राग-द्वेष हैं बीज कर्म के, मोह कर्म का मूल ।
जनम-मरण सब करम से, भवसागर दुख शूल ।।१.८.१.७१।।

रागो य दोसो वि य कम्मवीयं, कम्मंच मोहप्पभव वयन्तिं ।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं, दुक्खं च जाईमरणं वयन्ति ।।१।।

रागश्च द्वेषो पि च कर्मबीजं, कर्म च मोहप्रभवं वदन्ति ।
कर्मं च जातिमरणस्य मूलम्, दुःखं च जातिमरणं वदन्ति ।।१।।

राग और द्वेष कर्म के मूल कारण है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म जनम-मरण का मूल है। जनम-मरण दुख का मूल है।

Attachment and aversions are the seeds of karmas. Karmas are the offshoots of Delusion (Moha). Delusion (Moha) is the root cause of transmigration. Transmigration is the root cause of all miseries. (71)

बैरी चाहे वीर हो, करे नहीं नुक़सान ।
राग-द्वेष सबसे बड़े, हानिकारक जान ।।१.८.२.७२।।

न वि तं कुणइ, अमित्तों, सुट्ठ वि य विराहिओ समत्थो वि ।
जं दो वि अनिग्गहिया, करंति रागो य दोसो य ।।२।।

नैव तत् करोति अमित्रं, सुष्ठ्वपि च विराद्धः समर्थोऽपि ।
यद् द्वावपि अनिगृहीतौ, कुरुतो रागश्च द्वेषश्च ।।२।।

कितना भी वीर दुश्मन उतनी हानि नही पहुँचाता जितनी हानि अतिग्रहीत राग और द्वेष पहुँचाते हैं।

Even the most offended and powerful enemy does not cause as much harm as uncontrolled attachment and aversion do. (72)

जन्म–मरण दुख रोग हैं, सुख है ना संसार ।
मोक्ष यही अंतिम दवा, होवे बेड़ा पार ।।१.८.३.७३।।

न य संसाम्मि सुहं, जाइ–जरा–मरण दुक्ख–गहियस्स ।
जीवस्स अत्थि जम्हा, तम्हा मुक्खो उवादेओ ।।३।।

न च संसारे सुखं, जातिजरामरणदु:खगृहीतस्य ।
जीवस्यास्ति यस्मात्, तस्माद् मोक्ष: उपादेय: ।।३।।

इस संसार में जन्म, जरा और मरण के दुख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नहीं है। जब जीव के ये मान हों, तब मोक्ष ही अपनाने योग्य है।

Since living beings caught in the grip of miseries of birth, old age and death, have no happiness in this mudane existence, liberation is, therefore, worthy of attainment. (73)

भवसागर यह घोर है, चाहे जाना पार ।
तप संयम की नाव ही, है तेरा उद्धार ।।१.८.४.७४।।

तं ज इ इच्छसि, गंतुं, तीरं भवसायरस्स घोरस्स ।
तो तवसंजमभंडं, सुविहिय! गिण्हादि तुरंतो ।।४।।

तद् यदीच्छसि गन्तुं, तीरं भवसागरस्य घोरस्य ।
तर्हि तप:संयमभाण्डं, सुविहित! गृहाण त्वरमाण: ।।४।।

यदि तू घोर भवसागर के पार जाना चाहता है तो तप–संयमरूपी नाव में बैठ जा। उसी से तेरा उद्धार होगा।

If you are desirous of crossing this terrible ocean of mundane existence, Oh: virtuous one, better catch quickly a boat of penance and self-control. (74)

सम्यक चारित्रिक सदा, होय गुणों का नाश।
राग–द्वेष वश पाप के, संभव सदा विनाश ।।१.८.५.७५।।

बहुभयंकरदोसाणं, सम्मत्तंगुणविणासाणं।
न हु वसमागंतव्वं, रागद्दोसाण पावाणं ।।५।।

बहुभयंकरदोषयोः, सम्यक्त्वचारित्रगुणविनाशयोः।
न खलु वशमागन्तव्यं, रागद्वेषयोः पापयोः ।।५।।

सम्यकत्व तथा चारित्रादि गुणों के विनाशक राग और द्वेष रुपी पापों के वश में नही होना चाहिये।

One should not be under the influence of attachment and aversion which destroy the attributes of right conduct and other virtues. (75)

विषय वासना से भरा मानव, देव–प्रभाग ।
काम दुखों का अंत कर, बंध मुक्त वीतराग ।।१.८.६.७६।।

कामागुणिद्धि–प्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवस्स ।
जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरागो ।।६।।

कामानुगृद्धिप्रभवं खलु दुःखं, सर्वस्य लोकस्य सदेवकस्य ।
यत् कायिकं मानसिकं च किञ्चित्, तस्यान्तकं गच्छति वीतरागः ।।६।।

सब जीवों का और देवताओं का भी जो शरीर और मन का दुख है, वो काम भोग की सतत अभिलाषा से उत्पन्न होता है। वीतरागी उस दुख का अंत कर बंधन मुक्त हो जाता है।

Bodily and mental misery of all human beings and of gods is to some extent born of their constant sensual desire; he who is free from desire can put an end to this misery. (76)

जो विराग को जन्म दे, कर आचरण सत्कार ।
फँसा रहे आसक्त सदा, विरक्त जग से पार ।।१.८.७.७७।।

जेण विरोगो जायइ, तं तं सव्वायरेण करणिज्जं ।
मुच्चइ हु ससंवेगी, अणंतवो होइ असंवेगी ।।७।।

येन विरागो जायते, तत्तत् सर्वादरेण करणीयम् ।
मुच्यते एव ससंवेगः, अनन्तकः भवति असंवेगा ।।७।।

जिन कारणों से विराग उत्पन्न हो उनका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिये। आसक्त सदा फँसा रहता है विरक्त जग से पार हो जाता है।

That which secures freedom from attachment must be followed with utmost respect; he who is free from attachments secures release from mundane existence; while, one who is not, continues to wander in it endlessly. (77)

संकल्प नहीं विकल्प का, समता बने विचार ।
अर्थहीन जब विषय लगे, हो कामुकता हार ।।१.८.८.७८।।

एवं ससंकप्प–विकप्पणासु, संजायई समयमुवट्ठिस्स ।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु ।।८।।

एवं स्वसंकल्पविकल्पनासु, संजायते समतोपस्थितस्य।
अथश्चिं संकल्पयतस्तस्य, प्रहीयते कामगुणेषु तृष्णा ।।८।।

जो यह विकल्प करता है कि राग–द्वेष को छोड़ने के अलावा कोई विकल्प नही है वो ही समता को पाता है। विषय अर्थहीन लगते हैं और कामों की तृष्णा क्षीण हो जाती है।

He, who endeavours to recognise that the cause of his misery lies in desires and not in the objects of senses, acquires the equanimity of mind. When he ceases to desire the objects (of the senses), his thirst for sensual pleasure will become extinct. (78)

भिन्न आत्मा–तन सदा, निश्चय मति का मान ।
दु:ख–क्लेश छेदन करें, छोड़े ममता पान ।।१.८.९.७९।।

अन्नं इमं सरीरं, अन्नो जीवु त्ति निच्छियमईओ ।
दुक्खपरीकेसकरं, छिंद ममत्तं सरीराओ ।।९।।

अन्यदिदं शरीरं, अन्यो जीव इति निश्चयमतिकः ।।
दु:खपरिक्लेशकरं, छिन्धि ममत्वं शरीरात् ।।९।।

निश्चय दृष्टि के अनुसार शरीर और आत्मा भिन्न–भिन्न है। अत: शरीर के प्रति होने वाले दुखद व क्लेशकर ममत्व का छेदन करो।

From the absolute point of view (nischay naya) the body and the soul are distinct from each other,that is why shake off the attachment to the body because it is the cause of suffering andpain.(79)

मन, वचन काया हरपल, कर्म आगमन द्वार ।
करे–कराये, हाँ कहे, होवे बेड़ा पार ।।१.८.१०.८०।।

कम्मासवदाराइं, निरुंभियव्वाइं इंदियाइं च ।
हंतव्वा य कसाया, तिविं–तिविहेण मुक्खत्थं ।।१०।।

कर्मास्रवद्वाराणि, निरोद्धव्यानीन्द्रियाणि च।
हन्तव्याश्च कषायास्त्रिविधत्रिविधेन मोक्षार्थम् ।।१०।।

कर्म के आगमन द्वार(आस्रव) तीन हैं। मन, वचन व काया ये ही तीन योग है। इन तीनों का मोक्ष के लिए करना, कराना व अनुमोदन करना इन तीनों प्रकारों से निषेध करें। वे कषायों का नाश करें।

To attain liberation, one must block all the passages of karmic influx (aasram) and also curb the activities of one's sense organs and must annihilate all passions; all this must be achieved through the three modes of activity, i.e., mind, speech and body and in a three-fold manner of doing, causing to be done and approving the action. (80)

भावहीन हो शोकमुक्त, दुख चक्कर से पार ।
रहकर जल में लिप्त नहीं, जैसे कमल बहार ।।१.८.११.८१।।

भावे विरत्तो मणुओ विसोगी, एएण दुक्खोह-परंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणी पलासं ।।११।।

भावे विरक्तो मनुजो विशोकः, एतया दुःखौघपरम्परया ।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्, जलेनेव पुष्करिणीपलाशम् ।।११।।

भाव से विरक्त मनुष्य शोक मुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नही होता, वैसे ही संसार में रहकर दुखों की परम्परा से लिप्त नही होता।

A person who is free from worldly attachments becomes free from sorrow. Just as the petals of lotus growing in the midst of a lake remain untouched by water, even so, a person who is detached from all passions will remain unaffected by sorrows in this world. (81)

प्रकरण ९ - धर्मसूत्र

Chapter 9 - Precepts On Religion

उत्तम मंगल धर्म है, दया नियम तप भाव ।
नमन देवता भी करे, जिसपे धर्म प्रभाव ।।१.९.१.८२।।

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।१।।

धर्मः मङ्गलमुत्कृष्टं, अहिंसा संयमः तपः ।
देवाः अपि तं नमस्यन्ति, यस्य धर्मे सदा मनः ।।१।।

धर्म उत्तम मंगल है । अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण है । जिसका मन हमेशा धर्म में लगा रहता है उसे देवता भी नमन करते है ।

Dharma is supremely auspicious; non-violence, self control and penance are its essentials. Even the gods bow down before him whose mind is ever coccupied with Dharma. (82)

वस्तु स्वभाव ही धर्म है, क्षमा सहित दश-भाव ।
तीन रतन भी धर्म ही, धर्म अहिंसा भाव ।।१.९.२.८३।।

धम्मो वत्थु-सहावो, खमादि-भावो य दस-विहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो ।।२।।

धर्मः वस्तुस्वभावः,क्षमादिभावःच दशविधः धर्मः ।
रत्नत्रयंच धर्मः, जीवानां रक्षणं धर्मः ।।२।।

वस्तु का स्वभाव धर्म है । क्षमा आदि भावों से वह दस प्रकार का है। त्रिरत्न व जीवों की रक्षा करना धर्म है ।

The essential nature of a thing is called dharma. The ten virtues, i.e. forgiveness etc., are the ten forms of dharma. The three jewels, i.e. right faith, right knowledge and right conduct, constitute the dharma (religion). To render protection to the is living being is o called dharma. (83)

क्षमा, मद, कुटील नही, सत् शौच संयम भाव ।
तप, त्याग, अपरिग्रह भी, दसवां ब्रह्म स्वभाव ।।१.९.३.८४।।

उत्तम-खम महव-ज्जव सच्च सउच्चं च संजमं चेव ।
त्व चाग मकिंचण्हं, बह्म इदि दस-विहो धम्मो ।।३।।

उत्तमक्षमामार्दवार्जव-सत्यशौचं च संयमं चैव ।
तपस्त्याग आकिञ्चन्यं, ब्रह्म इति दशविधः धर्मः ।।३।।

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम अपरिग्रह तथा उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म है।

Note – Akinchanya means not taking the non-self for ones own self. for ones own self. Supreme forgiveness, supreme humility, supreme straightforwardness; supreme truthfulness, supreme purity, supreme self-restraint, supreme penance, supreme renunciation, supreme non-possessiveness and supreme celibacy, these constitute the ten-fold Religion. (84)

सुर-नर-पशु न लगा सके, क्रोध भाव की आग ।
घोर भयंकर कर्म हो, सरल क्षमा का राग ।।१.९.४.८५।।

८५ कोहोण जो ण तप्पदि, सुर-णर-तिरिएहि कोरमाणे वि ।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खमा णिम्मला होदि ।।४।।

क्रोधेन यः न तप्यते, सुरनरतिर्यग्भिः क्रियामाणेऽपि ।
उपसर्गे अपि रौद्रे, तस्य क्षमा निर्मला भवति ।।४।।

देव, मनुष्य व पशुओं द्वारा घोर कष्ट पहुँचाने पर भी जो क्रोधित नहीं होता है उसी का क्षमा धर्म है।

he who does not become excited with anger even when terrible afflictions are caused to him by gods, human beings and beasts, his forbearance is perfect. (85)

सब जीवों को माफ़ करूँ, जीव करेंगे माफ़ ।
मित्र भाव सब जीव से, वैर नहीं मन साफ़ ।।१.९.५.८६।।

खम्मामि सव्वजीवाण, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, बेरं मज्झं ण केण वि ।।५।।

क्षमे सर्वजीवान्, सर्वे जीवाः क्षमन्तां मम ।
मैत्री मे सर्वभूतेषु, वैरं मम न केनापि।।५।।

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करे। मेरा सब जीवों के प्रति मैत्री भाव है। मेरा किसी से वैर नही है।

I forgive all living beings and may all living beings forgive me; I cherish feelings of friendship towards all and I harbour enmity towards none. (86)

किंचित मात्र प्रमादवश, उचित नहीं व्यवहार ।
क्षमा याचना मैं करूँ, बिन कषाय दे प्यार ।।१.९.६.८७।।

जइ किंचि पमाएणं, न सुट्ठु मे वट्टियं मए पुव्विं ।
तं मे खामेमि अहं, निस्सल्लो निक्कसाओ अ ।।६।।

यदि किञ्चित् प्रमादेन, न सुष्ठुयुष्माभिः सह वर्तितं मया पूर्वम् ।
तद् युष्मान् क्षमयाम्यहं, निःशल्यो निष्कषायश्च ।।६।।

अल्पमत प्रमादवश भी यदि मैने आपके प्रति उचित व्यवहार नही किया हो तो मै पापरहित होकर आपसे क्षमा याचना करता हूँ।

I sincerely beg your pardon with a pure heart, in case I have behaved towards you in an improper manner due to even slight inadvertence. (87)

ज्ञान, जात, तप, रूप, कुल, शील न श्रुत सद्भाव ।
श्रमण जो ऐसा करे, मद नहीं धर्म स्वभाव ।।१.९.७.८८।।

कुल-रुव-जादि-बुद्धिसु, तव-सुइ सीलेसु गारवं किंचि ।
जे णवि कुव्वदि समणो, मद्दव-धम्मं हवे तस्स ।।७।।

कुरूपजातिबुद्धिषु, तपःश्रुतशीलेषु गौरवं किञ्चित ।
यः नैव करोति श्रमणः, मार्दवधर्मो भवेत् तस्य ।।७।।

जो साधु कुल, रूप, जाति, ज्ञान, तप, श्रुत और शील का तनिक भी गर्व नही करता, उसका मार्दव धर्म होता है।

A monk who does not boast even slightly of his family, handsomeness, caste, learning, penance, scriptural knowledge and character observes the religion of humility. (88)

करें न जन अपमान कभी, दोष सदा परिहार ।
गुण नही अभिमान करे, मानी नही विचार ।।१.९.८.८९।।

जो अवमाणण-करण दोसं परिहरइ णिच्च माउत्तो ।
सो णाम होदि माणी ण दु गुणचत्तेण माणेण ।।८।।

योऽपमानकरणं, दोषं परिहरति नित्यमायुक्तः ।
सो नाम भवति मानी, न गुणत्यक्तेन मानेन ।।८।।

जो दूसरे को अपमानित करने के दोष को सदा सावधानीपूर्वक टालता है, वही यथार्थ में मानी है। गुणशून्य अभिमान करने से कोई मानी नहीं हो जाता।

The really honoured (Mani/honourable) are those, who carefully avoid (committing) the error (Dosa) of insulting others. A person who merely boasts, has no virtues, cannot command respect. (89)

ऊँच–नीच को भोग कर, नहीं हीन बेकार ।
ऐसा जाने कौन करे, जातपात से प्यार ।।१.९.९.९०।।

से असइं उच्चगाए अवइं णायागाए की होणे णो अइरित्तं ।
णो पीहए इति संखाए, के गोयावादी? के माणावादी? ।।९।।

सः असकृदुच्चैर्गोत्रः असकृन्नीचैर्गोत्रः, नो हीनः नो अतिरिक्तः ।।
न स्पृहोत् इति संख्याय,को गोत्रवादी को मानवादी? ।।९।।

यह जीव अनेक बार उच्च और नीच गोत्र भोग चुका है, यह जानकर कौन गोत्रवादी होगा ।

Every one has born several times in high families as well as in low families; hence none is either high or low. After knowing this, who will feel proud of taking birth in respectable or high family? (90)

मन, वचन व कर्म से, कुटिल नहीं व्यवहार ।
ढके नहीं निज दोष को, आर्जव धर्म विचार ।।१.९.१०.९१।।

जो चिंतइ ण वंकं ण कुणदि वंकं ण जपंदं वकं ।
ण य गोवदि णिय–दोसं अज्जव धम्मो हवे तस्स ।।१०।।

यः चिन्तयति न वक्रं, न करोति वक्रं न जल्पति वक्रम् ।
न च गोपयित निजदोषम्, आर्जवधर्मः भवेत् तस्य ।।१०।।

जो कुटिल विचार नहीं करता, कुटिल कार्य नही करता, कुटिल वचन नहीं बोलता और अपने दोषों को नहीं छुपाता, उसके आर्जव धर्म होता है ।

He who does not think wickedly, does not act wickedly, does not speak wickedly and does not hide his own weaknesses, observes the dharma of straightforwardness. (91)

कटु वचन का त्याग सदा, सबका हित उद्‌गार ।
धर्म है चौथा भिक्षु का, सत्यधर्म व्यवहार ।।१.९.११.९२।।

पर-संतावय-कारण-वयणं, मोत्तूणं स-पर-हिद वयणं ।
जो वददि भिक्खु तुरियो, तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ।।११।।

परसंतापककारण-वचनं, मुक्त्वा स्वपरहितवचनम् ।
यः वदन्ति भिक्षुः तुरीयशः, तस्य तु धर्मः भवेत् सत्यम् ।।११।।

जो साधु दूसरों को दुख पहुँचाने वाले वचनों का त्याग करके स्व व पर हितकारी वचन बोलता है, उसके चौथा धर्म सत्य धर्म होता है।

A monk who avoids all speech that is likely to hurt others and speaks only what is good to himself and to others observes the fourth dharma of truthfulness. (92)

आदि, मध्य और अंत सभी, झूठ दुखी हर हाल ।
आश्रयहीन, अतृप्त, दुखी, खुद ही फँसता जाल ।।१.९.१२.९३।।

मोसस्स पच्छा पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, रुवे अलित्तो दुहिओ अणिस्सो ।।१२।।

मृषावाक्यस्य पश्चाच्च पुरस्ताच्च, प्रयोगकालेच दुःखी दुरन्तः ।
एवमदत्तानि समाददानः, रूपेऽतृप्तो दुःखितोऽनिश्र ।।१२।।

असत्य का प्रारम्भ, मध्य व अंत, हर अवस्था दुखदायी है। विषयों में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ आश्रयहीन हो जाता है।

A person suffers misery after telling a lie, before telling a lie and while telling a lie; thus suffers endless misery, similarly a person who steels or a person who is lustful also suffers misery and finds himself without support. (93)

बात मित्र की कटु लगे, पर हितकारी बात ।
औषधि सी कड़वी रहे, अंत मधुर हो तात ।।१.९.१३.९४।।

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणस्स सगणवासिस्स ।
कडुगं व ओसहं तं, महुर-विवायं हवइ तस्स ।।१३।।

पथ्यं हृदयानिष्टमपि, भणमानस्य स्वगणवासिनः ।
कटुकमिवौषधं तत् मधुरविपाकं भवति तस्य ।।१३।।

अपने मित्र द्वारा कही हुई हितकारी बात, भले ही मन को प्रिय न लगे, कड़वी औषध की तरह परिणाम में मधुर ही होती है ।

Every beneficial advice given by a group-fellow though bitter to the mind at first, proves beneficial in the end, like a medicine which is bitter in taste but fruitful in effect. (94)

माता सा विश्वास भरा, पूज्य गुरु है लोक ।
सत्यवान अपना लगे, करता नेह त्रिलोक ।।१.९.१४.९५।।

विस्ससणिज्जो माया व, होइ पुज्जो गुरु व्व लोअस्स ।
सयणु व्व सच्चवाई, पुरिसो सव्वस्स हाई पिओ ।।१४।।

विश्वसनीयो मातेव, भवति पूज्यो गुरुरिव लोकस्य ।
स्वजन इव सत्यवादी, पुरुषः सर्वस्य भवति प्रियः ।।१४।।

सत्यवादी मनुष्य माता की तरह विश्वनीय, गुरु की तरह पूज्य और स्वजन की तरह प्रिय होता है ।

A person who speaks the truth becomes creditable like a mother, honourable like a guru to his people and dear to all relatives. (95)

तप–संयम सत में बसे, सत्य गुणों की खान ।
मछली सागर में बसे, सत्य सकल गुण स्थान ।।१.९.१५.९६।।

सच्चम्मि वसदि तवो, सच्चम्मि संजमो तह वसे सेसा वि गुणा ।
सच्चं णिबंधणं हि य, गुणाणमुदधीव मच्छाणं ।।१५।।

सत्ये वसति तपः, सत्ये संयमः तथा वसन्ति शेषा अपि गुणाः ।
सत्यं निबन्धनं हि च, गुणानामुदधिरिव म्त्स्यानाम् ।।१५।।

सत्य में तप, संयम और शेष सब गुणों का वास है। जैसे समन्दर मछलियों का आश्रय स्थान है वैसे ही सत्य समस्त गुणों का आश्रय स्थान है।

Truthfulness is the abode of penance, of selfcontrol and of all other virtues; truthfulness is the place of origination of all other noble qualities as the ocean is that of fishes. (96)

लाभ होता लोभ सदा, लाभ ही लोभ बढ़ाय ।
दो माशा जो कर सके, स्वर्ण कोटि असहाय ।।१.९.१६.९७।।

जहा लाहो तहा लोही, लाहा लोहो पवड्ढई ।
दो मास कयं कज्ज, कोडीए वि न निट्ठियं ।।१६।।

यथा लाभस्तथा लोभः, लाभाल्लोभः प्रवर्धते ।
द्विमाषकृतं कार्य, कोट्याऽपि न निष्ठितम् ।।१६।।

जैसे जैसे लाभ होता है वैसे वैसे लोभ बढ़ता है। दोमाशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं से भी पूरा नही होता।

As one gains, so does he become greedy. The Greediness (Lobha) increases with increase in gains (Labha/Profits). A work which could be done by two grams of gold, could not be done even by crores of grams.(97)

स्वर्ण–रौप्य गिरि सम रहे, हो असंख्य कैलाश ।
लोभी मन भरता नहीं, इच्छाएँ आकाश ।।१.९.१७.९८।।

सुवण्ण–रुप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंख्या ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किं चि, इच्छा उ आगास समा अणन्तिया ।।१७।।

सुवर्णरूप्यस्य च पर्वता भवेयुः स्यात् खलु कैलाससमा असंख्या ।।
नरस्य लुब्धस्य न तैः किञ्चित्, इच्छा खलु आकाशसमा अनन्तिका ।।१७।।

सोने चाँदी के कैलास के समान असंख्य पर्वत हो जाय तो भी लोभी पुरुष संतुष्ट नही होता, क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त है ।

Even if a greedy person comes to accumulate a numberless Kailasa-like mountains of gold and silver they mean nothing to him, for desire is as endless as is the sky. (98)

जैसे बगुला अण्ड से, अण्डा बगुला जाय ।
लालच आता मोह से, लोभ मोह को भाय ।।१.९.१८.९९।।

जहा य अंडप्पभवा बलागा, अंडं बलागप्पभवं जहा य ।
ऐमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयंति ।।१८।।

यथा च अण्डप्रभवा बलाका, अण्डं बलाकप्रभवं यथा च ।
एवमेव मोहायतनं खलु तृष्णां, मोहं च तृष्णायतनं वदन्ति ।।१८।।

जैसे मादा बगुला अण्डे से व अण्डा मादा बगुला से उत्पन्न होता है उसी प्रकार लालच मोह से और मोह लालच से उत्पन्न होता है।

The greed begets Dilusion and vice versa. They can be compared with eggs and Bataka. As egg produces Bataka and Bataka produces eggs. (99)

साफ करे मल लोभ का, जल समता संतोष ।
जिसे भोज लालच नहीं, शौच धरम परितोष ।।१.९.१९.१००।।

सम-संतोस-जलेणं, जो धोवदि तिव्व लोह मल पुंजं ।
भोयण-गिद्धि-विहीणो, तस्स सउच्चं हवे विमलं ।।१९।।

समस्तोषजलेन, यः धोवति तीव्रलोभमलपुञ्जम् ।
भोजनगृद्धिविहीनः, तस्य शौचं भवेत् विमलम् ।।१९।।

जो समता व संतोषरूपी जल से लोभरूपी मल को धोता है और जिसमें भोजन की लिप्सा नही है उसके विमल शौचधर्म होता है।

One who washes away the dirty heap of greed with the water of equanimity and contentment and is free from lust for food, will attain perfect purity.(100)

मान्य समिति, व्रत रखे, कषाय-दंड का त्याग ।
इन्द्रियों पर विजय करे, संयम पाँच विभाग ।।१.९.२०.१०१।।

वय-यमिदि-कसायाणं, दंडाण तहिंदियाण-पंचण्हं ।
धारण-पालण-णिग्गह-चाग जओ सजमो भणिओ ।।२०।।

व्रतसमितिकषायाणां, दण्डानां तथा इन्द्रियाणां पञ्चानाम् ।
धारण-पालन-निग्रह-त्यागजयः संयमोः भणितः ।।२०।।

व्रत व समिति का पालन, कषाय छोड़ना, मन-वचन-काया की प्रवृत्तिरूप दण्डों का त्याग, पंचेन्द्रिय जय, इन सबको संयम धर्म कहा जाता है।

Self-restraint (sanyam) consists of the keeping of five vows, observance of five rules of carefulness (samiti) subjugation of passions, controlling all activities of mind, speech and body, and victory over the senses. (101)

मुक्ति विषय-कषाय रहे, ध्यान-ज्ञान का साथ ।
आत्मा को भावित करे, धरमो तप हो हाथ ।।१.९.२१.१०२।।

विसय कसाय-विणिग्गह भावं, काऊण झाण-सज्झाए ।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ।।२१।।

विषयकषाय-विनिग्रहभावं, कृत्वा ध्यानस्वाध्यायान् ।
यः भावयति आत्मानं, तस्य तपः भवति नियमेन ।।२१।।

इन्द्रिय विषयों व कषायों का त्याग कर जो ध्यान और स्वाध्याय में लीन रहता है, उसी के तप धर्म होता है।

Penance (tapa dharma) consists in concentration on the self by meditation, study of the scripture and restraining the senses and passions. (102)

भाव रहे वैराग्य के, द्रव्य मोह का त्याग ।
त्याग धरम का सार है, कथ्य यही वीतराग ।।१.९.२२.१०३।।

णिव्वेद तियं भावइ, मोहं चइऊण सव्व दव्वेसु ।
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं ।।२२।।

निर्वेदत्रिकं भावयति, मोहं त्यक्त्वा सर्वद्रव्येषु ।
यः तस्य भवति त्यागः, इति भणितं जिनवरेन्द्रैः ।।२२।।

जितेन्द्र देव का कहना है कि सब द्रव्यों में होने वाले मोह को त्यागकर जो अपनी आत्मा को भावित करता है, उसके त्याग धर्म होता है।

Supreme Jina has said that true renunciation (tyaga dharma) consists in developing indifference towards the three, namely the world, the body and the enjoyment, through detachment for material objects. (103)

चाहे मीठा भोग हो, पीठ रहे उस ओर ।
द्रव्य त्याग मन से करे, त्यागी धर्म विभोर ।।१.९.२३.१०४।।

जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइं ।।२३।।

यः च कान्तान् प्रियान् भोगान्,लब्धान् विपृष्ठीकरोति । ।
अम्बापितृसमानः, संघः शरणं तु सर्वेषाम् ।।२३।।

त्यागी वही कहलाता है जो प्रिय भोग उपलब्ध होने पर भी उसकी ओर पीठ फेर लेता है और स्वाधीनता पूर्वक भोगों का त्याग करता है।

He alone can be said to have truly renounced everything who has turned his back on all available, beloved and dear objects of enjoyment possessed by him. (104)

भाव रखे सुख–दुख नहीं, कोई संग न जान ।
बिना द्वंद्व विचरण करे, धरम अपरिग्रह मान ।।१.९.२४.१०५।।

होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गाहित्तु सुह–दुहदं ।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्स–किंचण्हं ।।२४।।

भूत्वा च निस्संगः निजभावं निगृह्य सुखदुःखदम् ।
निर्द्वन्द्वेन तु वर्तते, अनगारः तस्याऽऽकिञ्चन्यम् ।।२४।।

जो मुनि सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर, अपने सुख व दुख भावों का निग्रह कर निर्द्वंद्व विचरता हो उसके आकिंचन्य/अपरिग्रह धर्म होता है।

That monk alone acquires the virtue of non possessiveness (Akinchanya-dharma), who renouncing the sense of ownership and attachment and who wanders absolutely care free (Nerdvanda) after controlling all their pleasant and unpleasant thought actions. (105)

शुद्ध ज्ञानमय एक मैं, नित्य अरूप ही मान ।
परम अणु भी नहीं रखूँ, कुछ ना पाया जान ।।१.९.२५.१०६।।

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसण-णाण-मइओ सदा रूवी ।
णवि-अत्थि मज्ज किंचिवि अण्णं परमाणु-मित्तं पि ।।२५।।

अहमेकः खलु शुद्धो, दर्शनज्ञानमयः सदाऽरूपी ।
न्याप्यस्ति मम किञ्चिदप्यन्यत् परमाणुमात्रमपि ।।२५।।

मै एक शुद्ध, दर्शन-ज्ञानमय, नित्य और अरूपी हूँ, इसके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी वस्तु मेरी नही है, यही आकिंचन्यधर्म है।

I am alone, pure, eternal and formless and possessing the qualities of apprehension and comprehension except these is nothing, not even an particle, that is my own. (106)

सुख से जीता मैं सदा, कुछ ना रखता पास ।
मिथिला भी जलती रहे, मेरा क्या है खास ।।१.९.२६.१०७।।

स्त्री पुत्र तज भिक्षुक बन कर, त्याग दिया व्यापार ।
बुरा व अच्छा कुछ नहीं, सब की एक ही धार ।।१.९.२७.१०८।।

सुहं वसामो जीवामो, जेसिं णो नत्थि किंचण ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्जइ किंचण ।।२६।।
चत्त-पुत्त-कलत्तस्स, निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जए ।।२७।।

सुखं वसामो जीवामः, येषाम् अस्माकंनास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां दह्यमानायां, न मे दह्यते किञ्चन ।।२६।।
त्यक्तपुत्रकलत्रस्य, निर्व्यापारस्य भिक्षोः ।
प्रियं न विद्यते किञ्चित्, अप्रियमपि न विद्यते ।।२७।।

मिथिला राज्य त्यागकर साधु हो जानेवाले राजर्षि नमि कहते है, हम जिनके पास अपना कुछ नही है सुख से जीते है। मिथिला जल रही है उसमें मेरा कुछ नही जल रहा है क्योकि पुत्र, स्त्रियों और व्यापार से मुक्त भिक्षु के लिये कोई वस्तु न प्रिय होती है और नही अप्रिय ।।

We, who have nothing of our own, reside happily and live happily. As Nami who had renounced his kingdom and become a saint, said when Mithila was in flames nothing of mine is being burnt there.I have abandoned my children and my wife, I have no occupation; there is nothing dear or not dear to me. (107 & 108)

जल में ज्यूँ उपजे कमल, जलमुक्त राखे काय ।
काम भोग से मुक्त रहे, वो ब्राह्मण कहलाय ।।१.९.२८.१०९।।

जहा पोमं जलं जायं,नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तो कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ।।२८।।

यथा पद्मं जले जातं, नोपलिप्यते वारिणा ।
एवमलिप्तं कामैः, तं वयं ब्रूमो ब्राह्मणम् ।।२८।।

जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नही होता, इसी प्रकार काम भोग के वातावरण में जन्मा मनुष्य उससे लिप्त नही होता, उसे हम ब्राह्मण कहते है।

We call him a Brahmin who remains unaffected by objects of sensual pleasures like a lotus which remains untouched by water though born in it. (109)

निर्मोही, दुख दूर हो, तृष्णा–मोह न पास।
लोभ मिटे, तृष्णा हटे, 'कुछ ना' लोभ विनाश ।।१.९.२९.११०।।

दुक्खं हयं जसस न होइ मोहो, मोहो हओ जसस न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाई ।।२९।।

दुःखं हतं यस्य न भवति मोहः, मोहो हतो यस्य न भवति तृष्णा ।
तृष्णा हता यस्य न भवति लोभः, लोभो हतो यस्य न किञ्चन ।।२९।।

जिसको मोह नहीं उसने दुख का नाश कर दिया है और जिसको तृष्णा नही उसने मोह का नाश कर दिया है। जिसको लोभ नही उसने तृष्णा का नाश कर दिया है और जिसके पास कुछ नही उसने लोभ का ही नाश कर दिया है।

He who has got rid of delusion has his misery destroyed, he who has got desires has his delusion destroyed. He who has got rid of greed has his desires destroyed, he who owns nothing has his greed destroyed. (110)

जीव ही ब्रह्म का रूप है, चर्या उसकी जान।
देह मान से मुक्त रहे, ब्रह्मचर्य पहचान ।।१.९.३०.१११।।

जीवो बंभा जीवम्मि चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो ।
तं जाण बंभचरियं, विमुक्क–परदेह–तत्तिस्स ।।३०।।

जीवो ब्रह्म जीवे, चैव चर्या भवेत्या यतेः ।
तद् जानीहि ब्रह्मचर्य, विमुक्त–परदेहतृप्तेः ।।३०।।

जीवन ही ब्रह्म है। देह आसक्ति से मुक्ति की जो चर्या है वही ब्रह्मचर्य है।

The soul is Brahman, so the activity regarding the self of a monk-who refrains himself from seeking enjoyment through other's body (i. e. sexual enjoyment), is called Brahmacarya (celibacy). (111)

देखे नारी देह तो, उपजे ना दुर्भाव ।
ब्रह्मचारियों सा रहे, दुर्लभ समझ स्वभाव ।।१.९.३१.११२।।

सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं ।
सो बम्हचेरभावं, सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं ।।३१।।

सर्वाङ्गप्रेक्षमाणः स्त्रीणां तासु मुञ्चति दुर्भावम्
स ब्रह्मचर्यभावं, सुकृती खलु दुर्धरं धरति ।।३१।।

स्त्रियो के मनोहर अंगों को देखते हुए भी जो इनमें दुर्भाव नही रखता वही वास्तव में ब्रह्मचर्य भाव को धारण करता है।

He whose mind remains undisturbed and in whom, no ill-intention develops in respect of women, even after looking at all the parts of woman, he observes the most difficult but pious virtue of celibacy. (112)

घड़ा लाख का अगन संग, शीघ्र होत है नाश ।
साधु व्रत भी नष्ट हो, स्त्री से जब सहवास ।।१.९.३२.११३।।

जउ-कुम्भे, जोए उवगूढे, आसभितत्ते नासमुवयाइ ।
एवित्थियाहि अणगारा, संवासेण णास-मुवयंति ।।३२।।

जतुकुम्भे ज्योतिरुपगूढः आश्वभितप्तो नाशमुपयाति ।
एवं स्त्रीभिरनगाराः, संवासेन नाशमुपयान्ति ।।३२।।

जैसे लाख का घड़ा अग्नि के पास नष्ट हो जाता है वैसे ही स्त्री सहवास से मुनि व्रत नष्ट हो जाता है।

Just as a jar made of lac (sealing wax) when placed near fire soon gets melted and perished. Similarly a monk who moves in the company of women looses his character. (113)

औरत की लत छोड़ सके, बाक़ी लत ना भार ।
गंगा भी छोटी लगे, सागर कर ले पार ।।१.९.३३.११४।।

ए ए य संगे समइक्कामित्ता, सुदुत्तरा चेव भवंति सेसा ।
जहा महासागर–मुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ।।३३।।

एतांश्च संगान् समतिक्रम्य, मृदुस्तराश्चैव भवन्ति शेषाः ।
यथामहासागरमुत्तीर्य, नदी भवेदपि गङ्गासमान ।।३३।।

जो मनुष्य स्त्री से आसक्ति को पार पा जाता है उसके लिये शेष आसक्तियाँ वैसी है जैसे सागर पार कर जाने वाले के लिये गंगा।

The man, who conquers the attachment with women, can more easily conquer all other attachments, as easily as who has crossed an ocean, can easily cross the river Ganges. (114)

संग रहे जब नारियाँ, संत निन्दनीय नाम।
शील रक्षिका नारियाँ भी, संग पुरुष बदनाम ।।१.९.३४.११५।।

जह सीलरक्खयाणं पुरिसाणं णिंदिदाओ महिलाओ ।
तह सीलरक्खियाणं, महिलाणं णिंदिदा पुरिसो ।।३४।।

यथा शीलरक्षकाणां, पुरुषाणां निन्दिता भवन्ति महिलाः ।
तथा शीलरक्षकाणां, महिलानाँ निन्दिता भवन्ति पुरुषाः ।।३४।।

जैसे ब्रह्मचारी पुरुष के लिये स्त्रियाँ वर्जित है वैसे ही शीलरक्षिका स्त्रियों के लिये पुरुष वर्जित है।

Just as women become censurable by men observing celibacy, similarly men become censurable by women observing celibacy. (115)

कई गुणवती नारियाँ, फैला कर यश गान ।
पृथ्वी लोक की देवियाँ, देव करे सम्मान ।।१.९.३५.११६।।

किं पुण गुण-सहिदाओ, इत्थीओ अत्थि वित्थड जसाओ ।
णरलोक-देवदाओ, देवेहिं दि वंदणिज्जाओ ।।३५।।

किं पुनः? गुणसहिताः, स्त्रियः सन्ति विस्तृतयशसः
नरलोकदेवताः देवैरपि वन्दनीयाः ।।३५।।

कई शीलगुण संपन्न स्त्रियाँ ऐसी भी है जिनका यश सर्वत्र व्याप्त है। वे मनुष्य लोक की देवियाँ है और देवों के द्वारा वंदनीय है।

But, there are illustrious women of good character and conduct, whose fame is wide spread, who are goddesses on this earth and are even adorned by gods. (116)

विषय-वृक्ष से लोग जले, बहे काम की आग ।
है महान वो आत्मा, यौवन से ना राग ।।१.९.३६.११७।।

तेल्लोक्काडवि डहाणो, कामग्गी विसय-रुक्ख-पज्जलिओ ।
जोव्वण-तणिल्लचारी, जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ।।३६।।

त्रैलोक्याटविदहनः, कामाग्निर्विषयवृक्षप्रज्वलितः ।
यौवनतृणसंचरणचतुरः यं न दहति स भवति धन्यः ।।३६।।

विषयरुपी वृक्षों से लगी कामाग्नि तीनों लोक को जला देती है लेकिन जो इस यौवन अग्नि से नही जलता वो साधु धन्य है।

The sensual fire fed by the trees of desires can burn the forest of the three world, one is blessed whose grass of youthful life remains unburnt by this fire. (117)

गहरी होती रात ज्यूँ, नहीं लौट के आय।
चलता राह अधर्म वो, रजनी निष्फल जाय ।।१.९.३७.११८।।

या या वच्चई रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ।।३७।।

या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते।
यौवनतृणसंचरणचतुरः, यं न दहति स भवति धन्यः ।।३७।।

जो जो रात बीत रही है वो लौटकर नही आती है। अधर्म करने वालों की रात्रियाँ निष्फल चली जाती है

The nights that pass away cannot return back. The night of a person engaged in sinful activities, go waste. (118)

जैसे तीन वणिक चले, पूंजी लेकर साथ।
लाभ मिला बस एक को, मूल एक के हाथ ।।१.९.३८.११९।।
तीजा हारा मूल भी, व्यापारिक ये ज्ञान।
ऐसा ही व्यव्हार हो, यही धर्म है जान ।।१.९.३९.१२०।।

जहा य तिण्णि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया ।
एगोऽत्थ लहई लाहं, एगो मूलेण आगओ ।।३८।।
एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ।।३९।।

यथा च त्रयो वणिजः, मूलं गृहीत्वा निर्गताः ।
एकोऽत्र लभते लाभम्, एको मूलेन आगतः ।।३८।।
एकः मूलम् अपि हारयित्वा, आगतस्तत्र वाणिजः ।
व्यवहारे उपमा एषा, एवं धर्मे विजानीत् ।।३९।।

जैसे तीन व्यापारी पूँजी लेकर निकले। एक लाभ उठाता है। एक मूल लेकर लौटता है। एक मूल भी गँवाकर वापस आता है। इस व्यावहरिक उपमा को धर्म में भी लगाना चाहिए।

Three Merchants started (on business) with their capital; one of them made profit in his business; the other returned back with his capital only; the third one returned after losing all the capital that he had taken with him. Know that in practice, this example is also applicable in religious matter. (119 & 120)

आत्म जाने आत्मा, आत्म-धर्म पहचान ।
धर्म मानती आत्मा, निजसुख आत्मा जान ।।१.९.४०.१२१।।

अप्पा जाणइ अप्पा जहट्ठिओ अप्पसक्खिओ धम्मो ।
अप्पा करेइ तं तह, जह अप्पसुहावओ होइ ।।४०।।

आत्मनं जानाति आत्मा, यथास्थितो आत्मसाक्षिको धर्मः ।
आत्मा करोति तं तथा यथा आत्मसुखापको भवति ।।४०।।

आत्मा ही यथास्थित आत्मा को जानता है। अतएव स्वभावरूप धर्म भी आत्मसाक्षिक होता है। इस धर्म का पालन आत्मा उसी विधि से करता है जिससे कि वह अपने लिये सुखाकारी हो।

The soul alone knows the soul (self) established in soul (self). Hence the Dharma, which consists of the natural self is a self evident. The soul experiences this Dharma in a manner in which it is pleasing to it. (121)

प्रकरण १० - संयमसूत्र
Chapter 10 - Precepts On Self-Restraint

आत्मा वैतरणी नदी, आत्म शाल्मली फूल ।
कामधेनु ही आत्मा, नन्दनवन का मूल ।।१.१०.१.१२२।।

अप्पा नई वेयरणी,, पपा मे कूट–सामली ।
अप्पाकामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ।।१।।

आत्मा नदी वैतरणी, आत्मा मे कूटशाल्मली ।
आत्मा कामदुघा धेनुः, आत्मा मे नन्दनं वनम् ।।१।।

आत्मा ही वैतरणी नदी है । आत्म ही कूटशाल्मली (सिल्क का फूल) है । आत्मा ही कामधेनु है । आत्मा ही नन्दन वन है ।

My soul is river "vailarini"; the soul is the "kutashalmali" tree; the soul is the kama-dhenu" cow; and the soul is Nandanavana forest. (122)

कर्ता भोक्ता आत्मा, सुख–दुख एक समान ।
सत्य सुपथ पर मीत रहे, कुपथ शत्रु सी जान ।।१.१०.२.१२३।।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण व सुहाण व ।
अप्पा मित्त–ममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ।।२।।

आत्मा कर्ता विकर्ता च, दुःखानां च सुखानां च ।
आत्मा मित्रममित्रम् च, दुष्प्रस्थितःसुप्रस्थितः ।।२।।

आत्मा ही सुख–दुख की कर्ता और भोक्ता है । आत्मा ही सत्य के पथ पर मित्र है और दुष्प्रवृति में आत्मा ही शत्रु है ।

The soul is the doer (karta) and enjoyer (Bhokta) of pleasures and pains. The soul, engaged in good deeds is our friend and the soul engaged in bad deeds is our enemy. (123)

शत्रु आत्मा एक ही, अजितेन्द्रिय-कषाय।
जीत उन्हें विचरण करे, मुनि का यही उपाय ।।१.१०.३.१२४।।

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ।।३।।

एक आत्माऽजितः शत्रुः, कषाया इन्द्रियाणि च ।
तान् जित्वा यथान्यायं, विहराम्यहं मुने ! ।।३।।

अविजित इन्द्रियाँ व कषाय ही शत्रु है। मुनि उन्हें जीतकर धर्म अनुसार विचरण करता है।

One's unconquered self, unconquered passions and uncontrolled senseorgans are one's own enemies. Oh: monk I freely wander in Just and appropriate manner as I have conquered them. (124)

युद्ध हज़ारों जीत के, अजय भले ही मान।
जीत लेना आत्म को, परम विजय सम्मान ।।१.१०.४.१२५।।

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एयं जिणेज्ज अप्पाणं, एस मे परमो जओ ।।४।।

यः सहस्रं सहस्राणां, सङ्ग्रामे दुर्जये जयेत् ।
एकं जयेदात्मानम्, एष तस्य परमो जयः ।।४।।

हज़ारों युद्ध जीतने की अपेक्षा जो आत्मा को जीत लेता है वही परमविजय का सम्मान पाता है।

One may conquer thousands and thousands of enemies in an invincible battle; but the supreme victory consists in conquest over one's self. (125)

युद्ध हो अपने–आप से, बाह्य युद्ध बेकार ।
जो आत्मा को जीत ले, सच्चे सुख की धार ।।१.१०.५.१२६।।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झाओ ?
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ।।५।।

आत्मानमेव योधयस्व, किं ते युद्धेन बाह्यतः ।
आत्मानमेव आत्मनं, जित्वा सुखमेधते ।।५।।

बाहरी युद्धों से क्या? स्वयं अपने से ही युद्ध करो। सच्चा सुख उसे ही मिलता है जो अपने को जीत ले।

Fight with thyself; what is the good in fighting against external foes? One can get supreme happiness by conquering one's own self by one's self. (126)

विजय आत्मा पर करो, यही कठिन है काम ।
आत्मजीत ही सुख बड़ा, सभी लोक में नाम ।।१.१०.६.१२७।।

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ अस्सिं लोए परत्थ य ।।६।।

आत्मा चैव दमितव्यः, आत्मा एव खलु दुर्दमः।
आत्मा दान्तः सुखी भवति, अस्मिंल्लोके परत्र च ।।६।।

स्वयं पर ही विजय प्राप्त करना चाहिये। ये ही सबसे कठिन काम है। आत्म–विजेता ही इस लोक और परलोक में सुखी होता है।

One must conquer one's own self, because it is difficult to conquer it. One who has conquered one's own self attains bliss in this world as well as in the next.(127)

जीत स्वयं की है उचित, संयम तप का द्वार ।
पर को क्यूँ अधिकार दूँ, बंधन, वध, संहार ।।१.१०.७.१२८।।

वरं मे अप्पा दन्तो, संजमो तवेण य ।
मा हं परेहि दम्मंतो, बंधतेहि वहेहि य ।।७।।

वरं मयात्मा दान्तः, संयमेलन तपसा च ।
माऽहं परैर्दम्यमानः, बन्धनैर्वधश्च ।।७।।

संयम व तप द्वारा स्वयं को जीतना ही उचित है । दूसरे मुझे बंधन और वध द्वारा प्रताड़ित करे यह उचित नही ।

It is proper that I must conquer my self by self restrainst and penance. But it is not proper that I should be vanquished by others and made a prisoner or killed by them. (128)

इक से भागूँ दूर मैं, जाऊँ द्विक के पास ।
त्याग असंयम का करूँ, संयम करूँ निवास ।।१.१०.८.१२९।।

एगओ विरईं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिंच, संजमे य पवत्तणं ।।८।।

एकतो विरतिं कुर्यात्, एकतश्च प्रवर्तनम् ।
असंयमान्निवृत्तिं च, संयमे च प्रवर्तनम् ।।८।।

एक को छोड़ना है व दूसरे को अपनाना है । असंयम को छोड़ना है व संयम को अपनाना है ।

One should desist from action in one direction and undertake action in another direction. One should avoid being incontinent and should practise self-restraint. (129)

राग द्वेष दोनों यहाँ, पाप कर्म से युक्त ।
भिक्षुक इनसे दूर रहे, भवसागर से मुक्त ।।१.१०.९.१३०।।

रागद्दोसे य दो पावे, पाव-कम्म-पवत्तणे ।
जे भिक्खु रुम्भई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ।।९।।

रागो द्वेषः च द्वौ पापौ, पापकर्मप्रवर्तकौ ।
यो भिक्षुः रुणद्धि नित्यं, स न आस्ते मण्डले ।।९।।

राग और द्वेष ये दो पाप हैं। भिक्षु जो इनसे दूर रहता है वह संसार से मुक्त हो जाता है

The two sins attachment and aversion lead one to commit sinful acts. That monk who always control them will not wander in this mundane existence. (130)

ज्ञान-ध्यान तप से करे, बल से रोके काम ।
काम वासना त्यूँ रुके, घोड़ा रुके लगाम ।।१.१०.१०.१३१।।

नाणेण य झाणेण य, तवोबलेण य बला निरुभंति ।
इन्दिय विसय कसाया, धरिया तुरगा व रज्जूहिं ।।१०।।

ज्ञानेन च ध्यानेन च, तपोबलेन च बलान्निरुध्यन्ते ।
इन्द्रियविषयकषाया, धृतास्तुरगा इव रज्जूभिः ।।१०।।

ज्ञान, ध्यान और तप से इन्द्रिय विषयों व कषायों को बलपूर्वक रोकना चाहिये, जैसे कि लगाम के द्वारा घोड़ों को रोका जाता है ।

Just as a horse can be controlled by a bridle, the sensual pleasures and passions can be forcefully kept under control by knowledge, meditation and power of penance. (131)

महामुनि जिनेश्वर से, जल कषाय की आग ।
पद से अपने गिर पड़े, क्या फिर मुनि सराग ।।१.५.११.१३२।।

उवसामं पुवणीता, गुणमहता जिण-चरित्त-सरिसं पि ।
पडिवातंति कसाया, किं पुण सेसे सरागत्थे ।।११।।

उपशमम् अप्युपनीतं, गुणमहान्तं जिनचरित्रसदृशमपि ।
प्रतिपातयन्ति कषायाः, किं पुनः शेषान् सरागस्थान् ।।११।।

कषाय जिनेश्वर देव के समान चरित्र वाले मुनि को गिरा देती है तब मुनि जो रागयुक्त हो उसका तो कहना ही क्या?

When suppressed, passion can bring about the spiritual degeneration of even the most virtuous monk, who in his conduct is akin to Jina himself, what can we say of monks who are under the sway of attachment? (132)

जो कषाय उपशांत कर, गति अनंत खो जाय ।
राग-द्वेष में जो फँसे, उनका नहीं उपाय ।।१.१०.१२.१३३।।

इह उवसंतकसाओ लहइ अणंतं पुणो वि पडिवायं ।
न हु भे वीससियव्वं, थेवे वि कसायसेसम्मि ।।१२।।

इह उपशान्तकषायो, लभतेऽनन्तं पुनरपि प्रतिपातम् ।
न हि युष्माभिर्विश्वसितव्यं स्तोकेऽपि कषायशेषे ।।१२।।

सब कषायों को उपशान्त करने वाला भी कभी कभी अनन्त गति में भ्रमण करता रहता है फिर उसका तो कहना ही क्या जिसमें थोड़ा राग द्वेष बचा है।

Even one who has subsided or repressed all his passions, once more experiences a terrible spiritual degeneration, hence one ought not to become complacent when some remnants of passions still continue.(133)

ऋण, घाव या पाप हो, या फिर अल्प हो आग ।
थोड़ा मत ये जानिये, बढ़ते रहे सुराग ।।१.१०.१३.१३४।।

अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोवं च।
न हु मे वीससियव्वं, थोवं पि हु तं बहु होइ ।।१३।।

ऋणस्तोकं व्रणस्तोकम्, अग्निस्तौकं कषायस्तोकं च।
नहि भवद्भिर्विश्वसितव्यं, स्तोकमपि खलु तद् बहु भवति ।।१३।।

ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक व कषाय को अल्प मान कर नही बैठना चाहिये क्योंकि ये थोड़े से ही बड़े हो जाते है।

One should not be complacent with a small debt, slight wound, spark of fire and slight passion, because what is small today may become bigger later. (134)

क्रोध प्रेम विनाश करे, मान विनय का नाश।
माया मैत्री दूर कर, लोभ करे सब नाश ।।१.१०.१४.१३५।।

कोहो पीइं पणासेइ माणो विणय-नासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्व-विणासणो ।।१४।।

क्रोधः प्रीतिं प्रणाशयति, मानो विनयनाशनः।
माया मित्राणि नाशयति, लोभः सर्वविनाशनः ।।१४।।

क्रोध प्रेम का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है। माया मैत्री को नष्ट करती है। लोभ सब कुछ नष्ट करता है।

Anger destroys love, pride destroys modesty, deceit destroys friendship; greed is destructive of everything. (135)

क्षमा–क्रोध को जीत ले, विनय हराये मान ।
निर्मल वश माया रहे, तृप्ति ये लोभ कमान ।।१.१०.१५.१३६।।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चज्जवभाणेण, लोभं संतोसओ जिणे ।।१५।।

उपशमेन हन्यात् क्रोधं, मानं मार्दवेन जयेत् ।
मायां च आर्जवभावेन, लोभं सन्तोषतो जयेत् ।।१५।।

क्षमा से क्रोध को जीता जा सकता है । नम्रता से मान को । सरलता से माया को और संतोष से लोभ को जीता जा सकता है ।

Destroy anger with forgiveness; conquer pride with humility; conquer Deceit with straight forwardness (honesty); and conquer greed with contentment. (136)

कछुआ लेता अंग छुपा, देह में अपनी जान ।
ज्ञानी अपने पाप मिटा, पढ़े आत्म का ज्ञान ।।१.१०.१६.१३७।।

जहा कुम्भे सअंगाई, सए देहे समाहरे ।
एवं पावेहिं अप्पाणं, अज्झप्पेण समाहरे ।।१६।।

यथा कूर्मः स्वअङ्गानि, स्वके देहे समाहरेत् ।
एवं पापानि मेधावी, अध्यात्मना समाहरेत् ।।१६।।

जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने कवच में समेट लेता है वैसे ही ज्ञानी पुरुष अध्यात्म द्वारा अपने पापों को समेट लेते हैं।

Just as a tortoise protects itself by withdrawing all its limbs within its own body, similarly a wise man protects himself from evil by withdrawing himself from sins and passions. (137)

जाने अनजाने भले, पाप भरे हो काम।
करें अलग ख़ुद को तुरंत, फिर ना दे अंजाम ।।१.१०.१७.१३८।।

से जाण-मजाणं वा, कट्टु आहम्मियं पयं।
संवरे खिप्प-मप्पाणं, बीयं तं न समायरे ।।१७।।

स जानन् अजानन् वा, कृत्वा आधार्मिकं पदम्।
संवरेत् क्षिप्रमात्मानं, द्वितीयं तत् न समाचरेत् ।।१७।।

जाने अंजाने में कोई अधर्म कार्य हो जाय तो अपनी आत्मा को तुरंत उससे हटा लेना चाहिये जिससे दुबारा वो कार्य न किया जाय।

When an unrighteous deed is committed, whether consciously or unconsciously, one should immediately control oneself so that such an act is not committed again. (138)

धर्म रथ पर भिक्षु चले, चालक धीरजवान।
धर्म में ही रमता रहे, ब्रह्मचर्य विधान ।।१.१०.१८.१३९।।

धम्मारामे चरे भिक्खु, धिइमं धम्मसारही।
धम्माराम-रए दंते, बम्भचेर-समाहिए ।।१८।।

धर्मारामे चरेद् भिक्षुः, धृतिमान् धर्मसारथिः।
धर्मारामरतो दान्तः, ब्रह्मचर्यसमाहितः ।।१८।।

धैर्यवान, धर्म के रथ को चलानेवाला, जो धर्म में ही रमा रहे और ब्रह्मचर्य में लीन रहने वाला भिक्षु धर्म में विचरण करता है।

A monk who is a courageous driver of the chariot of religion, engrossed in the delight of religion, self-controlled and devoted to celibacy, wanders in the garden of religion. (139)

प्रकरण ११ - अपरिग्रहसूत्र

Chapter 11 - Precepts On Non-Possessiveness

हिंसा, चोरी, झूठ ये, सब दोषों की खान ।
काम-वासना-मोह के, परिग्रह कारण मान ।।१.११.१.१४०।।

संगनिमित्तं मारइ, भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं ।
सेवइ मेहुण मुच्छं, अप्परिमाणं कुणइ जीवो ।।१।।

संगनिमत्तं मारयति, भणत्यलीकं करोति चोरिकाम् ।
सेवते मैथुनं मूर्च्छामपरिमाणां करोति जीवः ।।१।।

जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है। इस प्रकार परिग्रह सभी पापों की जड़ है।

Owing to attachment, a person commits violence, tells lies, commits theft, indulges in sex and develops a will for unlimited hoarding. Lust of possession constitutesthe root cause of all the five-vices (140)

जीव या निर्जीव रहे, रखता अपने पास ।
या कभी देता अनुमति नहीं मुक्ति की आस ।।१.११.२.१४१।।

चित्त-मंत-मचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि ।
अण्णं वा अणुजाणाइ, एवं दुक्खा ण मुच्चई ।।२।।

चित्तवन्तमचित्तं वा, परिगृह्य कृशमपि ।
अन्यं वा अनुजानाति, एवं दुःखात् न मुच्यते ।।२।।

सजीव या निर्जीव, अल्प वस्तु का भी जो परिग्रह करता है या दूसरे को अनुमति देता है, वह दुख से मुक्त नही होता।

A person who hoards even the slightest amount of an animate or inanimate thing or gives consent to some one for hoarding, will not escape escape from misery. (141)

लालच को जो त्याग दे, करे परिग्रह त्याग ।
ऐसे पथ पर जो चले, जानो मुनि बैराग ।।१.११.३.१४२।।

जे ममाइय मतिं जहाति, से जहाति ममाइयं ।
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स नत्थि ममाइयं ।।३।।

यो ममायितमतिं जहाति,स त्यजति ममायितम् ।
स खलु दृष्टवथः मुनिः, यस्य नास्ति ममायितम् ।।३ ।।

जो लालच का त्याग करता है वही परिग्रह का त्याग कर सकता है। जिसके पास परिग्रह नही वो ही मुनि मुक्ति के मार्ग पर चल सकता है।

He alone can renounce possession. Who renounces the mentality of possession. The posessionless saint alone knows the Right path. (142)

वेद, राग, मिथ हास्य ये, एकाधिक है दोष।
चार कषाय के साथ है, चौदह अन्तर कोष ।।१.११.४.१४३।।
बाहर है घर खेत संग, वस्त्र पात्र धन-धान।
दास पशु संग यान है, शय्या, आसन जान ।।१.११.५.१४४।।

मिच्छत-वेदरागा, तहेव हासादिया य छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया, चउदस अब्भंतरा गंथा ।।४।।
बाहिरसंगा खेत्तं वत्थुं धणधण्ण-कुप्पभंडाणि।
दुपय-चउप्पय जाणाणि चेव सयणा-सणे य तहा ।।५।।

मिथ्यात्ववेदरागाः, तथैव हासदिकाः च षड्दोषाः ।
चत्वारस्तथा कषायाः, चतुर्दश अभ्यन्तराः ग्रन्थाः ।।४।।
बाह्यसंगाः क्षेत्रं, वास्तुधनधान्यकुप्यभाण्डानि ।
द्विपदचतुष्पदानि यानानि, चैव शयनासनानि च तथा ।।४।।

परिग्रह दो प्रकार का है। आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर परिग्रह चौदह प्रकार के है। मिथ्यातव, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ।
बाह्य परिग्रह दस प्रकार के है। भूमि, मकान, धन–धान्य, वस्त्र, बर्तन, दास–दासी, पशु, यान, शय्या, आसन।

Attachment of possessiveness is of two kinds; internal and external. The internal possessiveness is of fourteen kinds
(1) wrong belief, (2) Sexual desire for women, (3) Sexual desire for man, (4) Sexual desire for both, (5) Laughter, (6) Liking, (7) Disliking, (8) Grief, (9) Fear, (10) Disgust, (11) Anger, (12) Pride, (13) Deceit and (14) Greed.
The external possessions are ten: (1) Fields, (2) Houses, (3) Wealth and food-grains, (4) Stock of house-hold goods. (5) Utensils, (6) male or female slaves (7) Animals, (8) Vehicles, (9) Beddings and (10) Seats.(143-144)

सर्व परिग्रह मुक्त जो, शीतल शांत प्रसन्न ।
चक्रवर्ती रहता नहीं, ऐसे सुख संपन्न ।।१.११.६.१४५।।

सव्वग्गंथविमुक्को सीदोभूदो, पसण्णचित्तो य ।
जं पावइ पीयिुहं ण चक्कवट्टी वि तं लहइ ।।६।।

सर्वग्रन्थविमुक्तः, शीतीभूतः प्रशान्तचित्तश्च।
यत्प्राप्नोति मुक्तिसुखं, न चक्रवर्त्यपि तल्लभते ।।६।।

सम्पूर्ण परिग्रह से मुक्त प्रसन्नचित साधु जो मुक्तिसुख पाता है वो चक्रवर्ती राजा को भी नही मिलता है।

One who is completely free from all possessiveness, is calm and serene in his mind and attains bliss of emancipation which even an emperor cannot obtain. (145)

हाथी वश अंकुश करे, खाई नगर रक्षार्थ।
इन्द्रीयों को वश करने, परिग्रह तज बिन स्वार्थ ।।१.११.७.१४६।।

गंथच्चाओ इन्दिय-णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स ।
णयरस्स खाइया वि य, इंदियगुत्ती असंगत्तं ।।७।।

ग्रन्थत्यागः इन्द्रिय-निवारणे अंकुश इव हस्तिनः।
नगरस्य खातिका इव च, इन्द्रियगुप्तिः असंगत्वम् ।।७।।

जैसे हाथी को वश करने के लिये अंकुश होता है और नगर की रक्षा के लिये खाई होती है वैसे ही इन्द्रिय वश करने के लिये परिग्रह का त्याग है।

Just as one controls the elephant by means of a hook or just as the moat around the city protects the city; similarly the renunciation o f possession controls sense-organs. Nonpossession assists one in his endeavours for sense control. (146)

प्रकरण १२ - अहिंसासूत्र

Chapter 12 - Precepts On Non-Violence

ज्ञानी का है अर्थ यही, हिंसा हो नहीं जान ।
समता धर्म अहिंसकता, यही एक विज्ञान ।।१.१२.१.१४७।।

एयं खु णाणिणो सारं, जं ण हिंसइ कंचणं ।
अहिंसा समयं चेव, एयावंतं वियाणिया ।।१।।

एतत् खलु ज्ञानिनः सारं, यत् न हिनस्ति कञ्चन् ।
अहिंसा समतां चैव, एतावतीं विजानीयात् ।।१।।

ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न हो । अहिंसामूलक समता ही धर्म है और यही अहिंसा का विज्ञान है।

It is the essential trait of a wise man that he does not kill any living being. Certainly, one has to understand just two principles namely nonviolence and equality of all living beings. (147)

जीना चाहे जीव सब, मरना कभी न चाह ।
हत्या ही है पाप बड़ा, साधु वर्जित राह ।।१.१२.२.१४८।।

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ।।२।।

सर्वे जीवाः अपि इच्छन्ति, जीवितुं न मर्तुम् ।
तस्मात्प्राणवधं घोरं, निर्ग्रन्थाः वर्जयन्ति तम् ।।२।।

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं । इसलिये जीव हत्या को मुनि वर्जित मानते हैं।

All the living beings want to live they do not want to die. That is why possessionless saints prohibit the killing of living beings. (148)

दो तरह जीव लोक में, चल व अचल प्रकार ।
करे कराये या नहीं, हिंसा जीव विचार ।।१.१२.३.१४९।।

जावंति जोए पाणा, तसा अदुव थावरा ।
ते जाण-मजाणं वा, ण हणे णो वि घायए ।।३।।

यावन्तो लोके प्राणा-सत्रसा अथवा स्थावराः ।
तान् जानन्नजानन्वा, न हन्यात् नोऽपि घातयेत् ।।३ ।।

लोक में त्रस और स्थावर जीव है, साधु उनकी जाने या अनजाने में हत्या न करे न करवाये ।

Whether knowingly or unknowingly one should not kill living beings, mobile or immobile, in this world, nor should cause them to be killed by others. (149)

ज्यूँ दुख प्रिय तुमको नहीं, किसी जीव ना भाय ।
आदर हो सब जीव का, दया भाव मन आय ।।१.१२.४.१५०।।

जह ते न पियं दुकखं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं ।
सव्वायरमुवउत्तो अत्तोवम्मेण कुणसु दयं ।।४।।

यथा ते न प्रियं दुःखं, ज्ञात्वैवमेव सर्वजीवानाम् ।
सर्वादरमुपयुक्तः, आत्मौपम्येन कुरु दयाम् ।।४।।

जैसे तुम्हें दुख अच्छा नही लगता वैसे ही सब जीवों को दुख अच्छा नही लगता इसलिये सब जीवों के प्रति आदर व दया का भाव रखे ।

Just as you do not cherish pain similarly all the living beings also do not cherish pain. Knowing this principle of equality treat other with respect and compassion. (150)

जीव वध है वध अपना, दया स्वयं पर जान ।
सब हिंसा परित्याग हो, तभी आत्महित मान ।।१.१२.५.१५१।।

जीववहो, अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ ।
ता सव्वजीवहिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहिं ।।५।।

जीववध आत्मवधो,जीवदयाऽऽत्मनो दया भवति।
तस्मात् सर्वजीवहिंसा, परित्यक्ताऽऽत्मकामैः ।।५।।

जीव वध अपना वध है। जीव दया अपनी ही दया है। इसलिये आत्महितैषी पुरुषों ने सब जीवों की हिंसा का परित्याग किया है।

Killing a living being is killing one's own self; showing compassion to a living being is showing compassion to oneself. He who desires his own good, should avoid causing any harm to a living being. (151)

हनन योग्य समझे जिसे, ख़ुद को तू पहचान ।
आज्ञा में समझे जिसे, तू ख़ुद है यह मान ।।१.१२.६.१५२।।

तुमं सि नाम स चेव, जं हंतव्व ति मन्नसि ।
तुमं सि नाम स चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि ।।६।।

त्वम् असि नाम स एव, यं, हन्तव्यमिति मन्यसे।
त्वम् असि नाम स एव, यमाज्ञापयितव्यमिति मन्यसे ।।६।।

जिसे तू हनन योग्य मानता है वो तू ही है। जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है वो भी तू ही है।

The being whom you want to kill is the very same as you are yourself, the being whom you want to be kept under obedience is the very same as you yourself.(152)

राग अगर जो हो नहीं, हिंसा रहे न शेष ।
राग रहे हिंसा रहे, जिन का यह निर्देश ।।१.१२.७.१५३।।

रागादीणमणुप्पाओ, अहिंसकत्त त्ति देसियं समए ।
तेसिं चे उप्पत्ती, हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा ।।७।।

रागादीनामनुत्पादः, अहिंसकत्वमिति देशितं समये ।
तेषां चेद् उत्पत्तिः, 'हिंसा' इति जिनैर्निर्दिष्टा ।।७।।

जिनेश्वर देव ने कहा है कि राग न होना अहिंसा है और राग होना हिंसा है।

It is said by Lord Jina that absence of attachment etc. is ahimsa (nonviolence) while their presence is himsa (violence). (153)

विचार करे बंधन बँधे, मरे न चाहे जीव ।
कर्म बंध का रूप यही, निश्चयनय की नींव ।।१.१२.८.१५४।।

अज्झवसिएण बंधो, सत्ते मारेज्ज मा थ मारेज्ज ।
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छयणयस्स ।।८।।

अध्यवसितेन बन्धः, सत्यान् मारयेद् मा अथ मारयेत् ।
एष बन्धसमासो, जीवानां निश्चयनयस्य ।।८।।

जीव हत्या का विचार करने से ही बंधन बंध जाते हैं चाहे वास्तविकता में हत्या हो या नहीं । निश्चयनय के अनुसार कर्म बंधन का यही स्वरूप है ।

Even an intention of killing is the cause of the bondage of Karma, whether you actually kill or not; from the real point of view, this is the nature of the bondage of Karma.(154)

विरक्त नहीं जो हिंसा से, या रखता परिणाम ।
या मद में उलझा रहे, हिंसा का ही काम ।।१.१२.९.१५५।।

हिंसादो अविरमणं वहपरिणामो य होइ हिंसा हु ।
तम्हा पमत्तजोगो, पाणव्वरोवओ णिच्चं ।।९।।

हिंसातोऽविरमणं, वधपरिणामः च भवति हिंसा हि ।
तस्मात् प्रमत्तयोगे, प्राणव्यपरोपतः नित्यम् ।।९।।

हिंसा से विरक्त न होना या हिंसा का परिणाम रखना ही हिंसा है इसलिये जहाँ प्रमाद है वही नित्य हिंसा है ।

Nourishing the thoughts and attitudes of violence in mind and not renouncing violence amounts to committing violence. He who is passionless (Apramatta/careless) is non violent; and on the contrary he who is passionate (pramatta) is violent. (155)

सतत कर्म क्षय में रहे, रखे ना हिंसा भाव ।
ज्ञानी उसको मानिये, अहिंसक धर्म प्रभाव ।।१.१२.१०.१५६।।

णाणी कम्मस्स खयत्थ–मुट्ठिदो णोट्ठिदो य हिंसाए ।
अददि असढं अहिंसत्थं अप्पमत्तो अवधगो सो ।।१०।।

ज्ञानी कर्मणःक्षयार्थ–मुत्थितो नोत्थितः च हिंसायै।
यतति अशठम् अहिंसार्थम् अप्रमत्तः अवधकः सः ।।१०।।

जो निरंतर कर्म क्षय में लगा रहता है और हिंसा का भाव नही रखता है वह अप्रमत्त मुनि अहिंसक होता है ।

The wise has started endeavouring (Udyat) for the eradication of karmas (Karma-kshaya); while not committing violence. He sincerely endeavours for non-violence. Such a careful (cautious/Apramatta/passionless) saint is definitely nonviolent. (156)

अहिंसा–हिंसा आत्म की, निश्चय नय यह जान ।
प्रमत्त नहीं, अहिंसक है, प्रमत्त हिंसक मान ।।१.१२.११.१५७।।

अत्ता चेव अहिंसा, अत्ता हिंसत्ति णिच्छओ समये ।
जो होदि अप्पमत्तो, अहिंसगो हिंसगो इदरो ।।११।।

आत्मैवाहिंसाऽऽत्मा, हिंसेति निश्चयः समये ।
यो भवति अप्रमत्तोऽहिंसकः, हिंसकः इतरः ।।११।।

आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है । यह सिद्धान्त निश्चय है । जो अप्रमत्त है वो अहिंसक है और जो प्रमत्त है वो हिंसक है ।

As per scriptures the soul is both violent and nonviolent. He who is careful is non-violent and who is careless is violent. (157)

मेरु से कोई उच्च नहीं, नभ से नहीं विशाल ।
धरम अहिंसा ही बड़ा, सकल जगत सब काल ।।१.१२.१२.१५८।।

तंगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि ।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्महिंसासमं नत्थि ।।१२।।

तुङ्गं न मन्दरात्, आकाशाद्विशालकं नास्ति ।
यथा तथा जगति जानीहि, धर्मोऽहिंसासमो नास्ति ।।१२।।

जैसे जगत में मेरु पर्वत से कोई ऊँचा नहीं है और आकाश से विशाल और कुछ भी नहीं है वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।

No mountain is higher than the Meru; nothing is more expansive than the sky; similarly know that there is no religion equal to the religion of ahimsa in this world why do you indulge. (158)

हे संसारी हो निर्भय, करो अभय का दान ।
हिंसा में आसक्त क्यूँ, लोक अनित्य सुजान ।।१.१२.१३.१५९।।

अभय पत्थिवो-तुब्भं, अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीव-लोगम्मि, किं हिंसाए पज्जसि? ।।१३।।

अभयं पार्थिव! तुभ्यम् अभयदाता भव च।
तमेवमेवं लालप्यमानं, हरा हरन्तीति कथं प्रमादः?।।१३।।

हे संसारी निर्भय बनो और अभयदान दो। इस अनित्य काल में हिंसा में क्यों आसक्त हो रहा है।

Oh: Mortal being! be free from fear and you let others be free from fear. In this transitory world, why do you indulge in violence? (159)

प्रकरण १३ – अपमादसूत्र

Chapter 13 - Precepts On Non-Vigilance

मेरा है, मेरा नहीं, करूँ, न करूँ ख़याल ।
क्यूँ आलस में मन रहे, हर लेता है काल ।।१.१३.१.१६०।।

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाए? ।।१।।

इदं च मेऽस्ति इदं च नास्ति, इदं च मे कृत्यमिदमकृत्यम् ।
तमेवमेवं लालप्यमानं, हरा हरन्तीति कथं प्रमादः? ।।१।।

काल हमें कब उठा लेगा यह किसी को नहीं मालूम फिर ऐसी स्थिति में व्यक्ति क्यों आलसी बना रहता है? यह मेरे पास है यह नही है, यह मुझे करना है और यह नहीं करना है, व्यर्थ की बकवास में रह जाता है।

The God of death/ yama may carries away the person anytime. how can one afford to remain careless (apramatt) and keep fondling that this is with me and this is not,this is done by me and this is not. (160)

ज्ञान सार इस लोक में, सोने में बरबाद ।
सतत जागरण से करे, पूर्व कर्म नाशाद ।।१.१३.२.१६१।।

सीतंति सुवंताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था ।
तम्हा जागरमाणा, विधुणध पोराणयं कम्मं ।।२।।

सीदन्ति स्वपताम्, अर्थाः पुरुषाण लोकसारार्थाः ।
तस्माज्जागरमाणा, विधूनयत पुराणकं कर्म ।।२।।

इस जगत में ज्ञान ही सारभूत अर्थ है। जो सोते है उनके वो अर्थ नष्ट हो जाते हैं। अतः सतत जागकर पूर्वार्जित कर्मों को नष्ट कर देना चाहिये।

He who sleeps, his many excellent things of this world are lost unknowingly. Therefore, remain awake all the while and destroy the Karmas, accumulated in the past. (161)

नींद अधर्मी को मिले, जागे धर्म सुजान ।
वत्सराज की बहन से, कह जयन्ति भगवान ।।१.१३.३.१६२।।

जागरिया धम्मीणं, अहम्मीणं च सुत्तया सेया ।
वच्छाहिवभगिणीए, अकहिंसु जिणो जयंतीए ।।३।।

जागरिका धर्मिणाम्, अधर्मिणां च सुप्तता श्रेयसी।
वत्साधिपभगिन्याः, कथितवान् जिनः जयन्त्याः ।।३ ।।

भगवान महावीर ने वत्सदेश के राजा शतानीक की बहन जयन्ती से कहा ''धार्मिक का जागना उत्तम है और अधात्मिकों का सोना अच्छा है।''

It is better that the religious-minded should awake and the wicked should sleep; this is what Jina said to Jayanti, the sister of the kings of Vatsadesa. (162)

पण्डित हरपल सजग रहे, सोया हो संसार।
तन दुर्बल, समय कठिन है, भारण्ड सा व्यवहार ।।१.१३.४.१६३।।

सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध-जीवी, न वीससे पण्डिए आसु-पन्ने ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारुण्ड पक्खी व चराप्पमत्तो ।।४।।

सुप्तेषु चापि प्रतिबुद्धजीवी, न विश्वसेत् पण्डित आशुप्रज्ञः ।
घोराः मुहूर्त्ता अवलं शरीरम्, भारण्डपक्षीव चरेद् अप्रमत्तः ।।४।।

ज्ञानी पंडित सोये हुए व्यक्तियों के बीच भी जागृत रहे। लापरवाही में विश्वास न करे। समय कठोर है और तन निर्बल है इसलिये भारण्ड पक्षी की तरह सजग विचरण करें।

A wise person of sharp intelligence should be awake, even amongst those who sleep; he should not be complacent, because time is relentless and the body is weak, (So) he should ever be vigilant like the fabulous bird (Bharanda). (163)

रहते कर्म प्रमाद में, सजग अकर्म विचार ।
अज्ञानी मदहोश रहे, ज्ञानी होश संवार ।।१.१३.५.१६४।।

पमायं कम्ममहंसु, अप्पमायं तहाऽवरं ।
तब्भावा–देसओ वावि, बालं पंडिय–मेव वा ।।५।।

प्रमादं कर्म आहु–रप्रमादं तथाऽपरम् ।
तद्भावादेशतो वापि, बालं पण्डितमेव ।।५।।

प्रमाद (आलस/लापरवाह/मदहोश) में कर्म के द्वार (आस्त्रव) खुले रहते हैं और अप्रमाद (सजग,चेतन) को अकर्म (संवर) कहा है। प्रमाद के होने से मनुष्य अज्ञानी होता है और प्रमाद न होने से मनुष्य ज्ञानी होता है।

Carelessness (pramad/negligence) has been defined as the influx of karmas (Asrava) and carefulness (Aparmad/ cautiousness) as the stoppage of the inflow of karmas (sanvar) i.e. carefulness makes one wise. (164)

कर्म न काटे कर्म को, अकर्म धीर का कोष ।
लोभ मद का त्याग करे, मेधावी संतोष ।।१.१३.६.१६५।।

न कम्मुणा कम्म खवेंति वाला, अकम्मुणा कम्म खवेंति धीरा ।
मेधाविणो लोभमया वातीता, संतोसिणो नो पकरेंति पावं ।।६।।

न कर्मणा कर्म क्षपयन्ति वाला, अकर्मणा कर्म क्षपयन्ति धीराः ।
मेधाविनो लोभमदाद् व्यतीताः, सन्तोषिणो नो प्रकुर्वन्ति पापम् ।।६।।

अज्ञानी साधक कर्म के द्वारा कर्म का क्षय होना मानते हैं लेकिन कर्म के द्वारा कर्म का क्षय नही होता। धीर पुरुष अकर्म (संवर/निवृत्ति) के द्वारा कर्म का क्षय करते है। ज्ञानी पुरुष लोभ और मद त्याग संतोषी होकर पाप नहीं करते।

The ignorant cannot destroy their Karmas by their actions while the wise can do it by their inaction i.e. by controlling their activities because they are free from greed and lustful passions and do not commit any sin as they remain contented. (165)

हरपल डर के भाव में, रहता जो मदहोश ।
चेतन रहे स्वभाव में, रहे अभय निर्दोष ।।१.१३.७.१६६।।

सव्वओ पमत्तस्स भयं,
सव्वाओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं ।।७।।

सर्वतः प्रमत्तस्य, भयं,
सर्वतोऽप्रमत्तस्य नास्ति भयम् ।।७।।

प्रमत्त हरपल भयभीत रहता है । अप्रमत्त को कोई डर नही होता ।

There is fear from every direction for an in-vigilant person; while there is no fear for a person who is vigilant. (166)

सुखी रहे ना आलसी, निद्रालु नही सुजान ।
ममता में वैराग नहीं, हिंसक दया न जान ।।१.१३.८.१६७।।

नाऽऽलस्सेण समं सुक्खं, सुक्खं, न विज्जा सह निद्दया ।
न वेरग्गं ममत्तेणं, नारंभेण दयालुया ।।८।।

नाऽऽलस्येन समं सौख्यं, न विद्यासह निद्रया ।
न वैराग्यं ममत्वेन, नारम्भेण दयालुता ।।८।।

आलसी सुखी नहीं हो सकता । निद्रालु विद्याभ्यासी नहीं हो सकता । ममत्व रखने वाला वैराग्यवान नही हो सकता और आरम्भी दयालु नहीं हो सकता ।

An idle person can never be happy and sleepy person can never acquire knowledge. A person with attachments cannot acquire renunciation and he who is violent cannot acquire compassion. (167)

रहो जागृत नर सदा, बुद्धि बढ़ती जाय ।
सोता है वो धन्य नहीं, जागे धन्य कहाय ।।१.१३.९.१६८।।

जागरह नरा! णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धी ।
जो सुवति ण सो धन्नो, जो जग्गति सो सया धन्नो ।।९।।

जागृत नराः! नित्यं, जागरमाणस्य वर्द्धते बुद्धिः ।
यः स्वपिति न सो धन्यः, यः जागर्त्तिस सदा धन्यः ।।९।।

मनुष्यों! सतत जागृत रहो । जो जागता है उसकी बुद्धि बढ़ती है । जो सोता है वो धन्य नही है। धन्य वही है जो सदा जागता रहता है ।

Oh: human beings; always be vigilant. He who is alert gains more and more knowledge. He who is in-vigilant is not blessed. Ever blessed is he who is vigilant. (168)

लेन-देन, मल-मूत्र में, चले-फिरे या सोय ।
सजग दयालु आदमी, नहीं अहिंसक होय ।।१.१३.१०.१६९।।

आदाणे णिक्खेवे वोसरणे णण-गमण-सयणेसु ।
सव्वत्थ अप्पमत्तो दयावरो होइ हु अहिंसो ।।१०।।

आदाने निक्षेपे, व्युत्सर्जने स्थानगमनशयनेषु ।
सर्वत्राऽप्रमत्तो, दयापरो भवति खल्वहिंसकः ।।१०।।

वस्तुओं को उठाने धरने में, मल-मूत्र का त्याग करने में, बैठने तथा चलने फिरने में जो दयालु पुरुष सदा सजग (अप्रमत्त) रहता है वह निश्चय ही अहिंसक है ।

A compassionate person who is always cautious while lifting and putting a thing, while urinating and excreting, and while sitting, moving and sleeping is really a follower of non-violence. (169)

प्रकरण १४ – शिक्षासूत्र

Chapter 14 - Precepts On Education

अविनय साथ विपत्तियाँ, विनय गुणों की खान ।
जो यह बातें जान ले, मिले ज्ञान परिधान ।।१.१४.१.१७०।।

विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य ।
अस्सेयं दुहओ नाय, सिक्खं से अभिगच्छइ ।।१।।

विपत्तिरविनीतस्य, संपत्तिविनीतस्य च ।
यस्यैतद् द्विधा ज्ञातं, शिक्षां सः अधिगच्छति ।।१।।

जिसमें विनय/नम्रता नहीं है उसके ज्ञान आदि गुण नष्ट हो जाते हैं और विपत्तियाँ आती हैं। विनयशील व्यक्ति ही ज्ञान ले सकता है।

He who is modest and respectful gains knowledge and he who is arrogant and disrespectful fails to gain knowledge. He who is aware of these two facts acquires education. (170)

पाँच कारण जान लो, मिले न जिससे ज्ञान ।
रोग, क्रोध, प्रमाद हो, आलस या अभिमान ।।१.१४.२.१७१।।

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्ख न लब्भई ।
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणाऽलस्सएण य ।।२।।

अथ पञ्चभिः स्थानैः, यैः शिक्षा न लभ्यते ।
स्तम्भात् क्रोधात् प्रमादेन, रोगेणालस्यके च ।।२।।

निम्न पाँच कारणों से शिक्षा प्राप्त नही होती। अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य।

Education is hampered by the following five obstacles :-
1. Pride; 2. Anger; 3. Carelessness; 4. Disease; 5. Idleness (171)

आठ बातें जान ले, शिक्षित बने समाज ।
मन रोके हँसना नहीं, रखे भेद को राज ।।१.१४.३.१७२।।
शीलवान दूषित नहीं, अति रस नहीं सुहाय ।
सत्यवान क्रोधित नहीं, ज्ञानशील कहलाय ।।१.१४.४.१७३।।

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।
अहस्सिरे सया दंते, न य मम्मुदाहरे ।।३।।
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खसीले त्ति वुच्चई ।।४।।

अथाष्टभिः स्थानैः, शिक्षाशील इत्युच्यते ।
अहसनशीलः सदा दान्तः, न च मर्म उदाहरेत् ।।३ ।।
नाशीलो न विशीलः, न स्यादतिलोलुपः ।
अक्रोधनः सत्यरतः, शिक्षाशील इत्युच्यते ।।४ ।।

निम्न आठ कारणों से मनुष्य शिक्षाशील कहा जाता है । १. हँसी मज़ाक नही करना । २. इन्द्रियों का दमन करना । ३. किसी का रहस्य नही खोलना । ४. शीलवान । ५. दोषरहित । ६. रसलोलुप न होना । ७. क्रोध नही करना । ८. सत्यवान रहना ।

A man is said to be educated if the following eight circumstances or attributes are met :

1. To abstain from cutting jokes;
2. To control five senses and mind;
3. not revealing the secrets of others;
4. not lacking good manners,
5. not exhibiting bad manners
6. not being passionate;
7. Not being angry; and
8. To be truthful (172 & 173)

ललक ज्ञान की जो रखे, अटल परम हो स्थान ।
शिक्षा ग्रहण अनेक करें, पढ़ने में हो ध्यान।।१.१४.५.१७४।।

नाण–मेग्ग–चित्ते य, ठिओ ठावयई परं ।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुय–समाहिए ।।५।।

ज्ञानमेकाग्रचित्तश्च, स्थितः च स्थापयति परम् ।
श्रुतानि च अधीत्य, रतः श्रुतसमाधी ।।५।।

अध्ययन के द्वारा व्यक्ति को ज्ञान और चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। वह स्वयं धर्म में स्थित होता है और दूसरों को भी करता है। अनेक प्रकार के श्रुत का अध्ययन कर वह ज्ञान में लीन हो जाता है।

A person acquires knowledge and concentration of mind by studying scriptures. He becomes firm in religion and helps others to acquire that firmness. Thus through the studies of scriptures he becomes absorbed in the contemplation of what is expounded therein. (174)

गुरुकुल में रहकर सतत, करता हो जो ध्यान ।
काम सुखद कह प्रिय वचन, पाता हर पल ज्ञान ।।१.१४.६.१७५।।

वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं ।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ।।६।।

वसेद् गुरुकुले नित्यं, योगवानुपधानवान् ।
प्रियंकरः प्रियवादी, स शिक्षां लब्धुमर्हति ।।६।।

जो सदा गुरुकुल में वास करता है वो समाधियुक्त होता है। जो ज्ञान ग्रहण करते समय तप करता है, प्रिय बोलता है वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

He who always resides in gurukul, practising meditation and austerities, is pleasant in action and sweet in speech such a person is fit to receive education. (175)

कई दीप इक दीप से, पाते खूब प्रकाश।
दीपक जैसे गुरु रहे, रौशन हो आकाश ।।१.१४.७.१७६।।

जह दीवा दीवसयं, पइप्पए सो य दिप्पए दीवो।
दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवेंति ।।७।।

यथा दीपात् दीपशतं, प्रदीप्यते स च दीप्यते दीपः ।
दीपसमा आचार्याः, दीप्यन्ते परं च दीपयन्ति ।।७।।

एक दीप से सैकड़ों दीप जल सकते हैं और स्वयं भी दीप्तमान रहता है। आचार्य दीपक के समान होते हैं। वे स्वयं भी प्रकाशमान रहते है और दूसरों को भी प्रकाशित करते हैं।

The head of the order (Acharya/preceptor) is like and lamp. Just as an lamp illuminates itself and enkindles hundred of other lamps; similarly the head of the order is himself manifested with knowledge and makes others manifested with knowledge likewise. (176)

प्रकरण १५ – आत्मसूत्र
Chapter 15 - Precepts On The Soul

उत्तम गुण का धाम हैं, द्रव्य में उत्तम जान ।
तत्वों में है तत्व परम, जीव ही निश्चय जान ।।१.१५.१.१७७।।

उत्तम–गुणाण धामं, सव्व–दव्वाण उत्तमं दव्वं ।
तच्चाण परम तच्चं जीवं जाणेह णिच्छयदो ।।१।।

उत्तमगुणानां धामं, सर्वद्रवयाणां उत्तमं द्रव्यम् ।
तत्त्वानां परं तत्त्वं, जीवं जानीत निश्चयतः ।।१।।

जीव उत्तम गुणों का आश्रय है, द्रव्यों में उत्तम द्रव्य और तत्वों में परम तत्व है । यह निश्चयपूर्वक जान लें ।

Know for certain that the soul is the home of excellent virtues, the best among the substances and the principle element of all elements. (177)

अंतर या बहिरात्मा, होते तीन प्रकार ।
परमात्मा अरिहंत सिद्ध, दोय परम के तार ।।१.१५.२.१७८।।

जीवा हवंति तिविहा बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।
परमप्पा वि य दुविहा अरहंता तह य सिद्धा य ।।२।।

जीवाः भवन्ति त्रिविधाः बहिरात्मा तथा च अन्तरात्मा च ।
परमात्मानः अपि च द्विविधाः, अर्हन्तः तथा च सिद्धाः च ।।२।।

जीव (आत्मा) तीन प्रकार की है । बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा । परमात्मा के दो प्रकार हैं । अर्हत् और सिद्ध।

The souls (Jivas) are of three kinds : External souls (Bahiratma), internal souls (Anataratma) and the pure souls (Sidhatma). The pure souls are of two kind : the Embodied pure souls (Arhat) and the Bodiless pure souls (siddhas). (178)

बहिरात्मा शरीर है, अन्तःजीव भी जान ।
कर्म कलंक विमुक्त भये, परम जीव पहचान ।।१.१५.३.१७९।।

अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरप्पा हु अप्पसंकप्पो ।
कम्मकलंक–विमुक्को, परमप्पा भण्णए देवो ।।३।।

अक्षाणि बहिरात्मा, अन्तरात्मा खलु आत्मसंकल्पः ।
कर्मकलङ्कविमुक्तः, परमात्मा भण्यते देवः ।।३।।

इन्द्रिय–समूह को आत्म के रूप में स्वीकार करनेवाला बहिरात्मा है। देह से भिन्न आत्मा को स्वीकार करने वाला अन्तरात्मा है। कर्मों से मुक्त आत्मा परमात्मा है।

He, who accepts the aggregate of sense organs (body) as soul, is the external soul (Bahiratma) he who realizes soul as different from/other than body (something independent) is internal soul (Anataratma). The self who is liberated from the pollution of the Karmas is paramatma. (179)

सकल अर्थ को जान ले, अरिहंत केवल ज्ञान ।
ज्ञान शरीर ही सिद्ध है मिले मोक्ष सम्मान ।।१.१५.४.१८०।।

स–सरीरा अरहंता केवल–णाणेण मुणिय–सयलत्था ।
णाण–सरीरा सिद्धा, सव्वुत्तम सुक्ख संपत्ता ।।४।।

सशरीराः अर्हन्तः अर्हन्तः, केवलज्ञानेन ज्ञातसकलार्थाः ।
ज्ञानशरीराः सिद्धाः, सर्वोत्तमसौख्यसंप्राप्ताः ।।४।।

केवल ज्ञान के समस्त पदार्थों को जानने वाले स–शरीरी जीव अर्हत् है तथा केवलज्ञानी जो मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं वो सिद्ध कहलाते हैं।

Arhats are embodied pure souls, who know all objects from their prefect knowledge (Keval-jnan); and siddhas are those bodiless pure souls who are embodiments of knowledge and who have attained supreme bliss (sarvottam-sukha). (180)

आरोहण कर आत्म का, बहिरात्मा का त्याग ।
परम आत्म का ध्यान हो, ये जिन–ईश्वर–राग ।।१.१५.५.१८१।।

आरुहवि अंतरप्पा, बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण ।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठं जिण–वरिंदेहिं ।।५।।

आरुह्य अन्तरात्मानं, बहिरात्मानं त्यक्त्वा त्रिविधेन ।
ध्यायते परमात्मा, उपादिष्टं जिनवरेन्द्रैः ।।५।।

जिनेश्वर का यह कहना है कि तुम मन, वचन और काया से बहिरात्मा को छोड़कर, अन्तरात्मा में आरोहण कर परमात्मा का ध्यान करो।

Lord Jinesvara has said "relinquishing the external soul from your mind, speech and body, realise the antaratma and contemplate on the supreme soul (paramatma)". (181)

चतुर्गति में भ्रमण नहीं, जन्म–मरण नहीं शोक ।
कुल योनि जीव पथ नहीं, शुद्ध जीव नहीं भोग ।।१.१५.६.१८२।।

चउ–गइ–भव–संभमणं, जाइ–जरा–मरण–रोय सोका य ।
कुल जोणि–जीव मग्गण–ठाणा, जीवस्सव णो संति ।।६।।

चतुर्गतिभवसंभ्रमणं, जातिजरामरण–रोगशोकाश्च ।
कुल योनिजीवमार्गणा–स्थानानि जीवस्य नो सन्ति ।।६।।

शुद्ध आत्मा में चतुर्गतिरूप भव–भ्रमण, जन्म, रोग, बुढ़ापा, मरण, शोक तथा कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान नहीं होते ।

The pure souls are completely free from and have no concern with transmigration (In four grades of life) birth, old age, death, disease, sorrow, family, a place of birth, a status in the scheme of Jivasthanas, a status in the scheme of marganasthanas none of these really belongs to a soul. (182)

वर्ण गंध रस स्पर्श नहीं, स्त्री पुरुष ना भेद।
संस्थान सहनन नहीं, शुद्ध जीव ना संवेद ।।१.१५.७.१८३।।

वेण्ण-रस-गंध-फासा, थी-पुंस-णउंसयादि-पज्जया।
संठाणा संहणणा, सव्वे जीवस्स णो संति ।।७।।

वर्णरसगन्धस्पर्शाः, स्त्रीपुंनपुंसकादि-पर्यायाः।
संस्थानानि संहननानि, सर्वे जीवस्य नो सन्ति ।।७।।

शुद्ध आत्मा में वर्ण, रस, गंध, स्पर्श तथा स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि पर्यायें तथा संस्थान और संहनन नहीं होता।

The pure souls are not concerned with colour (Varna), taste (Rasa), smell (Gandha) touch (sparsha), female form, male form, impotent form (as well as other forms) and figures of the body (Sansthan) and osseous structures of the body (Sainhanana). (183)

भाव सब ये कहे गये, जानो नय व्यवहार।
जगत जीव भी सिद्ध है, विशुद्ध नयानुसार ।।१.१५.८.१८४।।

एदे सव्वे भावा, ववहार-णयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्ध-सहावा, सुद्ध-णया संसिदी जीवा ।।८।।

एते सर्वे भावाः व्यवहारनयं प्रतीत्य भणिताः खलु।
सर्वे सिद्धस्वभावाः, शुद्धनयात् संसृतौ जीवाः ।।८।।

ये सब भाव व्यवहारनय की अपेक्षा से कहे गये हैं। निश्चयनय की अपेक्षा से संसारी जीव भी सिद्धस्वरूप हैं।

All these subjects (Bhava) have been discussed from practical stand point (Vyavaharnaya). From real stand point (nischaya-naya) the mundane souls Sansari-Jiva) are also pure souls. (184)

रूप–गंध–रस व्यक्त नहीं, विषय नही अनुमान ।
संस्थागत होता नहीं शुद्ध जीव ना स्थान ।।१.१५.९.१८५।।

अरस–मरूव–मगंधं, अव्वत्तं चेदणा–गुण–मसद्दं ।
जाण अलिंग–ग्गहणं, जीव–मणिद्दिट्ठ–संठाणं ।।९।।

अरसमरूपमगन्धम् अव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम् ।
जानीह्यलिंगग्रहणं, जीवमनिर्दिष्टसंस्थानम् ।।९।।

शुद्ध आत्मा अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चैतन्य, अशब्द, अलिगंग्राह्य (अनुमान का अविषय) और संस्थानरहित है ।

The pure soul is tasteless, formless, smell-less, imperceptible, conscious, silent (nonvocal), uncognizable by organs (subject of assessment) and structureless. (185)

दण्ड, द्वन्द्व, ममता नहीं, ना शरीर आधार ।
राग–द्वेष व मोह नहीं, भय ना जीव विचार ।।१.१५.१०.१८६।।

णिद्दंडो णिद्दंद्दो, णिम्ममो–णिक्कलो णिरालंबो ।
णीरगो णिद्दोसो, णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा ।।१०।।

निर्दण्डः निर्द्वन्द्वः, निर्ममः निष्कलः निरालम्बः ।
नीरागः निर्द्वेषः, निर्मूढः निर्भयः आत्मा ।।१०।।

आत्मा मन, वचन और कायारूप त्रिदंड से रहित, निर्द्वंद्व–अकेली, निर्मम–ममत्वरहित, निष्कल–शरीररहित, निरालम्ब–परद्रव्यालम्बन रहित, वीतराग, निर्दोष, मोहरहित तथा निर्भय है ।

The pure souls is devoid of the trirod (tridanda) of mind, speech and body (Man-vacankaya ke tri-danda se rahit), singular (Nirdvarua/Akela), without mineness (Mamata rahit/Nirmam) Bodiless (Niskala), independent (Niralamba),dispassionate (vitrag) innocent (Nirdosa/ unblemished) undeluded (Moha-rahit/Nirmukha) and fearless (Nirbhaya). (186)

ग्रंथ, राग माया रहित, सकल मुक्त निर्दोष ।
काम क्रोध व मान नहीं, जीव नहीं मदहोश ।।१.१५.११.१८७।।

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयल-दोस-णिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ।।११।।

निर्ग्रन्थो नीरागो, निःशल्यः सकलदोनिर्मुक्तः ।
निष्कामो निष्क्रोधो, निर्मानो निर्मदः आत्मा ।।११।।

आत्मा निर्ग्रन्थ (अपरिग्रही जो अपने पास कुछ नहीं रखती), नीराग (जिसे किसी से राग नहीं), निःशल्य (माया से रहित), सब दोषों से मुक्त (निमुक्त),कामना रहित (निष्काम), निःक्रोध, निर्मान (जिसे कोई घमण्ड नही) तथा निर्मद (जिसे मद नहीं) है।

The (pure) soul is possessionless (without knot), unattached, unblemished (Nihsalya/without thorns of diagnosis), undelude and right believing free of all the defects, desire-less anger-less, pride-less and un-intoxicated. (187)

होश ना मदहोश नहीं, ज्ञायक जीव स्वभाव ।
ज्ञायक में ही ज्ञात है, शुद्ध जीव का भाव ।।१.१५.१२.१८८।।

ण वि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो ।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव ।।१२।।

नापि भवत्यप्रमत्तो, न प्रमत्तो ज्ञायकस्तु यो भावः ।
एवं भणन्ति शुद्धं, ज्ञातो यः स तु स चैव ।।१२।।

आत्मा ज्ञायक है जानने वाली है। ज्ञायक प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं होता। जो प्रमत्त और अप्रत्त नहीं होता वो शुद्ध होता है। आत्मा ज्ञायकरूप में ही ज्ञात है।

The (pure) soul is the knower. He who is a knower is neither careful (Apramatta) nor care-less (Pramatta) and he who is neither careful nor careless knower is called pure, because it is only knower and nothing else. (188)

मन वचन और तन नहीं, कारण उसे न मान ।
करे व करवाये नहीं, अनुमोदन ना जान ।।१.१५.१३.१८९।।

णाहं देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ।।१३।।

नाहं देहो न मनो, न चैव वाणी न कारणं तेषाम्।
कर्त्ता न न कारयिता, अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ।।१३।।

आत्मा न शरीर है न मन है न वाणी है और न उनका कारण है। मैं न करता हूँ न करवानेवाला हूँ और न करता अनुमोदक ही हूँ।

The soul is neither body, nor mind, nor speech nor the cause itself. I'm neither doer nor the motivator of doer and nor the supporter of doer. (189)

शुद्ध जीव जो जानता, जाने और स्वभाव ।
'यह मेरा' कैसे कहे, ज्ञानी शुद्ध प्रभाव ।।१.१५.१४.१९०।।

को णाम भणिज्ज बुहो, णादुं सव्वे परोदये भावे।
मज्झ-मिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ।।१४।।

को नाम भणेद् बुधः, ज्ञात्वा सर्वान् परकीयान् भावान्।
ममेदमिति चं वचनं, जानन्नात्मकं शुद्धम् ।।१४।।

आत्मा के शुद्धरूप को जानने वाला ऐसा कौन ज्ञानी होगा जो यह कहेगा कि ''यह मेरा है''।

After knowing that the pure soul is different from everything else, is there any wise man who says "this is mine"? (190)

बिन ममता इक शुद्ध मैं, ज्ञान व दर्शन सार ।
स्थित रहता इस भाव में, क्षय हो सभी विचार ।।१.१५.१५.१९१।।

अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाण-दंसण-समग्गो ।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो, सव्वे एदे खयं णेमि ।।१५।।

अहमेकः खलु शुद्धः, निर्ममतः ज्ञानदर्शनसमग्रः ।
तस्मिन् स्थितस्तच्चित्तः, सर्वानेतान् क्षयं नयामि ।।१५।।

मै एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममतारहित हूँ, तथा ज्ञानदर्शन से परिपूर्ण हूँ। अपने इस शुद्ध स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर मैं इन सब परकीय भावों का क्षय करता हूँ।

I am one (indivisible whole), pure unattached (Mamatarahit) and full of perception and knowledge (Jnan-darsheparipurna). Having been settled and absorbed in my true nature, I destroy all of them (i.e. parkiyabhav). (191)

(इति खंड - १)

प्रकरण १६ – मोक्षमार्गसूत्र

Chapter 16 - Precepts On The Path Of Liberation

'फल' व 'मार्ग' दो अलग हैं, जिनशासन बतलाय ।
सम्यक् पथ पर जो चले, मोक्ष फल वो पाय ।।२.१६.१.१९२।।

मग्गो मग्गफलं ति य, दुविहं जिणसासणे समक्खादं ।
मग्गो खलु सम्मत्तं, मग्गफलं होइ णिव्वाणं ।।१।।

मार्ग: मार्गफलम् इति च द्विविध जिनशासने समाख्यातम् ।
मार्ग: खलु सम्यक्त्वं मार्गफलं भवतिनिवार्वणम् ।।१।।

जिनशासन में 'मार्ग' व 'मोक्ष' का उपाय है। सम्यक् मार्ग का फल मोक्ष है।

"The path" and the "result of follwing the path" these two things have been proclaimed in the discipline preached by the Jinas. 'Right faith' is the path and liberation is the result. (192)

दर्शन, ज्ञान, चरित्र सब, मोक्ष मार्ग स्वभाव ।
बंधन समझो मोक्ष के, शुभ व अशुभ के भाव ।।२.१६.२.१९३।।

दंसण–णाण–चरित्ताणि, मोक्खमग्गो त्तिसेविदव्वाणि ।
साधूहि इदं भणिदं, तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ।।२।।

दर्शनज्ञानचारित्राणि, मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि ।
साधुभिरिदं भणितं, तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ।।२।।

सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा तप को जिनदेव ने मोक्ष का मार्ग कहा है। वह निश्चय व व्यवहार दो प्रकार का है। शुभ और अशुभ भाव मोक्ष के मार्ग नहीं है। इन भावों से तो कर्म बंधन होता है।

The right faith, the right knowledge and the right conduct together constitute the path of liberation; this is the path to be followed. The Jinendra Dev have said that if it is followed in the right way it will lead to liberation and otherwise it will lead to bondage. (193)

शुभ भावों से मान ले, ज्ञानी भी यदि मोक्ष।
समझ यही अज्ञान है, दूर अभी है मोक्ष ।।२.१६.३.१९४।।

अण्णाणादो णाणी, जदि मण्णदि सुद्ध– संपओगादो ।
हवदि त्ति–दुक्खमोक्खं, परसमयरदो हवदि जीवो ।।३।।

अज्ञानात् ज्ञानी, यदि मन्यते शुद्धसम्प्रयोगात् ।
भवतीति दुःखमोक्षः, परसमयरतो भवति जीवः ।।३।।

अज्ञानवश अगर ज्ञानी भी ऐसा मान ले कि शुभ कर्म व भक्ति आदि शुभ भाव से दुखमुक्ति होती है तो यह राग का अंश है और त्रुटिपूर्ण ज्ञान है।

If a wise person ignorantly considers that by doing pure (i.e., religious) performance he will be free from sorrow then he is the follower of wrong faith. (194)

समिति, शील, व्रत, गुप्ति सभी, तप जिनवर प्रज्ञप्त ।
अनपढ़ बन इस पथ चले, द्रष्टा मिथक समस्त ।।२.१६.४.१९५।।

वद–समिदी–गुत्तीओ, सीलतवं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वोअणाणी मिच्छदिट्ठीओ ।।४।।

व्रतसमितिगुप्तीः शीलतपः जिनवरैः प्रज्ञाप्तम् ।
कुर्वन् अपि अभव्यः अज्ञानी मिथ्यादृष्टिस्तु ।।४।।

व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप का पालन करते हुए भी अभव्य (अज्ञानी) जीव मिथ्या द्रष्टा है।

An abhavya Jiva (a soul inherently incapable of attaining liberation), even if he observes the five vows, the five types of vigilance, the three fold self-control, the code of morality and the various modes of austerities as laid down by the Jina, lacks right understanding and possesses wrong faith. (195)

निश्चय ही व्यवहार रूप, तीनरत्न नहीं ज्ञान ।
मिथ्या सब कुछ मानिये, जिनवर कहते जान ।।२.१६.५.१९६।।

णिच्छय–ववहार–सरूवं, जो रयणत्तयं ण जाणइ सो ।
ज कीरइ तं मिच्छा–रूवं, सव्वं जिणुद्दिट्ठं ।।५।।

निश्चयव्यवहारस्वरूपं, यो रत्नत्रयं न जानाति सः ।
यत् करोति तन्मिथ्या–रूपं सर्वजिनोद्दिष्टम् ।।५।।

जिनदेव का उपदेश है कि निश्चय और व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय (दर्शन, ज्ञान, चारित्र) को नही जानता उसका सबकुछ मिथ्यारुप है।

All the religionsobservances by those, who do not know the real and practical implications of three jewels (Rightfaith, right knowledge and right conduct), are erroneous/false/wrong (mithyarupa). This is the commandment of Shri Jin-Deva. (196)

श्रद्धा–निष्ठा भी रखे, पले धार्मिक चाह ।
भोग धर्म समझो निमित्त, कर्म नहीं क्षय राह ।।२.१६.६.१९७।।

सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो वि फासेदिय ।
धम्मं भोग–णिमित्तं, ण दु सो कम्म–क्खय–णिमित्तं ।।६।।

श्रद्दधाति च प्रत्येति च, रोचयति च तथा पुनश्च स्पृशति ।
धर्म भोगनिमित्तं न तु स कर्मक्षनिमित्तम् ।।६।।

अभव्य जीव धर्म में श्रद्धा रखता है, पालन करता है किन्तु वह धर्म को भोग का निमित्त समझ कर करता है कर्मक्षय का कारण समझ कर नहीं करता ।

The Abhavya souls do repose faith in Dharma (religious-conduct): do believe in it: and do follow it: yet this do so considering Dharma as the instrument (cause) of enjoyment and not considering it as the instrument (cause) of destruction of karmas. (197)

पुण्य शुभ परिणाम कहे, अशुभ जानिये पाप।
आत्मलीन जो मगन हो, दुख क्षय कारण आप ।।२.१६.७.१९८।।

सुहपरिणामो पुण्णं, असुहो पाव त्ति भणियन्नेसु।
परिणामो णन्नगदो, दुक्खक्खयकारणं समये ।।७।।

शुभपरिणामः पुण्यं अशुभः पापमिति भणितमन्येषु।
परिणामो नान्यगतो, दुःखक्षयकारणं समये ।।७।।

वह नहीं जानता कि परद्रव्य में प्रवृत्त शुभ-परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। धर्म स्वद्रव्य में प्रवृत्त परिणाम है जो यथासमय दुखों के क्षय का कारण होता है।

An auspicious disposition towards worldly gain secures merit (punya) while an inauspicious disposition towards worldly gain acquires sin (papa) but one, who remains undisturbed by alien things and enjoys one's own pure nature, can put an end to one's misery. (198)

पुण्य की यदि इच्छा रहे, चाहे तब संसार।
पुण्य है सुगति के लिए, पुण्य क्षरण जग पार ।।२.१६.८.१९९।।

पुण्णं पि जो समिच्छदि संसारो तेण ईहिदो होदि।
पुण्णं सुगई-हेदुं, पुण्ण-खएणेव णिव्वाणं ।।८।।

पुण्यमति यः समिच्छति, संसारः तेन ईहितः भवति।
पुण्यं सुगतिहेतुः, पुण्यक्षयेण एव निर्वाणम् ।।८।।

जो पुण्य की इच्छा करता है, वह संसार की ही इच्छा करता है। पुण्य सुगति का हेतु है किन्तु निर्वाण तो पुण्य के क्षय से ही होता है।

He who desires for well being, aspires for life in this mundane world; merit (punya) is capable of securing a pleasant state of existence; but it is cessation of merits (punya Karma) only that leads to liberation. (199)

करम अशुभ सुशील नहीं, सात्विक सुशील विचार ।
शुभ सुशील पर क्या कहूँ, पुनः प्रवेश संसार ।।२.१६.९.२००।।

कम्म–मसुहं कुसीलं, सुह–कम्मं चावि जाणह सुसीलं ।
किह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवेसेदि ।।९।।

कर्म अशुभं कुशीलं,शुभकर्म चापि जानीहि वा सुशीलम् ,
कथं तद् भवति सुशीलं, यत् संसार प्रवेशयति। ।।९।।

अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील जानो। किन्तु उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है जो संसार में फिर से प्रविष्ट कराता है।

Know that an inauspicious Karma results in misery while an auspicious Karma in worldly happiness; but how can it be said that auspicious Karma results in happiness when it leads to mundane existence? (200)

कनक लोह में फ़र्क नहीं बेड़ी बाँधे जीव ।
शुभ अशुभ में, पक्की जीव की नींव ।।२.१६.१०.२०१।।

सोवण्णियं पि णियलं, बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधति एवं जीवं, सुहमसुहं वा कदं कम्मं ।।१०।।

सौवर्णिकमपि निगलं, बध्नाति कालायसमपि यथा पुरुषम् ।
बध्नात्येवं जीवं, शुभमशुभं वा कृतं कर्म ।।१०।।

बेड़ी सोने की हो चाहे लोहे की, दोनों ही बेड़ियाँ बाँधती है। इसी प्रकार जीव को शुभ–अशुभ दोनों ही कर्म बाँधते है।

Just as fetter whether made of iron or gold binds a person similarly Karma whether auspicious (punya) or inauspicious (Papa) binds the soul. (201)

कुशील जानकर कर्म को, नहीं संग और राग ।
करता राग सुशील से, स्वतन्त्रता वीतराग ।।२.१६.११.२०२।।

तम्हा दु कुसीलेहि य, रायं मा कुणह मा व संसग्गं ।
साधीणो हि विणासो, कुसील-संसग्ग-रायेण ।।११।।

तस्मात्तु कुशीलैश्च, रागं मा कुरुत मा वा संसर्गम् ।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागेण ।।११।।

अतः शुभ-अशुभ दोनों कर्मों को कुशील जानकर न उनके साथ राग करना चाहिये और न उनका संसर्ग। क्योंकि कर्मों के प्रति राग और संसर्ग करने से स्वाधीनता नष्ट होती है।

Hence having understood both kinds of Karmas as bad from real stand point. We should either get our-selves not attached with/not associated with either of the two. The attachment with or the association of Karmas with soul destroy its independence. (202)

तप व्रत से ही स्वर्ग है, नर्क से उत्तम जान ।
खड़ा धूप में क्यों रहे, छाया उत्तम मान ।।२.१६.१२.२०३।।

वरं वय-तवेहि सग्गो दुक्खं होउ निरइ इयरेहिं ।
छाया-तव-ट्ठिणं, पडिवालंताण गुरुभेयं ।।१२।।

वरं व्रततपोभिः स्वर्गः, मा दुःखं भवतु निरये इतरैः ।
छायाऽऽतपस्थितानां, प्रतिपालयतां गुरुभेदः ।।१२।।

तथापि नर्क के दुख भोगने से तो उत्तम है कि व्रत व तप आदि कर स्वर्ग पाया जाय। धूप में खड़े रहने की अपेक्षा छाया में खड़े रहना कहीं अच्छा है।

However it is better to attain heaven by observing vows and penances than to suffer misery in hell by doing evil. There is great difference between one who stands in shade and the other standing in the sun. (203)

देव सम्मुख प्रज्ञ, जन, हाथ जोड़ कर जान ।
विपुल चक्रधर धन मिले, मिले न केवल ज्ञान ।।२.१६.१३.२०४।।

खयरा-मर-मणुय-करंजलि-मालाहिं च संथुया विउला ।
चक्क-हरराय-लच्छी, लब्भइ बोही सुभावेण ।।१३।।

खचरामरमनुज-कराञ्जलि-मलाभिश्च संस्तुता विपुला ।
चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते बोधिः न भव्यनुता ।।१३।।

इसमें संदेह नही की शुभभाव से विद्याधरों, देवों तथा मनुष्यों की स्तुति से चक्रवर्ती सम्राट की विपुल लक्ष्मी तो प्राप्त हो सकती है लेकिन केवल ज्ञान नहीं।

Through merit (punya karma) one may attain cakravarti-hood (i.e. supreme kingship) where great honour is bestowed on one by the Vidyadharas (demigods), gods and men through praising with folded hands and offering of garlands, but certainly he will not attain the right understanding raised by a soul fit for salvation (204)

देवलोक में भी रहे, आयु क्षय का रोग ।
मनुष्य योनि फिर मिले, दशांग द्रव्य का भोग ।।२.१६.१४.२०५।।

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेन्ति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायई ।।१४।।

तत्र स्थित्वा यथास्थानं, यक्षा आयुःक्षशे च्युताः ।
उपयान्ति मानुषींयोनिम् स दशाङ्गोऽभिजायते ।।१४।।

देवलोक में भी आयु समाप्त होने पर जीव मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं। वहाँ वे दशांग भोग सामग्री से युक्त होते हैं।

The men of merit (punyatma) after enjoying his divine status in heaven at the end of his life span will be born as a human being with ten types of worldly enjoyment. (205)

मनुष्य भोगता भोग को, जीवन नहीं विरोध ।
कर्म पुरातन हो विशुद्ध, होवे निर्मल बोध ।।२.१६.१५.२०६।।
वीर्य श्रुति श्रद्धा मनुज दुर्लभ चार स्वीकार ।
तप कर संयम धर्म से, शाश्वत सिद्ध आकार ।।२.१६.१६.२०७।।

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं ।
पुव्वं विःशुद्ध सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ।।१५।।
चउरंगं दुल्लहं मत्ता, संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए ।।१६।।

भुक्त्वा मानुष्कान् भोगान्, अप्रतिरूपान् यथायुष्कम्।
पूर्वविशुद्धसद्धर्मा, केवलां बोधिं बुद्ध्वा ।।१५।।
चतुरङ्गं दुर्लभं ज्ञात्वा, संयमं प्रतिपद्य ।
तपसा धूतकर्मांशः, सिद्धो भवति शाश्वतः ।।१६।।

जीवनपर्यन्त अनुपम मानवीय भोगों को भोगकर पूर्वजन्मों में धर्म आराधना के कारण निर्मल बोधि का अनुभव करते है और चार अंगों (मनुष्य, श्रुति, श्रद्धा तथा वीर्य) को दुर्लभ जानकर वे संयम–धर्म स्वीकार करते है और फिर तपश्चर्या से कर्मों का नाश कर के शाश्वत सिद्धपद को प्राप्त करते हैं।

After having experienced for the entire life incomparable enjoyments appropriate to human beings one attains the right-understanding that leads to emancipation on account of the religious performances undertaken by one in one's earlier births. Having realised that four things (viz. human birth, listening to scriptures, having faith in scriptures, appropriate practical endeavour) are difficult to attain, one observes self-restraint and having annihilated one's past karmans through penance, one becomes for ever a soul emancipated. (206 & 207)

प्रकरण १७ – रत्नत्रयसूत्र

Chapter 16 - Precepts On Three Jewels

सम्यक दर्शन श्रद्धा–धरम , अगों–पूर्व विचार ।
तप चेष्टा सम्यक्चरित्र, मोक्ष मार्ग व्यव्हार ।।२.१७.१.२०८।।

धम्मादी–सद्दहणं, सम्मंत णाण–मंग–पुव्व–गदं ।
चिट्ठा तवं हि चरिया, ववहारो मोक्ख–मग्गो त्ति ।।१।।

धर्मादिश्रद्धानं, सम्यक्त्वं ज्ञानमङ्गपूर्वगतम् ।
चेष्टा तपसि चर्या, व्यवहारो मोक्षमार्ग इति ।।१।।

धर्म आदि (छह द्रव्य तथा तत्त्वार्थ) का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अंगों और पूर्वों का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। तप में प्रयत्नशीलता सम्यक्चारित्र है। यह व्यवहार मोक्ष मार्ग है।

To have faith in the existence of (substances like) dharma etc. is right faith, to have acquaintance with the texts called Anga and Purva is right knowledge, to perserve in the performance of penance is right conduct. These three constitute the pathway-to-emancipation understood from the standpoint vyavaharanaya. (208)

ज्ञान बताये भाव को, दर्शन से विश्वास ।
निरोध करें चारित्र से, तप से निर्मल आस ।।२.१७.२.२०९।।

णाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ तवेण परिसज्झई ।।२।।

ज्ञानेन जानाति भावान्, दर्शनेन च श्रद्धत्ते ।
चारित्रेण निगृह्णाति, तपसा परिशुध्यति ।।२।।

मनुष्य ज्ञान से जीवादि पदार्थों को जानता है, दर्शन से उनको मानता है, चारित्र से निरोध करता है और तप से विशुद्ध होता है।

One understands by his (right) knowledge the nature of substances, develops belief in them by his (right) faith and controls himself by his (right) conduct and purifies his soul by penance (i.e., austerities). (209)

दर्शन बिन मुनि पद ग्रहण, बिनु चरित्र का ज्ञान ।
संयम बिन तप भी सदा, अर्थहीन पहचान ।।२.१७.३.२१०।।

णाणं चरित्त–हीणं,लिंगग्गहणं च दंसण विहूणं ।
संजम–हीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थंय सव्व ।।३।।

ज्ञान चरित्रहीनं, लिङ्गग्रहणंच दर्शनविहीनम् ।
संयमविहीनं च तपः, यः चरति निरर्थकं तस्य ।।१।।

तीनों एक दुसरे के पूरक हैं इसलिये कहा है कि चारित्र के बिना ज्ञान व सम्यग्दर्शन के बिना मुनिलिंग का ग्रहण और संयमविहीन तप का आचरण करना निरर्थक है।

Knowledge without right conduct, acceptance of the asceticism without right faith and observance of austerities without self-control are all futile. (210)

बिन दर्शन के ज्ञान नहीं, चरित्र नहीं बिन ज्ञान ।
बिन चरित्र के मोक्ष नहीं, मोक्ष बिना निर्वाण ।।२.१७.४.२११।।

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ।।४।।

नादर्शनिनो ज्ञानं, ज्ञानेन विना न भवन्ति चरणगुणाः ।
अगुणिनो नास्ति मोक्षः, नास्त्यमोक्षस्य निर्वाणम ।।४।।

दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता । ज्ञान के बिना चारित्र नहीं होता । चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता । मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता।

Without right faith, there cannot be right knowledge; without right knowledge, there cannot be right conduct; without right conduct, there cannot be release from Karmas; without release of Karmas there cannot be nirvana (salvation). (211)

ज्ञान व्यर्थ है बिन क्रिया, क्रिया व्यर्थ बिन ज्ञान ।
वन–अग्नि में पंगु बन, अंधा छोड़ प्राण ।।२.१७.५.२१२।।

हयं नाणं किया–हीणं, हया अन्नाणओ किया ।
पसंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ ।।५।।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं, हताऽज्ञानतः क्रिया ।
पश्यन् पङ्गुलः दग्धो, धावमानश्च अन्धकः ।।५।।

क्रियाविहीन ज्ञान व्यर्थ है बिना ज्ञान के क्रिया व्यर्थ है। जैसे पंगु व्यक्ति वन में लगी आग को देखते हुए भी भागने में असमर्थ होने के कारण जल कर मर जाता है और अंधा व्यक्ति भागने में समर्थ होते हुए भी देख न पाने के कारण जल मर जाता है।

Right knowledge is of no use in the absence of right conduct, action is of no use in the absence of right knowledge. Certainly, in the case of conflagration the lame man burns down even if capable of seeing while the blind man burns down even if capable of running away. (212)

संयोग सिद्धि से फल मिले, रथ इकं चक्र न सार ।
अंधे – पंगु को ही मिलन, चले नगर के द्वार ।।२.१७.६.२१३।।

संजोग–सिद्धीय फलं वयंति, न हु एग–चक्केण रहो पयाइ ।
अंधो या पंगू य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा ।।६।।

संयोंसिद्धौ फलं वदन्ति, न खल्वेकचक्रेण रथः प्रयाति।
अन्धश्च पङ्गुश्च वने समेत्य, तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ ।।६।।

ज्ञान और क्रिया के संयोग से ही फल की प्राप्ति होती है। जैसे पंगु और अंधा साथ हो जाय तो वन से निकल कर नगर में आ सकते है। एक पहिये से रथ नही चलता।

The desired result is attained when there is a harmony between right knowledge and right conduct, for a chariot does not move by one wheel. This is like a lame man and a blind man come together in a forest and manage to reach the town with the help of one another. (213)

सम्यक् दर्शन-ज्ञान का, होता रहे प्रचार ।
सब य पक्ष रहित रहे, यही समय का सार ।।२.१७.७.२१४।।

सम्म-दंसण-णाणं, एदं लहदि त्ति णवरि ववदेसं ।
सव्व-णय-पक्ख-रहिदो, भणिदो जे सो समयसारो ।।७।।

सम्यग्दर्शनज्ञानमेष लभते इति केवलं व्यपदेशम्।
सर्वनयपक्षरहितो, भणितो यः स समयसार ।।७।।

जो सब नय-पक्षों से रहित है वही समयसार है, उसी को सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की संज्ञा प्राप्त होती है ।

The quint-essence of the pure Soul (Samaya-sar) is to be free (devoid) of all stand points (Nayas) and aspects (paksh). The same is known as Rightfaith and Right-Knowledge. (214)

दर्शन ज्ञान चरित्र को, साधु सदा स्वीकार ।
तीनों आत्मा रूप है, निश्चय नय का सार ।।२.१७.८.२१५।।

दंसण-णाण-चरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं ।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाणं चेव णिच्छयदो ।।८।।

दर्शनज्ञानचारित्राणि, सेवितव्यानि साधुना नित्यम् ।
तानि पुनर्जानीहि, त्रीण्यप्यात्मानं जानीहि निश्चयतः ।।८।।

साधु को नित्य दर्शन, ज्ञान और चारित्र का पालन करना चाहिये। निश्चयनय से इन तीनों को आत्मा ही समझना चाहिये।

From practical point of view faith, knowledge and conduct should always be cherished by saints. But they must know that from real point of view these three are the self (soul) only. (215)

आत्म समाहित तीन में, निश्चयनय का ज्ञान ।
कुछ न करे, छोड़े नहीं, मोक्षमार्ग पहचान ।।२.१७.९.२१६।।

णिच्छयणयेण भणिदो, तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अन्नं, ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति ।।९।।

निश्चययेन भणित-स्त्रिभिस्तैः, समाहितः खलु यः आत्मा
न करोति किंचिदप्यन्यं, न मुञ्चति स मोक्षमार्ग इति ।।९।।

जो आत्मा इन तीनों में समाहित हो जाता है और अन्य कुछ नहीं करता और न कुछ छोड़ता है उसी को निश्चयनय से मोक्षमार्ग कहा गया है।

It is said from the real point of view that, the soul who comprises all the three together; and does not act otherwise or depart from this even in the slightest degree, follows the path of Liberation. (216)

आत्मलीन आत्मा रहे, सम्यगदृष्टि जीव।
आत्मज्ञान ही ज्ञान है, चारित मार्ग ही नींव ।।२.१७.१०.२१७।।

अप्पा अप्पम्मि रओ, सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्त-मग्गो त्ति ।।१०।।

आत्मा आत्मनि रतः, सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः ।
जानाति तत् संज्ञानं, चरतीह चारित्रमार्ग ।।१०।।

आत्मा में लीन आत्मा ही सम्यग्दृष्टि होता है। जो आत्मा को यथार्थ रूप में जानता है वही सम्यग्ज्ञान है और उसमें स्थित रहना ही सम्यग चारित्र है।

Right faith means a soul engrossed in itself; Right knowledge is knowledge of the real (nature of) the soul; Right conduct consists in faithful pursuit of that path. (217)

आत्मा मेरा ज्ञान है, चरित्र दर्शन जान ।
संयम योग भी आत्मा, आत्मा प्रत्याखान ।।२.१७.११.२१८।।

आया हु महं नाणे, आया मे दंसणे चरित्तेय ।
आया पच्चखाणे, आया मे संजमे जोगे ।।११।।

आत्मा खलु मम ज्ञानं, आत्मा मे दर्शन चरित्रं च ।
आत्मा प्रत्याख्यानं, आत्मामे संयमो योगः ।।११।।

आत्मा मेरा ज्ञान है । आत्मा ही दर्शन और चारित्र है । आत्मा ही प्रत्यख्यान है और आत्म ही संयम और योग है । अर्थात ये सब आत्मरूप है ।

My soul is my right knowledge, my right faith, my right conduct, my renunciation of evil acts, my self-restraint and my meditation. (218)

प्रकरण १८ - सम्यग्दर्शनसूत्र
Chapter 18 - Precepts On Right Faith

मोक्षवृक्ष का मूल है, सुरत्न सम्यक सार ।
दर्शन के दो भेद हैं, निश्चय और व्यवहार ।।२.१८.१.२१९।।

सम्मत्तरयणसारं मोक्ख-महारुक्ख-मूलमिदि भणियं ।
तं जाणिज्जइ, णिच्छय-ववहार-सरूवदोभेयं ।।१।।

सम्यक्त्वरत्नसारं, मोक्षमहावृक्षमूलमिति भणितम् ।
तज्ज्ञायते निश्चय-व्यवहारस्वरूपद्विभेदम् ।।१।।

सम्यग्दर्शन को मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल कहा गया है। यह निश्चय और व्यवहार के रूप में दो प्रकार का है।

Right Faith is the core of the three jewels; it is the root of the great tree of liberation; it has to be understood from two point of views-real point of view (Niscaya-naya) and practical point of view (vyavaharanaya). (219)

तत्वज्ञान है सम्यक्त्व, जिनवर कह व्यवहार ।
आत्मा निश्चय रहे, सम्यक् यही विचार ।।२.१८.२.२२०।।

जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
ववहारा णिच्छयदो, अप्पा ण हवइ सम्मत्तं ।।२।।

जीवादीनां श्रद्धानं, सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम् ।
व्यवहारात् निश्चयतः, आत्मा णं भवति सम्यक्त्वहेतुरपि ।।२।।

व्यवहारनय से जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान को जिनदेव ने सम्यक्त्व दर्शन कहा है। निश्चयनय से तो आत्मा ही सम्यग्दर्शन है।

Lord Jina has said that from the practical point of view, Right Faith is faith in the existence of the existence of the soul and the other elements, from the real point of view, the soul itself is Right Faith. (220)

सम्यक् दर्शन मौन है, निश्चयनय ही मौन ।
निश्चय सम्यग्दर्शन से, हेतु सम्यक कौन ।।२.१८.३.२२१।।

जं मोणं तं सम्मं, जं सम्मं तमिह होइ मोणं ति ।
निच्छयओ इयरस्स उ, सम्मं सम्मत्तहेऊ वि ।।३।।

यत् मौन तत् सम्यक् , यत् सम्यक् तहिह भवति् मौनमिति।
निश्चयतः इतरस्य तु, सम्यक्त्वं सम्यक्त्वहेतुरपि ।।३।।

निश्चयनय से जो मौन (साधुत्व) है वही सम्यग्दर्शन है और जो सम्यग्दर्शन है वही मौन है। व्यवहारनय से जो निश्चय–सम्यग्दर्शन के हेतु हैं वे भी सम्यग्दर्शन हैं।

From real point of view true monkhood constitutes righteousness and righteousness constitutes true monkhood. But from the practical point of view, the causes of righteousness are called Right Faith itself. (221)

सम्यक्त्व बिन लगा रहे, तप करता हर बार ।
लाभ बोध मिलता नहीं, चाहे जनम हज़ार ।।२.१८.४.२२२।।

सम्मत्त–विरहिया णं सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंता णं ।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वास–सहस्स–कोडीहिं ।।४।।

सम्यक्त्वविरहिता णं, सुष्ठु अपिउग्रं तपः चरन्तः णं ।
न लभन्ते बोधिलाभं, अपि वर्षसहस्रकोटिभिः ।।४।।

सम्यक्तविहीन व्यक्ति हज़ारों साल तक भलिभाँति तप करने पर भी बोधिलाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

Those persons who are devoid of Right Faith will not obtain Right Knowledge, even if they practise severe penance for a thousand crores of years. (222)

दर्शन भ्रष्ट ही भ्रष्ट है, मुक्ति नहीं वह ।
चरित्र भ्रष्ट को सिद्धि मिले, दर्शन भ्रष्ट न पाय ।।२.१८.५.२२३।।

दंसण–भट्ठा भट्ठा, दसणं– भट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झंति चरिय–भट्ठा, दंसण–भट्ठा ण सिज्झंति ।।५।।

दर्शनभ्रष्टाः भ्रष्टाः,दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम् ।
सिध्यन्ति चरितभ्रष्टाः, दर्शनभ्रष्टाः न सिध्यन्ति ।।५।।

जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है वही भ्रष्ट है। उसे कभी निर्वाण प्राप्ति नही हो सकती। चारित्र विहीन सम्यग्दृष्टि रखने वाले चारित्र धारण कर सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

Those who have renounced Right Faith are deprived persons. There is no liberation for a person devoid of Right Faith. Those who have renounced Right Conduct (by resorting to Right conduct) may attain liberation but not those who have renounced Right Faith. (223)

दर्शन शुद्ध ही शुद्ध है, ले मुक्ति का लाभ ।
दर्शनविहीन पुरुष को, मिले न इसका लाभ ।।२.१८.६.२२४।।

दंसण–सुद्धो सुद्धो दंसण–सुद्धो लहेइ णिव्वाणं।
दंसण–विहीण–पुरिसो, ण लहइ तं इच्छियं लाहं ।।६।।

दर्शनशुद्धः शुद्धः, दर्शनशुद्धः लभते निर्वाणम्
दर्शनविहीनः पुरुषः, न लभते तम् इष्टं लाभम् ।।६।।

सम्यग्दर्शन से शुद्ध ही निर्वाण प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शन–विहीन पुरुष इष्टलाभ नही कर पाता।

He who has Right Faith is certainly pure; he who is possessed of Right Faith attains liberation. A person devoid of Right Faith does not attain the desired liberation. (224)

लाभ है सम्यक् एक तरफ़, तीन-लोक उस ओर ।
लाभ नहीं त्रिलोक में, सम्यक् उत्तम छोर ।।२.१८.७.२२५।।

सम्मत्तस्स य लंभे तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लंभो ।
सम्मद्दंसणलंभो वरं खु तेलोक्कलंभादो ।।७।।

सम्यक्त्वस्य च लाभ-स्त्रैलोकस्य च भवेत् यो लाभः।
सेत्स्यन्ति येऽपि भव्याः, तद् जानीत सम्यक्त्वमाहात्म्यम् ।।७।।

एक ओर सम्यक्त्व का लाभ और दूसरी ओर त्रैलोक्य का लाभ हो तो सम्यग्दर्शन का लाभ श्रेष्ठ है ।

In case, one faces the dilemma of selecting between righteousness and the kingdom of three worlds, he should unhesitatingly select the former (i.e. salvation). (225)

और अधिक अब क्या कहे, सिद्ध विगत ये काल ।
होंगे सिद्ध भविष्य में, सम्यक्त्व महिमा विशाल ।।२.१८.८.२२६।।

किं बहुणा भणिएणं, जे सिद्धा णरवरा गए काले ।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्म-माहप्पं ।।८।।

किं बहुना भणितेन, ये सिद्धाः नरवराः गते काले।
सेत्स्यन्ति येऽपि भव्याः, तद् जानीत सम्यक्त्वमाहात्म्यम् ।।८।।

और अधिक क्या कहें? अतीतकाल में जो श्रेष्ठ सिद्ध हुए और जो आगे सिद्ध होंगे वह सम्यक्त्व का ही प्रताप है

What is the use of saying more; it is due to the magnanimity of Right Faith that the great personage and the Bhavya those worthy of attaining emancipation) have attained liberation in the past and will do so in future. (226)

जैसे जल से लिप्त नहीं, कमल पत्र स्वभाव ।
विषय–कषाय न लिप्तता, सम्यक यदा प्रभाव ।।२.१८.९.२२७।।

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणि–पत्तं सहाव–पयडीए
तह भावेण ण लिप्पइ कसाय–विसएहिं सप्पुरिसो ।।९।।

यथा सलिलेन न लिप्यते, कमलिनीपत्रं स्वभावप्रकृत्या ।
तथा भावेन न लिप्यते, कषायविषयैः सत्पुरुषः ।।९।।

जैसे कमलिनी का पत्र स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता, वैसे ही सत्पुरुष सम्यक्त्व के प्रभाव से कषाय और विषयों से लिप्त नही होता ।

Just as it is on account of its very nature that a lotus leaf remains untouched by water, similarly a righteous person remains really un-affected by passions and by the objects of sensuous enjoyment. (227)

चेतन–अवचेतन करे, द्रव्यों का जन भोग ।
करे निर्जरा में सदा, सम्यक दृष्टि प्रयोग ।।२.१८.१०.२२८।।

उवभीज्ज–मिंदियेहिं दव्वाण–मंचेदणाण–मिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं णिज्जर–णिमित्त ।।१०।।

उपभोगमिन्द्रियैः, द्रव्याणामचेतनानामितरेषाम् ।
यत् करोति सम्दृष्टिः तत् सर्वं निर्जरानिमित्तम् ।।१०।।

सम्यक्दृष्टि जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा चेतन व अचेतन द्रव्यों का जो भी उपयोग करता है वह सब कर्मों की निर्जरा में सहायक होता है

Whatever use of living or non-living objects, a man of Right Faith may make through his senses, is all for getting release from the Karmas. (228)

भोग करे पर भोग नहीं, ना भोगे पर भोग ।
लगा काम में इस तरह, नहीं काम का रोग ।।२.१८.११.२२९।।

सेवंतो वि ण सेवइ, असेवमाणो वि सेवगो कोई ।
पगरण–चेट्ठा कस्स वि, ण य पायरणो त्तिसो होई ।।११।।

सेवमानोऽपि न सेवते, असेवमानोऽपिसेवकः कश्चित् ।
प्रकरणचेष्टा कस्यापि, न च प्राकरण इति स भवति ।।११।।

कोई विषयों का सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता और कोई सेवन न करते हुए भी सेवन करता है । जैसे कोई जन विवाहादि कार्य में लगा रहने पर भी उस कार्य का स्वामी न होने से कर्ता नहीं होता ।

There are persons, who do not enjoy sensual pleasures in spite of their actual indulgence in them: on the country, there are others, who enjoy sensual pleasures, without actually indulging in them. They are comparable to such guests who participate in the rites and rituals of a marriage ceremony but who can not be held responsible for marriage as they are not masters of that ceremony. (229)

सम–विषम गुण भाव नहीं, कामभोग के जान ।
राग द्वेष में लगा रहे, भोगी उसको मान ।।२.१८.१२.२३०।।

न कामभोगा समयं उवेन्ति, न यावि भोगा विगइं उवेन्ति ।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ।।१२।।

न कामभोगाः समतामुपयन्ति, न चापि भोगा विकृतिमुपयन्ति ।
यस्तत्प्रद्वेषी च परिग्री च, स तेषु मोहाद् विकृतिमुपैति ।।१२।।

इसी तरह काम भोग न समभाव उत्पन्न करते हैं और न ही विषमता । जो उनके प्रति राग–द्वेष रखता है वह उनमें विकृति को प्राप्त होता है।

The objects of enjoyment of senses do not produce either equanimity or perversion. He who has attachment or aversion for objects becomes perverted while enjoying them due to his delusion. (230)

शंका आकांक्षा नहीं, अमूढ–दृष्टि, समभाव ।
राज रखे न, धीर रहे, स्नेहिल, धर्म प्रभाव ।।२.१८.१३.२३१।।

निस्संकिय निक्कंखय निव्वितिगिच्छा अमूढ़दिट्ठी य ।
उवबूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ।।१३।।

निःशंकितं निःकाङ्क्षितं, निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टिश्च ।
उपबृंहा स्थिरीकरणे, वात्सल्य प्रभावेनाऽष्टी ।।१३।।

सम्यग्दर्शन के ये आठ अंग है: निःशंका, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगृहन, स्थिरीकरण, वास्तल्य और प्रभावना।

The eight essential requisites of Right Faith are: absence of doubt, absence of longing, absence of contempt, absence of confusion, absence of belief in heretical sects, stabilization, affection and exaltation. (231)

सम्यक दृष्टि जीव निःशंक, हो निर्भय का भाव ।
सातों भय से मुक्त रहे, निःशंक यही स्वभाव ।।२.१८.१४.२३२।।

सम्मा–दिट्ठी जीवा, णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्त–भय–विप्प–मुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका ।।१४।।

सम्यग्दृष्टयो जीवा निश्शङ्का भवन्ति निर्भयास्तेन ।
सप्तभयविप्रमुक्ता, यस्मात् तस्मात तु निश्शङ्का ।।१४।।

सम्यग्दृष्टि जीव शंकारहित होते हैं इसलिये निर्भय होते हैं। वे सात प्रकार के भयों से रहित होते है। इस लोक का भय, परलोक भय, रक्षा का भय, वेदना भय और अकस्मात भय ।

The Right believing souls are doubtless (non sanka): that is why they are fearless also. They are free of seven kinds of fears:
1. Fear of this world: 2. Fear of the world beyond 3. Fear of Insecurity: 4. Fear of indiscipline: 5. Fear of Death: 6. Fear of pain: and 7. Fear of incapability Hence they are doubtless. (232)

चाह जिसे कोई नहीं, धरम-करम फल भान ।
चाहरहित समझे उसे, सम्यक दृष्टि वो मान ।।२.१८.१५.२३३।।

जो दु ण करेदि कंखं, कम्मफलेसु तह य सव्व-धम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ।।१५।।

यस्तु न करोति का ङ्क्षाम्, कर्मफलेषु तथा सर्वधर्मेषु ।
स निष्काङ्क्षश्चेतयिता, सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्य ।।१५।।

जो समस्त कर्मफलों में और सम्पूर्ण वस्तु धर्मों में किसी भी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखता, इन को निरकांक्ष सम्यग्दृष्टि समझना चाहिये ।

A person who has no longing for the fruits of Karmas and for all objects or any of the properties of a thing, is possessed of Right Faith. (233)

मान, पूजा चाह नहीं, ना वंदन गुणगान ।
संयत, सुव्रत, तपस्वी, साधु आत्म का ज्ञान ।।२.१८.१६.२३४।।

नोसक्यि-मिच्छई न पूयं, नो वि य वन्दणगं कुओ पसंसं?
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू ।।१६।।

न सत्कृतिमिच्छति न पूजां, नोऽपि च वन्दनकं कुतः प्रशंसाम् ।
स संयतः सुव्रतस्तपस्वी, सहित आत्मगवेषकः स भिक्षुः ।।१६।।

जो सत्कार, पूजा और वंदना नही चाहता वह किसी से प्रशंसा की क्या अपेक्षा करेगा । जो संयत है, सुव्रती है, तपस्वी है और आत्मगवेषी है, वही भिक्षु है ।

He who desires no honour, no worship, no salutation even, how will he desire praise? He who has self-control, observes the vows correctly, practises penance and seeks to know the true nature of the soul is the real monk. (234)

ख्याति, पूजा, लाभ मिले, सम्मान सन्त ना चाह ।
इच्छा जो परलोक की, नहीं कभी यह राह ।।२.१८.१७.२३५।।

खाई-पूया-लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई ।
इच्छसि जदि परलोयं, तेहिं किं तुज्झ परलोयं ।।१७।।

ख्याति-पूजा-लाभं, सत्कारादि किमिच्छसि योगिन्! ।
इच्छसि यदि परलोकं तैः किं तव परलोके? ।।१७।।

हे योगी ! यदि तू परलोक चाहता है तो ख्याति, लाभ, पूजा और सत्कार आदि क्यों चाहता है?

Oh monk, if you desire the bliss of the other world, why do you crave after fame, worship, enjoyment and honour in this world? Of what use are they to you in the next world? (235)

ग्लानि जो करता नहीं, वस्तु धर्म पहचान ।
निर्विचिकित्सा गुण कहें, सम्यक दृष्टि ज्ञान ।।२.१८.१८.२३६।।

जो ण करेदि जुगुप्पं, चेदा सव्वेसि मेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विगिच्छो, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।१८।।

यो न करोति जुगुप्सां, चेतयिता सर्वेषामेव धर्माणाम् ।
सः खलु निर्निचिकित्सः, सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्य ।।१८।।

जो समस्त वस्तुओं के धर्मों को पहचान कर उनसे ग्लानि नही करता है वो निर्विचिकित्सा धारक सम्यग्दृष्टि है ।

He who does not exhibit contempt or disgust towards any of the things, is said to be the right believer. (236)

व्यक्ति नहीं विमूढ जो, चेतन दृष्टि सुभाव।
अमूढ़ दृष्टि कहते उसे, सम्यक् दृष्टि स्वभाव ।।२.१८.१९.२३७।।

जो हवदि असम्मूढो, चेदा सव्वेसु कम्म-भावेसु ।
सो खलु अमूढ-दिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।।१९।।

यो भवति असंमूढः, चेतयिता सद्दृष्टिः सर्वभावेषु ।
स'लु अमूएदृष्टिः, सम्यदृष्टिर्ज्ञातव्यः।।१९।।

जो समस्त वस्तुओं के धर्मों को पहचान कर उनसे ग्लानि नही करता है वो निर्विचिकित्सा धारक सम्यग्दृष्टि है।

He who is completely devoid of delusion as to the nature of things is certainly understood to be the non-deluded right believer. (237)

ज्ञान और दर्शन मिले, तप चरित्र का साथ।
शान्ति और मुक्ति मिले, वर्धमान का हाथ ।।२.१८.२०.२३८।।

नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण, तहेव य।
खन्तीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ।।२०।।

ज्ञानेन दर्शनेन च, चारित्रेण तथैव च ।
क्षान्त्या मुक्त्या, वर्धमानो भव च ।।२०।।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, शान्ति एवं मुक्ति के द्वारा जीवन को वर्धमान बनाना चाहिये।

May you prosper with the aid of right knowledge, right faith and right conduct as also forgiveness and freedom from bondage of Karma. (238)

ना ढ़के ना कहे ग़लत, चाहे नहीं प्रचार ।
ज्ञानी की निंदा नहीं, ना वरदान विचार ।।२.१८.२१.२३९।।

णो छादय णोऽवि य लूसएज्जा, माणं ण सेवेज्ज ।
ण या वि पण्णे परिहास कुन्जा, ण याऽऽ सियावाद वियागरेज्झा ।।२१।।

नो छादयेन्नापि च लूषयेद्, मानं न सेवेत प्रकाशनं च ।
न चापि प्राज्ञः परिहासं कुर्यात्, न चाप्याशीर्वादं व्यागृणीयात् ।।२१।।

न शास्त्र के अर्थ को छिपाये और नही शास्त्र की असम्यक् व्याख्या करे। न मान करे अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करे। न किसी विद्वान का परिहार करे न किसी को आशीर्वाद दे।

The wise man should not conceal the meaning of a scriptural text nor should he distort it; he should not harbour pride or a tendency to self-display; he should not make fun of anyone or bestow words of blessing on anyone. (239)

दोष जहाँ खुद में दिखे, मन वचन और काय ।
धीरज खींचे रास को, पथ में वापस आय ।।२.१८.२२.२४०।।

जत्थेव पासे कई दुप्पउत्तकाएण वायाअदु माणसेणं ।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा, आइन्न ओ खिप्पमिवक्खलीणं ।।२२।।

सत्रैव पश्येत् क्वचित् दुष्प्रयुक्तं, कायेन वाचा अथ मानसेन ।
तत्रैव धीरः प्रतिसंहरेत्, आजानेयः (जात्यश्वः) क्षिप्रमिवखलीनम् ।।२२।।

जब अपनें में दोष की प्रवृत्ति दिखायी दे, उसे तत्काल ही मन, वचन व काया से सम्यग्दृष्टि रखते हुए समेट ले जैसे बेक़ाबू घोड़ा रास के द्वारा सीधे रास्ते पर आ जाता है।

The wise man, whenever he comes across an occasion for some wrong doing on the part of body, speech or mind, should withdraw himself there from, just as a horse of good pedigree is brought to the right track by means of rein. (240)

पार महा–सागर किया, क्यों तू अब तट छोर ।
हे गौतम! अविलंब तू, बढ़ आगे की ओर ।।२.१८.२३.२४१।।

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम! मा परमायए ।।२३।।

तीर्णः खलु असि अर्णवं महान्तं, किं पुनस्तिष्ठसि तीरमागतः ।
अभित्वरस्व पारं गन्तुं, समयं गौतम! मा प्रमादीः ।।२३।।

हे गौतम! तू महासागर को तो पार कर गया है अब तट पर क्यों खड़ा है? क्षण भर का भी आलस न कर, तुरन्त आगे बढ़ ।

Oh Gautama, when you have crossed over the big ocean, why then do you come to a stop near the shore? Make haste to go across, be not complacent even for a moment. (241)

धर्म का अनुसरण करे, श्रद्धा और अनुराग ।
प्रिय वचन हरपल कहे, ममत्व सम्यक् राग ।।२.१८.२४.२४२।।

जा धाम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परम–सद्धाए ।
पिय–वयणं जंपंतो, वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ।।२४।।

यः धार्मिकेषु भक्तः, अनुचरणं करोति परमश्रद्धया ।
प्रियवचनं जल्पन् वात्सल्यं तस्य भव्यस्य ।।२४।।

जो धार्मिक जनों में अनुराग रखता है, श्रद्धापूर्वक उनकी अनुशरण करता है तथा प्रिय वचन बोलता है वो वात्सल्य सम्यग्दृष्टि है ।

The great person, who is full of devotion for fellow religious person, follows them with a feeling of great faith, and utters loveable words, is possessed of affection. (242)

धर्म कथा का कथन करें, बाह्य योग अभ्यास ।
करना धर्म प्रभावना, जीव दया मन वास ।।२.१८.२५.२४३।।

धम्म-कहा-कहणेण य, बाहिर-जोगेहिं चावि णवज्जेहिं ।
धम्मो पहाविदव्वो, जीवेसु दयाणुकंपाए ।।२५।।

धर्मकथाकथनेनल च, बाह्ययोगैश्चाप्यनवद्यैः ।
धर्मः प्रभावयितव्यो, जीवेषु दयानुकम्पया ।।२५।।

बाह्य ऋतुओं को ध्यान में रखते हुए, धर्म कथा के कथन द्वारा जीवों पर दया करते हुए धर्म की प्रभावना करनी चाहिये।

The radiance of religion should be spread by narration of religious stories, by performance of dispassionate external austerities and by showing mercy and compassion towards living beings. (243)

प्रवचनी, वादी, तपकर्ता, ज्ञानी, धर्म का पाठ ।
विद्जन, साधक और कवि, धर्म प्रभावक आठ ।।२.१८.२६.२४४।।

पावयणी धम्मकही, वाई नेमित्तओ तवस्सी य ।
विज्जा सिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया ।।२६।।

प्रावचनी धर्मकथी, वादी नैमित्तिकः तपस्वी च ।
विद्यावान् सिद्धःच कविः, अष्टौ प्रभावकाः कथिताः ।।२६।।

प्रवचन कुशल, धर्मकथाएँ करने वाला, वादी, निमित्तज्ञानी, तपस्वी, विद्या सिद्ध, ऋद्धि सिद्धियों का स्वामी व कवि ये आठ मनुष्य धर्म प्रभावक कहे गये हैं।

One who holds religious discourse, one who narrates religious stories, one who holds discussions with rivals, one who reads omens, one who performs penance one who is learned, one who is possessed of miraculous powers, one who is a poet, these eight types of person undertake propagation of religion. (244)

सुनकर जाने हित कहाँ, सुनकर जाने पाप ।
सुनकर जाने हित–अहित, चुने उचित फिर आप ।।२.१९.१.२४५।।

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जणइ पावगं ।
उभयं पि जाणए सोच्चा, जं छेयं तं समायरे ।।१।।

श्रुत्वा जानाति कल्याणं, श्रुत्वा जानाति पापकम् ।
उभयमपि जानाति श्रुत्वा, यत् छेकं तत् समाचरेत् ।।१।।

सुनकर ही हित और अहित का मार्ग जाना जा सकता है और उस पर आचरण करना चाहिये।

After listening to scriptures, a person comes to know what is good and what is sinful, having thus known through listening one ought to perform what leads to welfare. (245)

संयम में तप नियम हो, आज्ञा के अनुसार ।
स्थिरचित साधक रहे, जीवन शुद्ध विहार ।।२.१९.२.२४६।।

णाणाऽणत्तीए पुणो, दंसणतवनियमसंजमे ठिच्चा ।
विहरइ विसुज्झमाणो जावज्जीवं पि निक्कंपो ।।२।।

ज्ञानाऽऽज्ञप्त्या पुनः, दर्शनतपोनियमसंये स्थित्वा ।
विहरति विशुध्यमानः, यावज्जीवमपि निष्कम्पः ।।२।।

तप नियम, संयम में स्थित होकर ज्ञान के आदेशानुसार संयमी साधक कर्म–मल से विशुद्ध जीवनपर्यन्त विहार करता है ।

Under the influence of scriptural knowledge, one becomes firm in his faith, meditation, observance of vows and selfrestraint, and lives a life of purity throughout his lifetime without any wavering thoughts. (246)

ज्यूँ ज्यूँ मुनि करते श्रवण, अतिशयरस अनुराग ।
श्रद्धा नित नूतन बढ़े, मन जागे वैराग ।।२.१९.३.२४७।।

जह जह सुद-ओगाहर, अदिसय-रस-पसर संजुयमपुव्वं ।
तह तह पल्हादिज्जदि, नव नव संवेग सड्ढाए ।।३।।

यथा यथा श्रुतमवगाहते, अतिशयरसप्रसरसंयुतमपूर्वम् ।
तथा तथा प्रह्लादते मुनिः, नवनवसंवेगश्रद्धाकः ।।३।।

जैसे जैसे मुनि रस के अतिरेक से युक्त होकर ज्ञान को सुनता है वैसे वैसे वैराग्य के प्रति श्रद्धा बढ़ती है ।

As a monk continues to master the scriptures with extra-ordinary devotion and unbounded interest, he experiences supreme bliss with renewed faith accompanied that is full of renunciation. (247)

धागे संग रहती सुई, मिले अगर खो जाय ।
ज्ञान शास्त्री जीव भी, जग में ना खो पाय ।।२.१९.४.२४८।।

सुई जहा ससुत्ता न नस्सई कयवरम्मि पडिआ वि ।
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे ।।४।।

सूची यथा ससूत्रा, न नश्यति कचवरे पतिताऽपि ।
जीवोऽपि तथा ससूत्रो, न नश्यति गतोऽपि संसारे ।।४।।

जैसे धागा पिरोयी हुई सुई कचरे में गिर जाने पर भी खोती नहीं है, वैसे ही शास्त्रज्ञानयुक्त जीव संसार में नष्ट नहीं होता ।

A needle with a thread in it does not get lost even when it falls in a heap of rubbish, so a person endowed with scriptural knowledge does not lose his self, even if involved in transmigratory cycle. (248)

सम्यक्त्व रत्न हो नहीं, शास्त्रज्ञान अपार ।
श्रद्धा उसमें हो नहीं, भटके बारंबार ।।२.१९.५.२४९।।

सम्मत्त–रयण–भट्ठा, जाणंता बहु–विहाइं सत्थाइं ।
आराहणा–विरहिया, भमंति तत्थेव तत्थेव ।।५।।

सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टा, जानन्तो बहुविधानि शास्त्राणि ।
आराधनाविरहिता, भ्रमन्ति तत्रैव तत्रैव ।।५।।

शास्त्रों के ज्ञाता में अगर सम्यक्त्व का अभाव हो तो आराधना विहीन होने से अनेक गतियों में भ्रमण करता रहता है ।

Those who have renounced the jewel of right faith will continue to wander in different states of mundane existence, as they are devoid of proper devotions to virtuous qualities, even though they may be wellacquainted with many kinds of scriptures. (249)

शेष परम–अणु मात्र भी, राग जीव के पास ।
आत्मा को जाने नहीं, जाने आगम ज्ञान ।।२.१९.६.२५०।।

आत्मा जब जाने नहीं, नहीं अनात्मा ज्ञान ।
वो दृष्टि सम्यक नहीं, जीव अजीव न भान ।।२.१९.७.२५१।।

परमाणु–मित्तयं पि हु, य रायादीणं तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागम–धरो वि ।।६।।

परमाणुमात्रमपि खलु, रागादीनां तु विद्यते यस्य ।
नापि स जानात्यात्मानं चापि सोऽजानन् ।।६।।

आत्मानमजानन्, अनात्मानं चापि सोऽजानन् ।
कथं भवति सम्यग्दृष्टि–जींवाजीवान् अजानन् ।।७।।

जिस व्यक्ति में परमाणुभर भी राग शेष हो, वो समस्त आगम का ज्ञाता होकर भी आत्मा को नही जानता। आत्मा को न जानने से अनात्मा को भी नहीं जानता। जो जीव-अजीव को नही जानता वो सम्यक्दृष्टि कैसे हो सकता है ?

A person, who has in him even an iota of attachment, though he may be knowing all the scriptures, will not understand the nature of the soul, He who does not know the (nature of) soul, will not know the non-soul also. How can a person not knowing the soul and the non-soul, become a person having right faith? (250 & 251)

जहाँ तत्व का ज्ञान हो, रहता चित्त निरोध।
आत्मा जिसकी शुद्ध हो, जिनशासन का बोध ।।२.१९.८.२५२।।

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि ।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ।।८।।

येन तत्त्वं विबुध्यते, येन चित्तं निरुध्यते ।
येन आत्मा विशुध्यते, तज् ज्ञानं जिनशासने ।।८।।

जिसमें तत्त्व का ज्ञान होता है, चित्त का निरोध होता है व आत्मा विशुद्ध होती है, उसी को जिनशासन में ज्ञान कहा गया है।

According to the teachings of Jina, knowledge is that which helps to understand the truth, controls the mind and purifies the soul. (252)

जीव राग जिससे विमुख, बढ़ती श्रेय कमान ।
बढ़े मित्रता भाव जहाँ, जिन शासन का ज्ञान ।।२.१९.९.२५३।।

जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मितीपभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ।।९।।

येन रागाद्विरज्यते, येन श्रेयस्सु रज्यते ।
येन मैत्री प्रभाव्येत, तज् ज्ञानं जिनशासने ।।९।।

जिससे जीव राग से विमुख होता है, श्रेय व मैत्रीभाव बढ़ता है वही जिनशासन के अनुसार सम्यग्ज्ञान है।

According to the teachings of Jina, it is through knowledge that ties of attachment are severed, attraction towards auspiciousness is developed and which enhances the thoughts and attitudes of compassion or friendship towards all living-beings. (253)

कर्मरहित जो आत्मा, गुण ना अन्य विशेष ।
अंत मध्य आदि नहीं, जिन-शासन परिवेश ।।२.१९.१०.२५४।।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध-पुट्ठं अण्ण-मविसेसं ।
अपदेस-सुत्त-मज्झं पस्सदि जिण-सासणं सव्वं ।।१०।।

यः पश्यति, आत्मान-मबद्धस्पृष्टमनन्यमविशेषम् ।
अपदेशसूत्रमध्यं, पश्यति जिनशासनं सर्वम् ।।१०।।

जो आत्मा को कर्मरहित, अन्य से रहित, विशेष से रहित तथा आदि-मध्य औरअंतविहीन देखता है वही समग्र जिनशासन को देखता है।

He only knows the whole doctrine of Jina, who knows the soul, unbound by karmic matter, different from everything else, devoid of all particularities and well described in the scriptures. (254)

आत्मा को जो जानता, भिन्न है तन पहचान ।
जाने तत्त्व स्वरूप को, सकल शास्त्र का ज्ञान ।।२.१९.११.२५५।।

जो अप्पाणं जाणदि असुइ सरीरादु तच्चदो भिण्ण ।
जाणग-रूव-सरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं ।।११।।

य आत्मानं जानाति, अशुचिशरीरात् तत्त्वतः भिन्नम् ।
ज्ञायकरूपस्वरूपं, स शास्त्रं जानाति सर्वम् ।।११।।

जो आत्मा को इस अपवित्र शरीर से तत्त्वतः अलग तथा ज्ञायक-भावरूप जानता है, वही समस्त शास्त्रों को जानता है ।

That man alone knows all scriptures who understands pure soul as fundamentally different from the unholy body and who deems/understands it (soul) to be a conscious being. (255)

शुद्ध आत्मा जो मानता, शुद्ध आत्मा पाय ।
अशुद्ध माने आत्मा, आत्म शुद्ध नहीं जाय ।।२.१९.१२.२५६।।

सुद्धं तु वियाणंतो, सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं, असुद्ध-मेवप्पयं लहइ ।।१२।।

शुद्धं तु विजानन्, शुद्धं चैवात्मानं लभते जीवः ।
जानंस्त्वशुद्ध-मशुद्धमेवात्मानं लभते ।।१२।।

जो जीव आत्मा को शुद्ध जानता है वही शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है। जो आत्मा को देहयुक्त जानता है वह अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है ।

One who knows soul as pure oneself attains a pure self. But who contemplates the soul as having impure nature becomes himself impure. (256)

जो जाने अध्यात्म को, भौतिक को भी जान ।
बाहर भी जो जानता, अंदर का भी ज्ञान ।।२.१९.१३.२५७।।

जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ ।।१३।।

योऽध्यात्मं जानाति, स बहिर्जानाति ।
यो बहिर्जानाति, सोऽध्यात्मं जानाति ।।१३।।

जो अध्यात्म को जानता है वह बाह्य (भौतिक) को जानता है। जो भौतिक को जानता है वह अध्यात्म को जानता है।

He who knows the internal, knows the external and he who knows the external, knows the internal. (257)

जाने जो जन एक को, जाने सकल जहान ।
जो जन सबको जानता है, उसे एक का ज्ञान ।।२.१९.१४.२५८।।

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ ।
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ ।।१४।।

यः एकं जानाति, स सर्वं जानाति ।
यः सर्वं जानाति, स एकं जानाति ।।१४।।

जो एक को जानता है वह सबको जानता है और जो सबको जानता है वह एक को जानता है।

He who knows the one (the self) knows everything else; he who knows all things, knows the one (the self). (258)

लीन रहो इस ज्ञान में, संतुष्टि का भान ।
जो तृप्त इस में रहे, करे परम सुख पान ।।२.१९.१५.२५९।।

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो तो होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं ।।१५।।

एतस्मिन् रतो नित्यं, सन्तुष्टो भव नित्यमेतस्मिन् ।
एतेन भव तृप्तो, भविष्यति तवोत्तमं सौख्यम् ।।१५।।

तू इस ज्ञान में लीन रह। इसी में सदा संतुष्ट रह। इसी से तृप्त हो। इसी से तुझे उत्तम सुख प्राप्त होगा।

Be you always engrossed in pure knowledge; be you ever satisfied in it, be contented with it; you will get supreme happiness therefrom. (259)

जो जाने अरिहंत को, द्रव्य तत्व गुण ज्ञान ।
वही जानता आत्म को, मोह भंग हो मान ।।२.१९.१६.२६०।।

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्त-गुणत्त-पज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ।।१६।।

यो जानात्यर्हन्तं, द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः ।
स जानात्यात्मानं, मोहः खलु याति तस्य लयम् ।।१६।।

जो अर्हन्त को पूर्ण रूपेण (द्रव्य-गुण-पर्याय) जानता है वही आत्मा को जानता है। उसका मोह निश्चय ही विलीन हो जाता है।

He who knows the Arhat from the view-points of substance, attributes and modifications, knows also the pure soul; his delusion will surely come to an end. (260)

निधि मिले जब जीव को, स्वजन संग उपभोग ।
ज्ञान मिले जब जीव को, खुद करता उपयोग ।।२.१९.१७.२६१।।

लद्धूणं णिहिं एक्को, तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।
तह णाणी णाण-णिहिं भुंजेइ चइत्तु पर-तत्तिं ।।१७।।

लब्ध्वा निधिमेकस्तस्य फलमनुभवति सुजनत्वेन ।
तथा ज्ञानी ज्ञाननिधिं, भुङ्क्ते त्यक्त्वा परतृप्तिम् ।।१७।।

जैसे कोई व्यक्ति निधि प्राप्त होने पर उसका उपयोग स्वजनों के बीच करता है वैसे ही ज्ञानी ज्ञान-निधि का उपयोग पर-द्रव्यों से अलग होकर अपने में ही करता है।

Just as one getting hold of a treasure consumes it in a gentlemanly fashion, similarly the wise man, getting hold of the treasure of knowledge, enjoys it ignoring all pleasure derived from anything else. (261)

प्रकरण २० - सम्यक्चारित्रसूत्र

Chapter 20 - Precepts On Right Conduct

व्यवहारनय चारित्र में, तपश्चरण व्यवहार ।
निश्चयनय चारित्र्य में, निश्चय तप आचार ।।२.२०.१.२६२।।

ववहार-णय-चरित्ते, ववहार-णयस्य होदि तवचरणं ।
णिच्छय-णय-चारित्ते, तवचरणं होदि णिच्छयदो ।।१।।

व्यवहारनयचरित्रे, व्यवहारनयस्य भवति तपश्चरणम् ।
निश्चयनयचारित्रे, तपश्चरणं भवति निश्चयतः ।।१।।

व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है। निश्चयनय के चारित्र में निश्चयनय का तपश्चरण होता है।

Right Conduct from the practical view-point is to practice austerities from practical view point. Right Conduct from the real view-point is to observe austerities from the real view-point. (262)

छोड़ अशुभ, शुभ में गमन, चरित्र हो व्यवहार।
व्रत, समिति, गुप्ति रूप हो, ये जिनदेव विचार ।।२.२०.२.२६३।।

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वद-समिदि-गुत्ति-रूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ।।२।।

अशंभाद्विनिवृत्तिः, शुभे प्रवृत्तिश्च जानीहि चारित्रम् ।
व्रतसमितिगुप्तिरूपं, व्यवहारनयात् तु ज्जिनभणितम् ।।२।।

अशुभ को छोड़ना व शुभ को अपनाना ही व्यवहारचारित्र है। जो पाँच व्रत, पाँच समिति व तीन गुप्ति के रूप में जिनदेव द्वारा बताई गई है।

Know that Right Conduct consists in desisting from inauspicious activity and engaging in auspicious activity. Jina has ordained that conduct from the practical point of view consists in the observance of 5 vows, 5 acts of carefulness (Samiti) and control of 3 gupti. (263)

मगन जीव श्रुतज्ञान में, नहीं मोक्ष हक़दार ।
तप संयम बिन योग के, खुले मुक्ति का द्वार ।।२.२०.३.२६४।।

सुयनाणम्मि वि जीवो, वट्टंतो सो न पाउणति मोक्खं ।
जे तव संजम-मइए, जोगे न चएइ वोढं जे ।।३।।

श्रुतज्ञानेऽपि जीवो, वर्तमानःस स न प्राप्नोति मोक्षम् ।
यस्तपः संयममयान् योगान् न शक्नोति वोढुम् ।।३।।

श्रुतज्ञान जानने वाला जीव भी यदि तप-संयम को धारण करने में असमर्थ हो तो मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता ।

A person, even possessing scriptural knowledge will not attain emancipation if he is not able to observe strictly the activities of austerity and self-control. (264)

बिना कर्म के लक्ष्य नहीं, कितना भी हो ज्ञान ।
यदि न हो अनुकूल हवा, लगे न तट जलयान ।।२.२०.४.२६५।।

सक्किरिया-विरहादो, इच्छि-संपावयं ण नाणं ति ।
मग्गण्णू वाऽचेट्ठो, वातविहीणोऽधवा पोतो ।।४।।

सत्क्रियाविरहात् ईप्सित संप्रापकं न ज्ञानमिति ।
मार्गज्ञो वाऽचेष्टो, वातविहीनोऽथवा पोतः ।।४।।

सत्क्रिया से रहित ज्ञान इष्ट लक्ष्य प्राप्त नहीं करा सकता । जैसे मार्ग का जानकार व्यक्ति प्रयत्न न करे तो गन्तव्य तक नहीं पहुँच सकता अथवा अनुकूल वायु के अभाव में जलयान इच्छित स्थान तक नहीं पहुँच सकता।

Though a person knows the right path yet fails to reach his destination due to inaction or absence of favourable wind for his boat; similarly knowledge will not achieve the desired fruit in the absence of virtuous deeds. (265)

चरित्रहीन के हैं सभी, शास्त्र ज्ञान बेकार ।
ज्यूँ अंधे के सामने, जलते दीप हज़ार ।।२.२०.५.२६६।।

सुबहुं पि सुय-महियं किं काहिइ चरण-विप्प-हीणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता, दीव-सय-सहस्स-कोडी वि ।।५।।

सुबह्वपि श्रुतमधीतं, किं करिष्यति चरणविप्रहीणस्य ।
अन्धस्य यथा प्रदीप्ता, दीपशतसहस्रकोटिरपि ।।५।।

चारित्र शून्य व्यक्ति का विपुल शास्त्र अध्ययन व्यर्थ है जैसे अन्धे के आगे करोड़ों दीपक जलाना व्यर्थ है ।

Just as a hundredthousand-crore of lamps kept burning are of no use to a blind person, of what use is study of numerous scriptures to a person who has no character? (266)

अल्प ज्ञान भी है बहुत, हो जो चरित्रवान ।
चरित्रहीन निष्फल रहे, भले अधिक हो ज्ञान ।।२.२०.६.२६७।।

थोवह्मि सिक्खिदे जिणइ, बहुसुदं जो चरित्त-संपुण्णो ।
जो पुण चरित्त-हीणो, किं तस्स सुदेण बहुएण ।।६।।

स्तोके शिक्षिते जयति, बहुश्रुतं यश्चरित्रसम्पूर्णः ।
यः पुनश्चारित्रहीनः, किं तस्य श्रुतेन बहुकेन ।।६।।

चारित्र सम्पन्न का अल्प ज्ञान भी बहुत है और चारित्रविहीन का बहुत ज्ञान भी बेकार है ।

A person of right conduct triumphs over a learned person, even if his scriptural knowledge is little; what is the use of wide study of scriptures for a person without right conduct? (267)

आत्मा में तन्मय रहे, निश्चयनयानुसार ।
योगी चरित्रशील को, मिले मोक्ष का द्वार ।।२.२०.७.२६८।।

णिच्छय-णयस्स एवं, अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो ।
से होदि हु सुरित्तो, जोई सो लहइ णिव्वाणं ।।७।।

निश्चयनयस्य एवं, आत्मा आत्मनि आत्मने सुरतः ।
सः भवति खलु सुचरित्रः, योगी सः लभते निर्वाणम् ।।७।।

निश्चयनय के अनुसार आत्मा का आत्मा में आत्मा के लिये तन्मय होना ही सम्यक्चरित्र है। ऐसे चारित्रशील योगी को ही निर्वाण की प्राप्ति होती है।

From the real point of view, he, who is blissfully absorbed in his own soul to know his soul with the aid of his soul, becomes a person of Right Conduct; that ascetic attains emancipation. (268)

जिसे जान योगी करे, पाप-पुण्य परिहार ।
वही चरित सम्पूर्ण है, कर्मरहित व्यवहार ।।२.२०.८.२६९।।

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणई पुण्ण-पावाणं ।
तं चाचरित्तं भणियं, अवियप्पं कम्म-रहिएण ।।८।।

यद् ज्ञात्वा योगी, परिहारं करोति पुण्यपापानाम् ।
तत् चारित्रं भणितम्, अविकल्पं कर्मरहितैः ।।८।।

जिसे जानकर योगी पाप व पुण्य दोनों का परिहार कर देता है, उसे ही कर्मरहित निर्विकल्प चारित्र कहा गया है।

An ascetic who eradicates his punya Karmas (merits) as well his Papa Karmas (sins) undoubtedly acquires right conduct-this is said by those who are free from Karmas (i.e. the Jinas). (269)

शुभ-अशुभ परद्रव्य के, रहे राग का भाव ।
भटक गया स्वचरित्र से परवश जीव स्वभाव ।।२.२०.९.२७०।।

जो परदव्वम्मि सुहं, असुहं रागेण कुणादि जदि भावं ।
सो सग-चरिय-भट्ठो, पर-चरिय-चयो हवदि जीवो ।।९।।

यः परद्रव्येशुभमशुभं, रागेण करोति यदि भावम् ।
स स्वकचरित्रभ्रष्टः, परचरितचरो भवति जीवः ।।९।।

जो राग के वशीभूत होकर पर-द्रव्यों में शुभ-अशुभ भाव रखता है वह जीव स्वकीय चारित्र से भ्रष्ट परचरिताचारी होता है।

The imperfect soul, which develops good and bad thought natures (shubha-ashubha Bhavya) in objects, other than self (in non selves/par-dravya), falls from his real-conduct (Svakiyachartra) and become a prey to unreal (wrong) conduct (parcharitachari). (270)

मुक्त सभी से खुद में मस्त, आत्मा में ही भाव ।
जाने देखे यह सदा, स्वकीय चरित स्वभाव ।।२.२०.१०.२७१।।

जो सव्व-संग मुक्को-णण्णमणो अप्पणं सहावेण ।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ।।१०।।

यः सर्वसंगमुक्तः, अनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन ।
जानाति पश्यति नियतं, सः स्वकचरितं चरति जीवः ।।१०।।

जो परिग्रह मुक्त तथा अनन्यमन होकर आत्मा को ज्ञानदर्शनमय स्वभावरूप जानता-देखता है, वह जीव स्वकीयचरिताचारी है।

He, who devoid of all attachment and withdrawing one's mind from everything else, definitely knows and sees one's soul in its own true nature, practises what constitutes one's own conduct (i.e. Svabhava). (271)

परम अर्थ में थिर नहीं, तप–व्रत हो आचार ।
बाल तप और बाल व्रत, यह सर्वज्ञ विचार ।।२.२०.११.२७२।।

परमट्ठम्मि दु अठिदो, जो कुणादि तवं वदं च धारयदि ।
तं सव्वं बाल–तवं बाल–वंद विंति सव्वण्हू ।।११।।

परमार्थे त्वस्थितः, यः करोति तपो व्रतं च धारयति ।
तत् सर्वं बालतपो, बालव्रतंब्रुवन्ति सर्वज्ञाः ।।११।।

जो परम अर्थ में स्थित नहीं है उसके तपश्चरण या व्रताचरण को जिनदेव ने बालतप या बालव्रत कहा है ।

If one performs austerities (tapas) or observes vows (vratas) without fixed contemplation on the Supreme Self, the omniscients call all that childish austerity (balatapa) and childish vow (balavrata). (272)

मास मास के व्रत करे, परम शून्य अज्ञान ।
कला सोलहवीं धर्म की, कभी न सकता न जान ।।२.२०.१२.२७३।।

मोस मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुंजए ।
न सो सुयक्खायधम्मस्स कलं अग्घइ सोलसिं ।।१२।।

मासे मासे तु यो बलः, कुशाग्रेण तु भुङ्क्ते ।
नस स्वाख्यातधर्मस्य, कलामर्घति षोडशीम् ।।१२।।

परमअर्थ शून्य अज्ञानी मास मास के तप करके भी सुआख्यात धर्म की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकता ।

Such child (the ignorant saint with out real conduct) who fasts for months together and who in the end of his fast takes very little food (may be of the size of the fore part of a blade of grass) can not attain the sixteenth digit (part of the diameter) of the moon of the dharma (Dharma ki solahvinkala). (273)

सच्चा धरम चरित्र ही, समता रूप समान ।
मोह-क्षोभ से हीन यह, सम आत्मा पहचान ।।२.२०.१३.२७४।।

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जों सो समोत्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो ।।१३।।

चारित्रं खलु धर्मो, धर्मो यः स समः इति निर्दिष्टः ।
मोहक्षोभविहीनः, परिणाम आत्मनो हि समः ।।१३।।

वास्तव में चारित्र ही धर्म है। इस धर्म को समतारूप कहा गया है। मोह व क्षोभ से रहित आत्मा का निर्मल परिणाम ही समतारूप है।

Right Conduct is really what constitutes religion; it is said that religion is equanimity. Equanimity is that condition of the soul which is free from delusion and excitement. (274)

माध्यस्थ या पथ-समता, शुद्ध भाव, वीतराग ।
धरम, चरित्र, स्वभाव कहो, सब है एक ही राग ।।२.२०.१४.२७५।।

समदा तह मज्झत्थं सुद्धो भावो य वीयरायत्तं ।
तह चारित्तं धम्मो, सहावआराहणा भणिया ।।१४।।

समता तथा माध्यस्थ्यं, शुद्धो भावश्च वीतरागत्वम् ।
तथा चारित्र धर्मः, स्वभावाराधना भणिता ।।१४।।

समता, माध्यस्थ भाव, शुद्ध भाव, वीतरागता, चारित्र, धर्म और स्व-भाव आराधना ये सब शब्द एकार्थक हैं।

Equanimity, tolerance, pure-thought, freedom from attachment and hatred, Right conduct, religion, devotion to one's own self, all of these are said to be one and same. (275)

संयम तप वीतराग है, सूत्र पदार्थ ज्ञान ।
सुख-दुख में सम भाव है, शुद्धोपयोगी जान ।।२.२०.१५.२७६।।

सुविदिद-पदस्थ-सुत्तो, संजम-तव-संजुदो विगदरागो ।
समणो सम-सुह-दुक्खो, भणिदो सुद्धोवओगो त्ति ।।१५।।

सुविदितपदार्थसूत्रः, संयमतपःसंयुतो विगतरागः ।
श्रमणः समसुखदुःखो, भणितः शुद्धोपयोग इति ।।१५।।

जिसने तत्त्वसूत्र को भलीभांति जान लिया है, संयम और तप से युक्त है, सुख-दुख में समभाव रखता है उसी श्रमण को शुद्धोपयोगी कहा जाता है।

That saint (sramana) is called shuddhyopyaogi (one with pure consciousness) - who is well versed in essential elements (padartha) and aphorisms (sutra/precepts/principles); well equipped with restraints and austerities, free from attachment (vigata-rag); and equanimous. (276)

श्रामण्य उपयोग शुद्ध, वो ही दर्शन ज्ञान।
शुद्ध का ही निर्वाण सदा, नमन सिद्धपद जान ।।२.२०.१६.२७७।।

सुद्धस्स य सामण्णं, भणियं, सुद्धस्स दंसणं णाणं।
सुद्धस्स य णिव्वाणं, सो च्चियं सिद्धो णमो तस्स ।।१६।।

शुद्धस्स च श्रामण्यं, भणितं शुद्धस्य दर्शनं ज्ञानम्।
शुद्धस्य च निर्वाणं, स एव सिद्धो नमस्तस्मै ।।१६।।

ऐसे शुद्धोपयोग को ही श्रामण्य कहा गया है। उसी का दर्शन और ज्ञान कहा गया है। उसी के निर्वाण होता है। वही सिद्धपद प्राप्त करता है। उसे मैं नमन करता हूँ।

Purity of faith and knowledge constitutes pure asceticism. Such pure soul attains liberation. He is the Siddha; to him, I pay my obeisance. (277)

अति आत्मसुख विषयरहित, अनंत अनुपम योग ।
अविनाशी सुख तब मिले, सिद्ध शुद्ध उपयोग ।।२.२०.१७.२७८।।

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धवओगप्पसिद्धाणं ।।१७।।

अतिशयमात्मसमुत्थं, विषयातीतमनुपममनन्तम् ।
अव्युच्छिन्नं च सुखं, शुद्धोपयोगप्रसिद्धानाम् ।।१७।।

शुद्धोपयोग से सिद्ध होने वाली आत्माओं को अतिशय, आत्मेत्पन्न, अतीन्द्रिय, अनुपम, अनन्त और अविनाशी सुख है।

The bliss of a liberated soul (Siddha), characterised by purity of consciousness, is born of the excellence of his soul, is beyond the reach of senses, is incomparable, inexhaustible, and indivisible. (278)

किसी द्रव्य से मोह नहीं, राग द्वेष ना भाव।
शुभ अशुभ से बँधे नहीं, सुख-दुःख एक स्वभाव ।।२.२०.१८.२७९।।

जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।
णाऽऽसवदि सुहं असुहं, समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ।।१८।।

यस्य न विद्यते रागो, द्वेषो मोहो वा सर्वद्रव्येषु ।
नाऽऽस्रवति शुभमशुभं, समसुखदुःखस्य भिक्षो ।।१८।।

जिसका समस्त द्रव्यों के प्रति राग, द्वेष और मोह नहीं है तथा जो सुख-दुख में समभाव रहता है, उस भिक्षु के शुभ-अशुभ कर्मों का फल (आस्रव) नहीं होता।

The monk who harbours on attachment, aversion or delusion in respect of anything whatsoever and who maintains equanimity of mind in pleasures and pains, does not cause an inflow of good or evil Karmas. (279)

निश्चय साध्य स्वरूप है, साधन है व्यवहार।
क्रम से धारण जो करे, जीव प्रबुद्ध विचार ।।२.२०.१९.२८०।।

णिच्छय सज्झसरूवं सराय तस्सेव साहणं चरणं ।
तम्हा दो वि य कमसो पडिज्ज(च्छ)माणं पवुज्झेह ।।१९।।

निश्चयः साध्यस्वरूपः, सरागं तस्यैव साधनं चरणम् ।
तस्मात् द्वे अपि च क्रमशः, प्रतीष्यमाणं प्रबुध्यध्वम् ।।१९।।

व्यवहारचारित्र साधन है और निश्चयचारित्र साध्य है। दोनों को क्रमपूर्वक धारण करने पर जीव प्रबोध को प्राप्त होता है

The real conduct is the end (to be achieved) and the practical conduct is the means (to achieve that end). The practical conduct and the Real conduct when followed serially, yield/give enlightenment of soul. (280)

अंतर्मन जब शुद्ध रहे, बाह्य कर्म निर्दोष ।
अंतर में जब दोष हो, करता बाहर दोष ।।२.२०.२०.२८१।।

अब्भंतर–सोधीण, बहिरसोधी वि होदि णियमेण।
अब्भंतर–दोसेण हु, कुणदि णरो बाहिरे दोसे ।।२०।।

अभ्यन्तरशुद्ध्या, बाह्यशुद्धिरपि भवतिनियमेन ।
अभ्यन्तरदोषेण हि, करोति नरः बाह्यान् दोषान् ।।२०।।

अन्तर शुद्धि होने पर बाह्य शुद्धि होती ही है। आभ्यन्तर दोष से ही जीव बाह्य दोष करता है।

Invariable, internal impurity results in external impurity; due to his internal impurities man commits external blemishes. (281)

मान व माया लोभ मद, मिटे शुद्ध हो जान ।
जीवों को उपदेश है, सर्वज्ञ देव का ज्ञान ।।२.२०.२१.२८२।।

मद-माण-माय-च लोह विवज्जिय-भावो दु भाव-सुद्धि त्ति ।
परिकहियं भव्वाणं, लोया-लोय-प्पदरिसीहिं ।।२१।।

मदमानमायालोभ-विवर्जितभावस्तु भावशुद्धिरिति ।
परिकथितं भव्यानां लोकलोकप्रदर्शिभिः ।।२१।।

जिनदेव का उपदेश है कि मद, मान, माया और लोभ से रहित भाव ही भावशुद्धि है।

Those who have seen and known this world and the other (i.e. the Omniscient Arhats) have preached to all (who are capable of getting release from the Karmas) that purity of mind can be achieved by those who free themselves from lust, conceit, delusion and greed. (282)

पाप प्रवृत्ति त्यागकर, शुभ चरित्र को पाय ।
मोहादि का त्याग नहीं, आत्मशुद्धि क्यों पाय? ।।२.२०.२२.२८३।।

चत उता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादि, ण लहदि सो अप्पणं सुद्धं ।।२२।।

त्यक्त्वा पापारंम्भं, समुत्थितो वा शुभे चरिते ।
न जहाति यदि मोहादीन् न लभते स आत्मकं शुद्धम् ।।२२।।

पाप प्रवृत्ति को त्याग कर व्यवहार चारित्र में आरुढ़ रहने पर भी यदि जीव मोह भाव से मुक्त नहीं होता है तो शुद्ध आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

He who has acquired auspicious conduct after renouncing all sinful activities, cannot obtain purity of his soul, if he has not freed himself from delusion. (283)

शुभ कर्मों से अशुभ रुके, शुद्ध से शुभम निरोध ।
शुभो-शुद्ध क्रमशः करे, निज आत्मा का बोध ।।२.२०.२३.२८४।।

जह व णिरुद्धं असुहं, सुहेण सुहमवि तहेव सुद्धेण ।
तम्हा एण कमेण य, जोई झाएउ णियआदं ।।२३।।

यथैव निरुद्धम् अशुभं, शुभेन शुभमपि तथैव शुद्धेन ।
तस्मादनेन क्रमेण च, योगी ध्यायतु निजात्मानम् ।।२३।।

शुभ चारित्र से अशुभ का निरोध किया जाता है व शुद्ध चारित्र से शुभ का निरोध किया जाता है। व्यवहार और निश्चय के पूरेवापर क्रम से योगी आत्मा का ध्यान करे।।

Just as inauspicious thoughts are obstructed by auspicious conduct, auspicious conduct by pure conduct; hence performing these (latter two types of act) one after another let a yogi meditate on his own soul. (284)

निश्चयनय चरित्र हनन, ज्ञान-दर्शन का घात ।
व्यवहारनय चरित्र हनन, ज़रूरी नहीं यह बात ।।२.२०.२४.२८५।।

निच्छयनयस्स चरणाय-विघाए णाणदंसणवहोऽवि ।
ववहारस्स उ चरणे, हयम्मि भयणा हु सेसाणं ।।२४।।

निश्चयनयस्य चरणात्म-विघाते ज्ञानदर्शनवधोऽपि ।
व्यवहारस्यतु चरणे, हते भजना खलु शेषयोः ।।२४।।

निश्चयनय के अनुसार चारित्र का घात होने पर ज्ञान-दर्शन का भी घात हो जाता है। व्यवहारनय के अनुसार चारित्र का घात होने पर ज्ञान-दर्शन का घात हो भी सकता है और नही भी।

If there is any damage from the real point of view in one's Right Conduct, then there would be damage in Right Knowledge and Right Faith, but if there is any damage to right conduct from the empirical point of view then there may or may not be any defect in Right knowledge and Right Faith. (285)

श्रद्धा मानों है नगर, तप–संवर दो द्वार ।
क्षमा, त्रिगुप्ति से बने, अजय ठोस आकार ।।२.२०.२५.२८६।।
वाणी तप की धनुष बन कर्म कवच संहार ।
मुनि ऐसा संग्राम करे, मुक्त हो तब संसार ।।२.२०.२६.२८७।।

सद्धं नगरं किच्चचा, तव–संवर–मग्गलं ।
खन्तिं निउण–पागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ।।२५।।
तव–नाराय–जुत्तेण, भेत्तूणं कम्म–कंचुयं ।
मुणी विगय–संगामो, भवाओ परिमुच्चए ।।२६।।

श्रद्धां नपगरं कृत्वा, तपःसंवरमर्गलाम् ।
क्षान्तिं निपुणप्रकारं, त्रिगुप्तं दुष्प्रधर्षकम् ।।२५।।
तपोनाराचयुक्तेन, भित्वा कर्मकञ्चुकम् ।
मुनिर्विगततसंग्रामः, भवात् परिमुच्यते ।।२६।।

श्रद्धा को नगर समझें, तप और संवर को द्वार। क्षमा को खाई समझें व त्रिगुप्ति से सुरक्षित कथा अजेय सुदृढ़ प्राकार बनाकर तपरूप वाणी से युक्त धनुष से कर्म–कवच को भेद कर संग्राम का विजेता मुनि संसार से मुक्त होता है।

After building a citadel with his Right Faith, gatebars with his austerities and self-control, strong ramparts with his forgiveness, invincible guards with his three controls (of mind, speech and action), a monk arms himself with a bow of his penance, pierces through the garb of his Karma, wins the battle and becomes liberated from this mundane worldly life. (286 & 287)

जिनवर का आदेश है, कर इन्द्रियां अधीन ।
गुरु से पाकर ज्ञान, फिर हो आत्मा में लीन ।।२.२१.१.२८८।।

आहारसण–णिद्दा–जयं, च काऊण जिणवर–मएण ।
झायव्वो णियअप्पा, णाऊण गुरु–पसाएण ।।१।।

आहारासन–निद्राजयं, च कृत्वा जिनवरमतेन ।
ध्यातव्य: निजात्मा, ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ।।१।।

जिनदेव के अनुसार आहार, आसन व निद्रा पर विजय प्राप्त कर, गुरु से ज्ञान प्राप्त कर, निज आत्मा का ध्यान करना चाहिये।

One should meditate on one's soul after acquiring control over his diet, sitting and sleep in accordance with the precepts of Jina, and Knowledge gained by the grace of the preceptor. (288)

सर्व प्रकाशित ज्ञान से, अज्ञान मोह संहार।
क्षय हो राग–द्वेष का, खुले मोक्ष का द्वार ।।२.२१.२.२८९।।

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अण्णा–णमोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगन्तसोक्खं–समुवेइ मोक्खं ।।२।।

ज्ञानस्य सर्वस्य प्रकाशनया, अज्ञानमोहस्य विवर्जनया ।
रागस्य द्वेषस्य च संक्षयेण, एकान्तसौख्यं समुपैति मोक्षम् ।।२।।

सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशन से, अज्ञान और मोह के परिहार से तथा राग द्वेष के क्षय से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है।

The (imperfect) soul attains salvation (Eikant-sukha/pure, unadulterated joy) by virtue of the manifestation of perfect knowledge by the clearance/removal (parihar) of ignorance (Ajnan) and Delusion (Moh) and by the complete destruction annihilation (Kshaya) of attachment and aversion. (289)

मारग है गुरु की सेवा, अज्ञानी से असंग ।
स्वाध्याय सूत्रसुचिंतन, धीरज और निस्संग ।।२.२१.३.२९०।।

तस्सेस मग्गो गुरु-विद्ध-सेवा, विवजणा बालजणस्स दूरा ।
सज्झाय-एगन्तनिवेसणा च, सुत्तत्थ संचिंतणया धिई य ।।३।।

तस्यैष मार्गो गुरुवृद्धसेवा, विवर्जना बालजनस्य दूरात् ।
स्वाध्यायैकान्तनिवेशना च, सूत्रार्थसंचिन्तनता धृतिश्च ।।३।।

गुरु तथा वृद्ध की सेवा, अज्ञानी से दूर, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और अर्थ का सम्यक् चिंतन करना तथा धैर्य रखना, ये दुखों से मुक्ति के उपाय है ।।

The ways and means of the attainment of freedom from miseries (Duhkha) are service of elderly and respectable persons, keeping away from the company of ignorant people, understanding scriptures; dwelling in solitary places; giving proper thought and attention to aphorisms and their interpretations. (290)

सात्विक कम भोजन करे, करे समाधी ध्यान ।
तत्व अर्थ साथी निपुण, हो एकांत विधान ।।२.२१.४.२९१।।

आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणत्थ बुद्धिं ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्गं, समाहिकामे समणे तवस्सी ।।४।।

आहारमिच्छेद् मितमेषणीयं, सखायमिच्छेद् निपुणार्थबुद्धिम् ।
निकेतमिच्छेद् विवेकयोग्यं, समाधिकामः श्रमणस्तपस्वी ।।४।।

समाधि का अभिलाषी तपस्वी सीमित आहार, तत्त्वार्थ में निपुण साथी का साथ और एकान्त में वास करे।

A monk observing the austerities and desirous of equanimity of his mind should partake of limited and unobjectionable (pure) food, should have an intelligent companion well-versed in the meaning of scriptures and should select a secluded place for his shelter and for meditation. (291)

जो नर अनुशासित रहे, मितहित अल्पाहार ।
वैद्य चिकित्सा लगे नहीं, अंतस शुद्ध विचार ।।२.२१.५.२९२।।

हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा ।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणंते तिगिच्छगा ।।५।।

हिताहारा मिताहारा, अल्पाहाराः च ये नराः ।
न तान् वैद्याः चिकित्सन्ति आत्मानं ते चिकित्सकाः ।।५।।

जो मनुष्य मित व हितकारी आहार करते हैं उन्हें वैद्य की आवश्यकता नही पड़ती है । वे स्वयं चिकित्सक होते है और अन्तर्शुद्धि में लगे रहते हैं ।

Persons who take healthy, controlled and less diet do not need physicians to treat them; they are physicians of themselves. (292)

रस सेवन ज्यादा नहीं, रस करते उन्मत्त ।
काम पीड़ित करे ज्यूँ, पक्षी करे दरख्त ।।२.२१.६.२९३।।

रसा पगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणां ।
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ।।६।।

रसा प्रकामं न निषेवितव्याः, प्रायो रसा दीप्तिकरा नराणाम् ।
दीप्तं च कामाः समभिद्रवन्ति, द्रुमं यथा स्वादुफलमिव पक्षिणः ।।६।।

रसों का अधिक सेवन न करे । रस प्रायः उन्मादवर्धक होते है । विषय में लीन व्यक्ति को काम वैसे ही सताता है जैसे फलों से लदे वृक्ष को पक्षी ।

One should not take delicious dishes in excessive quantity; for the delicious dishes normally stimulate lust in a person. Persons whose lusts are stimulated are mentally disturbed like trees laden with sweet fruits frequently tortured with birds. (293)

शय्यासन या भोज रहे, इंद्रिय दमन सम्भोग ।
राग द्वेष ना चित्त डसे, दवा हरे ज्यूँ रोग ।।२.२१.७.२९४।।

विवित्तसेज्जासणजन्तियाणं, ओसमासणाणं दमिइन्दियाणं ।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइ ओ वाहिरिवोसहेहिं ।।७।।

विविक्तशय्याऽसनयन्त्रितानाम्, अवमोऽशनानां दमितेन्द्रियाणाम् ।
न रागशत्रुर्धर्षयति चित्तं, पराजितो व्याधिरिवौषधैः ।।७।।

जो ब्रह्मचारी है, अल्प आहारी है, इन्द्रियों का दमन किया है उसके चित्त को राग–द्वेष रूपी विकार नही सताते जैसे औषधि से पराजित रोग पुनः नही सताता ।

A disease cured by medicine does not reappear; like wise attachment will not disturb the mind of monk who takes a bed or seat in a lonely place, takes little food and has controlled his senses. (294)

उम्र जब तक हो नहीं, बढ़ा नहीं है रोग ।
तन है सक्षम हर तरह, करे धर्म से योग ।।२.२१.८.२९५।।

जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढई ।
जविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ।।८।।

जरा यावत् न पीडयति, व्याधिः यावत् न वर्द्धते ।
यावदिन्द्रियाणि न हीयन्ते, तावत् धर्मं समाचरेत् ।।८।।

जब तक बुढ़ापा और रोग नही सता रहे, धर्माचरण कर लेना चाहिये। अशक्त और असमर्थ इन्द्रियों से धर्माचरण नही हो सकेगा ।

One should practice religion well before arrival of old age , because the religious duties can not be performed with weak and infirm sense-organs (295)

प्रकरण २२ - द्विविध धर्म सूत्र

Chapter 22- Precepts On the Two Paths of Religion

देव जिनेन्द्र दो पथ कहे, जनम चक्र संहार ।
उत्तम दोनों पथ दिखे, साधु-श्रावक पार ।।२.२२.१.२९६।।

दो चेव जिणवरेहिं, जाइजरामरणविप्पमुक्केहिं ।
लोगम्मि पहा भणिया, सुस्समण सुसावगो वा चि ।।१।।

द्वौ चैव जिनवरेन्द्रैः, जातिजरामरणविप्रमुक्तैः ।
लोके पथौ भणितौ, सुश्रमणः सुश्रावकः चापि ।।१।।

जन्म-जरा-मरण से मुक्त जिनेन्द्रदेव ने इस लोक में दो ही मार्ग बताये हैं- एक है उत्तम श्रमणों का और दूसरा उत्तम श्रावकों का।

Lord Jina, who has conquered birth, old age and death, has spoken of two pathway: one for the virtuous householders and other for the virtuous monks. (296)

श्रावक पूजन दान-धरम, श्रावक ना बन पाय ।
ध्यान अध्ययन धर्म प्रमुख, श्रमण यही उपाय ।।२.२२.२.२९७।।

दाणं पूजा मुक्खं, सावय-धम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाण-ज्झयणं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ।।२।।

दानं पूजा मुख्यः, श्रावकधर्मे न श्रावकाः तेन विना ।
ध्यानाध्ययनं मुख्यो, यतिधर्मे तं विना तथा सोऽपि ।।२।।

श्रावक धर्म में दान और पूजा मुख्य है । और श्रमण धर्म में ध्यान व अध्ययन मुख्य है ।

Charity and worship are the primary duties in religion of a householder; without them, one cannot be sravaka (householder). Meditation and study of scriptures are the primary duties of a virtuous monk; there can be no monk without them. (297)

भिक्षु श्रेष्ठ श्रावक से, संयम का आलाप ।
पर कुछ श्रावक है उत्तम, संयम का परताप ।।२.२२.३.२९८।।

सन्ति गेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा ।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ।।३।।

सन्त्येकेभ्यो भिक्षुभ्यः, अगारस्थाः संयमोत्तराः ।
अगारस्थेभ्यश्च सर्वेभ्यः, साधवः संयमोत्तराः ।।३।।

शुद्ध आचारी साधु श्रावक से श्रेष्ठ होते है पर शिथिलाचारी साधु से संयमी श्रावक श्रेष्ठ होते है ।।

In some case householders are superior to certain monks in respect of conduct. But as a whole monks are superior in conduct to the householder. (298)

मुण्डित साधु न बन सकूँ, कठिन धर्म अनगार ।
उत्तम द्वादशविध करूँ, श्रावक धर्म स्वीकार ।।२.२२.४.२९९।।

नो खलु अहं तहा, संजाएमि मुंडे जाव पव्वइत्तए ।
अहं णं देवाणुप्पियाणं, अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइय ।
दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि ।।४।।

नो खल्वहं तथा संशक्नोमि मुण्डो यावत् प्रव्रजितुम् ।
अहं खलु देवानुप्रियाणाम् अन्तिके पञ्चानुव्रतिकम् सप्तशिक्षा–
व्रतिकं द्वादशविधम् गृहिधर्म प्रतिपत्स्ये ।।४।।

जो व्यक्ति मुण्डित होकर अनगारधर्म स्वीकार करने में असमर्थ होता है वह जिनदेव अनुसार पाँच अणुव्रत व सात शिक्षाव्रत के साथ श्रावक धर्म स्वीकार कर ले ।

So long as I am not able to take leave of home and become a monk with a shaven head, I accept, in the presence of monks, beloved of gods, to observe the twelve kinds of vows of a householder, viz. five small vows (anuvratas), and seven disciplinary (sikshavratas) vows as prescribed for a layman. (299)

अणुव्रत पालन पाँच कर, शिक्षाव्रत सह सात ।
कुछ या सब कुछ मान ले, श्रावक धर्म कहात ।।२.२२.५.३००।।

पंच य अणुव्वदाइं, सत्तयं-सिक्खाउ-देस-जदि-धम्मो ।
सव्वेण व देसेण व तेण जुदो होदि देसजदी ।।५।।

पञ्च च अणुव्रतानि, सप्त तु शिक्षा देशयतिधर्मः ।
सर्वेण वा देशेन वा, तेन युतो भवति देशयतिः ।।५।।

श्रावक आचार में पाँच व्रत व सात शिक्षाव्रत होते हैं। जो व्यक्ति इन सबका या इनमें से कुछ का पालन करता है वो श्रावक कहलाता है।

The religion of a house-holder consists in the observance of the five small vows and the seven disciplinary vows. A house-holder who observes all or some of the vows becomes a partial monk (i. e., a pious house-holder). (300)

प्रकरण २३ - श्रावकधर्म सूत्र

Chapter 23 - Precepts On Householders's Religion

सम्यक दृष्टि से प्रति दिन, संगत साधु काम ।
श्रवण करे उपदेश का, श्रावक उसका नाम ।।२.२३.१.३०१।।

संपत्त-दंसणाई, पइदियहं जइजणा सुणेई य ।
सामायारिं परमं जो खलु तं सावगं बिंति ।।१।।

संप्राप्तदर्शनादिः, प्रतिदिवसं यतिजनाच्छृणोति च ।
सामाचारीं परमां यः, खलु तं श्रावकं ब्रुवते ।।१।।

जो सम्यकदृष्टि व्यक्ति प्रतिदिन मुनिजनों से आचार-विषयक उपदेश सुनता है उसे श्रावक कहते हैं।

He is called a Sravaka (householder) who, being endowed with right faith, listens every day to the preachings of the monks about right conduct. (301)

पाँच उदुम्बर सात व्यसन करता है जो त्याग ।
सम्यक-बुद्धि उसकी शुद्ध 'दर्शन-श्रावक' जाग ।।२.२३.२.३०२।।

पंचुंबर-सहियाइं, सत्त वि विसणाइं जो विवज्जेइ ।
सम्मत्त-विसुद्ध-मई, सो दंसण-सावओ भणिओ ।।२।।

पञ्चोदुम्बरसहितानि सप्त अपि व्यसनानि यः विवर्जयति ।
सम्यक्त्वविशुद्धमतिः स दर्शनश्रावकः भणितः ।।२।।

पाँच उदुम्बर फल (उमर, कठूमर, गूलर, पीपल तथा बड़) और सात व्यसनों का त्याग करने वाला व्यक्ति ''दार्शनिक श्रावक'' कहा जाता है जिसकी बुद्धि सम्यक् दर्शन से विशुद्ध हो गई है। धर्म में दान और पूजा मुख्य है। और श्रमण धर्म में ध्यान व अध्ययन मुख्य है।

A pious householder is one who has given up (eating) five udumbarfruits (like banyan, Pipala, fig (Anjeer), kathumara and pakar), is free from seven vices and is called Darsana Sravaka, a man whose intellect is purified by right faith.(302)

परस्त्री, जुआ, मदिरालय, कटुवचन या शिकार ।
कड़ा दण्ड परधनहरण, व्यसन सात विचार ।।२.२३.३.३०३।।

इत्थी जूयं मज्जं, मिगव्व वयणे तहा फरुसया य ।
दंडफरुसत्तमत्थस्स दूसणं सत्त वसणाइं ।।३।।

स्त्री द्यूतं मद्यं, मृगया वचे तथा परुषता च।
दण्डपरुषत्वम् अर्थस्य दूषणं सप्त व्यसनानि ।।३।।

परस्त्री सहवास, जुआ, मदिरापान, शिकार करना, कटुवचन बोलना, कड़ा दण्ड देना और अर्थ दूषण (चोरी) करना ये सात व्यसन है।।

The seven vices are: (1) sexual intercourse with other than one's own wife, (2) gambling, (3) drinking liquor (4) hunting, (5) harshness in speech, (6) harsh in punishment and (7) misappropriation of other's property. (303)

दर्प मांसाहार से, चाहे दर्प शराब ।
जुए की जो लत लगती, मानव बने ख़राब ।।२.२३.४.३०४।।

मांसा-सणेण वड्ढइ, दप्पो दप्पेण मज्ज-महिलसइ ।
जूयं पि रमइ तो तं, पि वण्णिए पाउण्ह दोसे ।।४।।

मांसाशनेन वर्धते दर्पः दर्पेण मद्यम् अभिलषति ।
द्यूतम अपि रमते ततः तद् अपि वर्णितात् प्राप्नोति दोषान् ।।४।।

मांसाहार से अहंकार बढ़ता है, अहंकार से मद्यपान की अभिलाषा जागती है। और तब वह जुआ भी खेलती है इस प्रकार मनुष्य सब दोषों का घर बन जाता है।

Meat-eating increases pride, pride creates a desire for intoxicating drinks and pleasure in gambling; and thus springs up all aforesaid vices. (304)

कहता लौकिक शास्त्र यही, पांडित्य का नाश ।
पतित मांस सेवन करे, खाएं ना हम काश ।।२.२३.५.३०५।।

लोय-सत्थम्मि वि, वण्णियं जहा गयण-गामिणो विप्पा ।
भुवि मंसा-सणेण पडिया, तमहा ण पउंजए मंसं ।।५।।

लौकिकशास्त्रे अपि वर्णितम् यथा गगनगामिनः विप्राः ।
भुवि मांसाशनेन पतिताः तस्माद् न प्रयोजयेद् मांसम् ।।५।।

लौकिक शास्त्र में भी यह उल्लेख मिलता है कि माँसाहारी पंडित जो कि आकाश में विचरण करता था वो गिर कर पतित हो गया । अतएव माँस का सेवन नही करना चाहिये ।

Scriptures of other religions have described that sages moving in air have fallen to the ground on eating meat; therefore meat-eating should be avoided. (305)

मद्यपान जो जन करे, करता खोटे काम ।
लोक और परलोक में, सकल दुखों का धाम ।।२.२३.६.३०६।।

मज्जेण णरो अवसो, कुणेइ कम्माणि णिंद-णिज्जाइं ।
इहलोए-परलोए, अणुहवइ अणंतयं दुक्खं ।।६।।

मद्येन नरः अवशः करोति कर्माणि निन्दनीयानि ।
इहलोके परलोके अनुभवति अनन्तकं दुःखम् ।।६।।

मदिरापान से मदहोश होकर मनुष्य निन्दनीय कर्म करता है और फलस्वरूप इस लोक तथा परलोक में अनन्त दुखों का अनुभव करता है ।

A person loses control over himself by drinking intoxicating liquors and commits many censurable deeds. He experiences endless miseries both in this world and in the next. (306)

जग त्याग मन भाव रहे, हो मज़बूत विचार ।
दृढ़ जिनभक्ति मन बसे, हो भय बिनु संसार ।।२.२३.७.३०७।।

संवेग-जणिय-करणा, णिस्सल्ला मंदरुव्व णिक्कंपा ।
जस्स दढा जिणभत्ती तस्स भयं णत्थि संसारे ।।७।।

संवेगजनितकरणा, निःशल्या मन्दर इव निष्कम्पा ।
यस्य दृढा जिनभक्तिः, तस्य भयं नास्ति संसारे ।।७।।

जिसके मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने वाली मेरुपर्वत की तरह दृढ़ जिनभक्ति है उसे संसार में किसी तरह का भय नही ।

A person who has firm devotion towards Jina like the steady mountain Meru, inclination for renunciation and is free from defects of character (salya) will have no fear in this world. (307)

विनयशील जब व्यक्ति हो, शत्रु मित्र बन जाय ।
अणुव्रत श्रावक विनय रहे, मन वचन और काय ।।२.२३.८.३०८।।

सत्तू वि मित्तभावं, जम्हा उवयाइ विणय-सोलस्स ।
विणओ तिविहेण तओ, कायव्वो देस-विरएण ।।८।।

शत्रुः अपि मित्रभावम् यस्माद् उपयाति विनशीलस्य ।
विनयः त्रिविधेन ततः कर्तव्यः देशविरतेन ।।८।।

विनयशील व्यक्ति का शत्रु भी मित्र बन जाता है। इसलिये अणुव्रती श्रावक को मन-वचन-काय से सम्यक्तवादी गुणों की तथा गुणीजनों की विनय करना चाहिये ।

Since even an enemy approaches a man of humility with friendliness, a house-holder must cultivate humility of three kinds: (in thought, speech and action). (308)

हिंसा चोरी झूठ हो, या पर-स्त्री से काम ।
विरक्त परिग्रह से रहे, अणुव्रत श्रावक नाम ।।२.२३.९.३०९।।

पाणिवहमुसावाए, अदत्तपरदारनियमणेहिं च ।
अपरिमिच्छाओऽवि, अणुव्वयाइं विरमणाइं ।।९।।

प्राणिवधमृषावादा-दत्तपरदारनियमनैश्च ।
अपरिमितेच्छातोऽपि च, अणुव्रतानि विरमणानि ।।९।।

हिंसा, असत्य वचन, चोरी, परस्त्री गमन तथा असीमित कामना (परिग्रह) इन पाँचो पापों से विरति अणुव्रत है।

Injury to living beings (himsa), speaking falsehood, taking away a thing which is not given (theft), sexual enjoyment with other than one's own wife and limitless desire for possession (parigraha)-abstinence from these acts are called (five) small vows. (309)

आश्रित चाकरपशु का, बंधन वद्य, अंगभंग ।।
अतिभार अन्न निषेध ये, कलुषित मन का संग ।।२.२३.१०.३१०।।

बंध-वह-च्छवि-च्छेए, अइमारे भत्त-पाण-वुच्छेए ।
कोहाइ-दूसिय-मणो, गो-मणुयाईण नो कुज्जा ।।१०।।

बन्धवधछविच्छेदान् अतिभारान् भक्तपानव्युच्छेदान् ।
क्रोधादिदूषितमनाः, गोमनुष्यादीनां न कुर्यात् ।।१०।।

हिंसा से विरक्त श्रावक को क्रोध आदि कषाय से मन को दूषित करके पशु व मनुष्य आदि का बंधन, ताड़न, पीड़न, छेदन, अधिक भार लादना, खान-पान आदि रोकने का कर्म नही करना चाहिये क्योंकि यह हिंसा ही है। इनका त्याग स्थूल हिंसा विरति है।

One should not tie, injure, mutilate, load heavy burdens and deprive from food and drink any animal or human being with a polluted mind by anger or other passions are the transgression (aticara) of the vow of Ahimsa. (310)

दूजा व्रत असत्यविरति, पंचविध इसकी राह ।
(न्यासहर) कन्या गौभू, विषयक झूठ गवाह ।।२.२३.११.३११।।

थूल-मुसावायस्स उ विरई, दुच्चं स पंचहा होइ ।
कन्न्-गो-भु-आलिय-नासहरण, कूडसक्खिज्जे ।।११।।

स्थूलमृषावादस्य तु, विरतिः द्वितीयं स पंचधा भवति ।
कन्यागोभूअलीक-न्यासहरण-कूटसाक्ष्याणि ।।११।।

असत्य से विरक्ति दूसरा अणुव्रत है। इसके भी पाँच भेद है। कन्या, पशु तथा भूमि के लिये झूठ बोलना, किसी की धरोहर को दबा लेना और झूठी गवाही देना। इनका त्याग स्थूल असत्य विरति है।

Refraining from major type of falsehood is the second vow; this major type of falsehood is of five kinds; speaking untruth about unmarried girls, animals and land, repudiating debts or pledges and giving false evidence. (311)

बात बिना सोचे नहीं, नहीं रहस्य बताय ।
मिथ्या प्रवचन करे नहीं, छद्म न लेख लिखाय ।।२.२३.१२.३१२।।

सहसा अब्भक्खाणं रहसा य सदारमंतभेय च ।
मोसोवएसयं कूडलेहकरणं च वज्जिज्जा ।।१२।।

सहसाभ्याख्यानं, रहसा च स्वदारमन्त्रभेदं च ।
मृषोपदेशं कूटलेखकरणं च वर्जयेत् ।।१२।।

सत्य-अणुव्रती बिना सोचे समझे न कोई बात करता है न किसी का राज उगलता है। न अपनी पत्नी की बात मित्रों को बताता है और नही मिथ्या उपदेश देता है और नही जाली हस्ताक्षर करता है।

making a false charge rashly (or without consideration), divulging any one's secret, disclosing the secrets confided to by one's own wife, giving false advice and preparation of a false document or writing these should be avoided. (312)

साथ न चोरों, का करे, गैर राज-आचार ।
कूट तोल, खोटा नहीं, जाली ना व्यवहार ।।२.२३.१३.३१३।।

वज्जिज्जा तेनाहड-तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च ।
कूडतुल-कूडमाणं, तप्पडिरूवं च ववहारं ।।१३।।

वर्जयेत् स्तेनाहृतं, तस्करयोगं विरुद्धराज्यं च।
कूट तुलाकूट माने तन्प्रतिरूपं च व्यवहारम् ।।१३।।

अचौर्य अणुव्रती चोरी का माल न ख़रीदे और न ही प्रेरक बने। टैक्स आदि की चोरी न करे और मिलावट न करे। जाली करेंसी न चलाये।

One should desist from: buying stolen property, inciting another to commit theft, avoiding the rules of government, use of false weights and measures adulteration and preparation to counterfeit coins and notes. (313)

पर-नारी से दूर रहे, अनंगक्रीडा त्याग ।
पर विवाह में रुचि नहीं, नहीं काम से राग ।।२.२३.१४.३१४।।

इत्तरिय-परिग्गहिया-परिगहियागमण णंगकीडं च ।
परविवाहक्करणं कामे, तिव्वाभिलासं च ।।१४।।

इत्वरपरिगृहीता-ऽपरिगृहीतागमना-नङ्गक्रीडा च ।
पर (द्वितीय) विवहकरणं, कामे तीव्राभिलाषःच ।।१४।।

ब्रह्मचर्य अणुव्रती को परायी स्त्रियों से सदा दूर रहना चाहिये। अनंग क्रीड़ा नही करनी चाहिये। अपनी संतान के अतिरिक्त दूसरों के विवाह कराने में रुचि नही लेनी चाहिये। काम की तीव्र लालसा का त्याग करना चाहये।

A sravak-who has taken the partial vow of chastity should remain satisfied with his wife and keep himself completely away (aloof/indifferent/unconcerned) from other unmarried and married women. He should not indulge in unnatural sexual intercourse (Anaiya krida). (Further) he should not take interest in the marriages of persons, other than his own offsprings. He must renounce intense lust for sex. (314)

परिग्रह की सीमा करे, तृष्णा का यह बीज ।
कारण भारी दोष का, देत नरक गति चीज़ ।।२.२३.१५.३१५।।
धातु खेत, घर, धन रहे, पशु वाहन भण्डार ।
सम्यक श्रावक मन निर्मल, हद बाँधे व्यवहार ।।२.२३.१६.३१६।।

विरयापरिग्गहाओ, अपरिमिआओअ गंततण्हाओ ।
बहुदोससंकुलाओ, नरयगइगमणपंथाओ ।।१५।।
खित्ताइ-हिरन्नइ-धणाइ-दुपयाइ-कुवियगस्स तहा ।
सम्मं विसुद्ध-चित्तो न परमाणाइक्कामं कुज्जा ।।१६।।

विरताः परिग्रहात्-अपरिमिताद्-अनन्ततृष्णात्।
बहुदोषसंकुलात्, नरकगतिगमनपथात् ।।१५।।
क्षेत्रादेः हिरण्यादेः धनादेः द्विपदादेः कुप्यकस्य तथा ।
सम्यग्विशुद्धचित्तो, न प्रमाणातिक्रमं कुर्यात् ।।१६।।

असीमित परिग्रह अनन्त तृष्णा का कारण है । नरकगति का मार्ग है । अतः परिग्रह-परिमाणाणुव्रती श्रावक को क्षेत्र, मकान, सोना-चाँदी, धन-धान्य, द्विपद-चतुष्पद आदि का एक सीमा से ज़्यादा परिग्रह नही करना चाहये।

Persons should refrain from accumulation of unlimited property due to unquenchable thirst (i.e. greed) as it becomes a pathway to hell and results in numerous faults. A righteous and pure-minded person should not exceed the self-imposed limit in the acquisition of lands, gold, wealth, servants, cattle, vessels and pieces of furniture. (315 & 316)

सदा भाव संतोष रहे, सीमा में सामान ।
पुनःग्रहण का भाव नहीं, अपरिग्रह का भान ।।२.२३.१७.३१७।।

भाविज्ज य संतोसं, गहिय-मियाणिं अजाणमाणेणं ।
थोवं पुणो न एवं, गिहल्लिस्सामो त्ति (न) चिंतज्जा ।।१७।।

भावयेच्च सन्तोषं, गृहीतमिदानीमजानानेन ।
स्तोकंपुनः न एवं, ग्रहीष्याम इति चिन्तयेत् ।।१७।।

उसे संतोष रखना चाहिये । उसे ऐसा विचार नहीं करना चाहिये कि अभी तो सीमा में परिग्रह करता हूँ बाद में अधिक ग्रहण कर लूँगा।

He should be contented. He should not think "I have fixed certain limits this time unknowingly; in future, I'll again accept that in case of need." (317)

दिशा गमन सीमित रहे, व्यर्थ-दंड का त्याग ।
सीमित गमन विदेश भी, त्रय गुणव्रत हो राग ।।२.२३.१८.३१८।।

जं च दिसावेरमणं, अणत्थदंडेहिं जं च वेरमणं ।
देसावगासियंपि य, गुणव्वयाइं भवे ताइं ।।१८।।

यच्च दिग्विरमणं, अनर्थदण्डात् यच्च विरमणम् ।
देशावकाशिकमपि च, गुणव्रतानि भवेयुस्तानि ।।१८।।

श्रावक के सात शील व्रतों में ये तीन गुणव्रत होते हैं। दिशाविरति, अनर्थदण्डविरति तथा देशावकाशिक ।

The three supplementary vows (Gunavritas) that are included in the seven disciplinary vows (Shilavritas) are :- 1. Limitations regarding movements in various directions. 2. Limitations regarding unnecessary performances; 3. Limitations regarding movements in different territories. (318)

दिशाओं का परिसीमन, पहली सीमा जान।
गुणव्रत ये है सर्व प्रथम, श्रावक धर्म निशान ।।२.२३.१९.३१९।।

उड्ढमहे तिरियं पि य दिससासु परिमाण-करण-मिह पढमं ।
भणियं गुणव्वयं खलु, सावगणम्मम्मि वीरेण ।।१९।।

ऊर्ध्वमधस्तिर्यगपि च, दिक्षु परिमाणकरणमिह प्रथमम् ।
भणितं गुणव्रतं खलु, श्रावकधर्मे वीरेण ।।१९।।

व्यापार आदि के क्षेत्र की सीमा करते हुए ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् दिशाओं में गमनागमन की सीमा बाँधना प्रथम दिग्व्रत नामक गुणव्रत है।

Lord Mahavira has said that the first Gunavrata in the religion of a householder is digvrata, accoring to which one should limit his activities (for the purpose of business and enjoyment of the senses, etc.) to certain regional boundaries in the upward, lower and oblique direction. (319)

कारण जो व्रत भंग बने, देश नहीं प्रस्थान ।
देश अवकाश व्रत यही, दूजा गुणव्रत जान ।।२.२३.२०.३२०।।

वय-भंग-कारणं होइ, जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमण-णियत्ती, तं जाण गुणव्वंय विदियं ।।२०।।

व्रतभङ्गकारणं भवति, यस्मिन् देशे तत्र नियमेन।
क्रियते गमननिवृत्तिः, तद् जानीहि गुणव्रतं द्वितीयम् ।।२०।।

जिस देश में जाने से किसी भी व्रत का भंग होता हो या उसमे दोष लगता हो, उस देश में जाने की नियमपूर्वक निवृत्ति देशावकाशिक नामक दूसरा गुणव्रत है।

Know that the second Gunavrata (desavakasika gunavrata) is not to visit any particular geographical region where there is possibility of violation of an accepted vow (i. e. to cross the fixed regional boundaries for the purpose of sensuous enjoyment). (320)

कष्ट अकारण दे नहीं, अनर्थ दण्ड है चार।
सोच बुरी प्रमाद चर्या, शस्त्र ये पाप प्रचार ।।२.२३.२१.३२१।।

विरई अणत्थदंडे, तच्चं स चउव्विहो अवज्झाणो।
पमायायरिय हिंसप्पयाण, पावोवएसे य ।।२१।।

विरतिरनर्थदण्डे, तृतीयं, स चतुर्विधः अपध्यानम् ।
प्रमादाचरितम् हिंसाप्रदानम् पापोपदेशश्च ।।२१।।

बिना किसी उद्देश्य से कार्य करना व किसी को सताना अनर्थ दण्ड कहलाता है। इसके चार भेद है। अपध्यान, प्रमादपूर्ण चर्या, हिंसा के उपकरण देना और पाप का उपदेश। इन चारों का त्याग अनर्थदण्डविरति नामक तीसरा गुणव्रत है।

The third gunavrata consists in refraining from a futile violent act which might be one of the fourtypes, viz. (1) entertaining evil thought, (2) negligent behaviour, (3) lending to someone an instrument of violence and (4) advising someone to commit a sinful act. (321)

अर्थ कर्म हो बंधन कम, कर्म निरर्थक पाप ।
काल आदि से लक्ष्य मिले, बिना प्रयोजन ताप ।।२.२३.२२.३२२।।

अट्ठेण तं न बंधइ, जमणट्ठेणं तु थेव-बुहभावा।
अट्ठे कालाईया नियागमा न उ अणट्ठाए ।।२२।।

अर्थेन तत्नबध्वाति, यदनर्थेन स्तोकबहुभावात्।
अर्थे कालादिकाः, नियामकाः न त्वनर्थके ।।२२।।

प्रयोजनवश कार्य में अल्प कर्म बंध होता है और बिना प्रयोजन कार्य में अधिक कर्म बंधन होता है।

The association of karmas (karmi particles) to soul, in case of purposeful activities, is (Comparatively) less than that in case of purposeless activity. (322)

अशिष्टवचन कुचेष्टा, शस्त्रग्रह ना राज्य ।
भोगादि सीमन में अति,यहाँ सर्वथा त्याज्य ।।२.२३.२३.३२३।।

कंदप्पं कुक्कुइयं मोहरियं संजुयाहि गरणं च।
उवभोग-परीभोगा-इरेयगयं चित्थ वज्जइ ।।२३।।

कान्दर्प्यम् कौत्कुच्यं, मौखर्यं संयुक्ताधिकरणं च ।
उपभोगपरिभोगा-तिरेकगतं चात्र वर्जयेत्।।२३।।

अनर्थदण्डविरत श्रावक को अशिष्ट वचन, शारीरिक कुचेष्टा, व्यर्थ बकवास, हिंसा के अधिकरणों का संयोजन तथा उपभोग की मर्यादा का अतिरेक नही करना चाहिये ।

A Sravak, who has taken the partial vow of Anartha-dand-virati, should not violated the limits of enjoyment and re-enjoyment of consumable and nonconsumable things. He should not collect and make the instruments of violence available. Such a sravak should also neither cut joke another (kandarp); nor gesticulate and do mischievous; nor gossip (monkharya) or be garrulous. (323)

भोग-सीमा,सामायिक अतिथि सेवा विचार ।
प्रबोध का उपवास कर, शिक्षाव्रत ये चार ।।२.२३.२४.३२४।।

भोगणं परिसंखा, सामाइय-मतिहि संविभागो य ।
पेसहविहि य सव्वो चदुरो सिक्खाउ वुत्ताओ ।।२४।।

भोगानां परिसंख्या, सामायिकम् अतिथिसंविभागश्च ।
पौषधविधिश्च सर्वः, चतस्रः शिक्षा उक्ताः ।।२४।।

चार शिक्षाव्रत इस प्रकार है। भोगों का परिमाण, सामायिक, अतिथि संविभाग और प्रोषधोपवास ।

Setting limit to the consumable and unconsumable objects of sensuous enjoyment, practising the mental equanimity (Samayika), offering food etc. to the monks, guests and other needy persons and performing fast along with the religious set called pausadha, all these are known as four disciplinary vows. (324)

माँस उदुम्बरू वनस्पति, परिमाण आहार ।
हिंसा से अर्जन नहीं, परिमाण व्यापार ।।२.२३.२५.३२५।।

वज्जणमणंगुंबरि, अच्चंगाणं च भोगओ माणं।
कम्मयओ खरकम्मा-इयाण अवरं इमं भणियं ।।२५।।

वर्जनमनन्तकमुदम्बरि-अत्यङ्गानां च भोगतो मानम्।
कर्मकत: खरकर्मादिानां अपरम् इदं भणितम् ।।२५।।

भोगोपभोग परिमाण व्रत दो प्रकार का है। भोजनरूप और व्यापाररूप। वनस्पति, फल, मद्य, माँस आदि का त्याग भोजनरूप परिमाण व्रत है और आजीविका में हिंसा का त्याग व्यापाररूप परिमाण व्रत है।

The first disciplinary vow (i. e. bhogapabhoga viramana) is of two types, viz., that in respect of enjoyment and that in respect of occupation. The former consists in refrainment from eating the infinite souled vegetables (i.e. bulbous roots), fruit containing microscopic organism which are called udumbaras and flesh etc., the second is refrainment from such trades and industries which involves violence and other sinful acts. (325)

पापों से रक्षा हेतु, सामायिक है प्रशस्त ।
आत्महित हेतु यही सुधी गृही को रास्त ।।२.२३.२६.३२६।।

सावज्जजोगं परिरक्खणट्ठा, सामाइयं केवलियं पसत्थं।
गिहत्थ-धम्मा परमं ति नच्चा, कुज्जा बुहो आयहियं परत्था ।।२६।।

सावद्ययोगपरिरक्षणार्थं, सामायिकं केवलिकं प्रशस्तम् ।
गृहस्थधर्मात् परममिति ज्ञात्वा, कुर्याद्बुध आत्महितं परत्र ।।२६।।

हिंसा आरम्भ से बचने के लिये सामायिक व्रत उत्तम है। विद्वान श्रावक को आत्महित तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये सामायिक करनी चाहिये।

Aimed at refrainment from sinful acts, the only auspicious religious act is samayika. Hence considering it to be something superior to a householder's ordinary acts, an intelligent person ought to perform samayika for the sake of one's own welfare. (326)

सामायिक के समय मे, श्रमण संत आचार ।
श्रावक सामायिक रहे, इसलिये हर बार ।।२.२३.२७.३२७।।

सामाइयम्मि उ कए,द समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ।।२७।।

सामायिके तु कृते, श्रमण इव श्रावको भवति यस्मात् ।
एतेन कारणेन, बहुशः सामायिक कुर्यात् ।।२७।।

सामायिक काल में श्रावक भी श्रमण की तरह हो जाता है इसलिये श्रावक को नियमपूर्वक सामायिक करनी चाहिये ।

While observing the vow of Samayika (i. e., refraining from sinful acts and practice for mental equanimity) a householder becomes equal to a saint; for reason, he should observe it many times (in a day). (327)

परचिन्ता सामायिक में, श्रावक मनोविचार ।
ध्यान बाहर में रहे, नहीं सामायिक तार ।।२.२३.२८.३२८।।

सामाइयं ति काउं, परचिंतं जो ए चिंतइ सड्ढो ।
अट्टवसट्टोवगओ, निरत्थयं तस्स सामाइयं ।।२८।।

सामायिकमिति कृत्वा, परचिन्तां यस्तु चिन्तयति ।
आर्तवशार्तोपगतः, निरर्थक तस्य सामायिकम् ।।२८।।

सामायिक करते समय जो श्रावक पर-चिन्ता करता है उसकी सामायिक निर्रथक है ।

If a householder thinks of other worldly matters (than his self) while practising samayika, he will become engrossed in distressful concentration; his samayika will be fruitless. (328)

अन्न दैहिक ब्रह्म –नहीं, कर्म त्याग व्रत चार।
सामायिक हो नियम से, प्रोषध पूर्ण विचार ।।२.२३.२९.३२९।।

आहार देहसक्कार–बंभाऽवावारपोसहो य णं।
देसे सव्वे य इमं, चरमे सामइयं णियमा ।।२९।।

आहारदेहसत्कार–ब्रह्मचर्यमव्यापारोषधः च।
देशेसर्वस्मिन्च इदं' चरमे सामायिकं नियमात् ।।२९।।

आहार, शरीर संस्कार, अब्रह्म तथा आरम्भ त्याग ये चार बातें प्रोषधोपवास नामक शिक्षाव्रत में आती है। जो सम्पूर्ण प्रोषध करता है उसे नियमितः सामायिक करनी चाहिये।

Posadhopavas involves abstinence from food, from embellishment of the body, from sexual union and from violence. It is of two types, viz., partial and total and performing posadha of the latter type one must necessarily perform samayika. (329)

अन्न दान हो शुद्ध रूप से, देश काल अनुसार।
दान यही समझे उचित, गृहस्थ शिक्षा सार ।।२.२३.३०.३३०।।

अन्नइणं सुद्धाणं, कप्पणिज्जाण देसकालजुत्तं।
दाणं जईणमुचियं, गिहीण सिक्खावयं भणियं ।।३०।।

अन्नादीनां शुद्धानां, कल्पनीयानां देशकालयुतम् ।
दानं यतिभ्यः उचितं, गृहिणां शिक्षाव्रतं भणितम् ।।३०।।

उद्गम आदि दोषों से रहित, देश व काल के अनुकूल, शुद्ध अन्न आदि का उचित रीति से मुनि आदि संयमियों को दान देना गृहस्थ का अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत है।

A householder who offers pure food etc. to the monks in a proper manner and according to the rules and the needs of place and time, observes the fourth disciplinary vow (called Atithisamvibhaga). (330)

अन्न व औषध, शास्त्र, अभय, दान चार प्रकार ।
देने योग्य दान ये, श्रावक के आचार ।।२.२३.३१.३३१।।

आहारो-सह-सत्था-भय-भेओ जं चउव्विहं दाणं ।
तं वुच्चइ दयव्वं, णिद्दिट्ठ-मुवासय-ज्झयणे ।।३१।।

अहारौषध-शास्त्रानुभयभेदात् यत् चतुर्विधम् दानम् ।
तद् उच्यते दातव्यं निर्दिष्टम् उपासक-अध्ययने ।।३१।।

श्रावक के आचार में देने योग्य चार प्रकार के दान कहे गये है। आहार, औषध, शास्त्र व अभय।

Charity (Dana) is of four kinds:- 1. Food; 2. Medicine; 3. Books; and 4. Amnesty (assurance of protection or safety). According to the code of conduct of a sravak all the four are worth giving. (331)

भोजन दान से धन्य हो, भव सागर हो पार ।
पात्र उचित या हो नहीं, करना नहीं विचार ।।२.२३.३२.३३२।।

दाणंभोयणमेत्तं दिण्णइ धण्णो हवेइ सायारो ।
पत्तापत्त-विसेसं संदंसणे किं वियारेण ।।३२।।

दान भोजनमात्रं, दीयते धन्यो भवति सागारः ।
पात्रापात्रविशेषसंदर्शने किं विचारेण ।।३२।।

भोजनमात्र का दान करने से भी गृहस्थ धन्य होता है। इसमें पात्र और अपात्र का विचार करने से क्या लाभ।

A householder, who gives food in charity becomes praise-worthy, what is the good of inquiring about the fitness or unfitness of the person receiving the charity? (332)

साधु के अनुकूल जहाँ, ना थोड़ा भी दान ।
धीर त्यागी श्रावक का, नहीं भोज का स्थान ।।२.२३.३३.३३३।।

साहूणं कप्पणिज्जं, जं न वि दिण्णं कहिं पि कंचि तहिं ।
धीरा जहुत्तकारी, सुसावया तं न भुंजंति ।।३३।।

साधूनां कल्पनीयं, यद् नापि दत्तं कुत्रापि किंचित् तत्र ।
धीराः यथोक्तकारिणः, सुश्रावकाः तद् न भुञ्जते ।।३३।।

जिस घर में साधुओं के अनुकूल दान नही दिया जाता, उस घर में शास्त्रोक्त आचरण करने वाले त्यागी श्रावक भोजन नही करते।

The pious householders who are prudent and have good conduct as per scriptures, do not take food in a house where no charity of any kind is given to a monk. (333)

मुनि पश्चात भोजन करे, पाये सुख संसार ।
जिनदेव कहे क्रमशः, हो भव सागर पार ।।२.२३.३४.३३४।।

जो मुनि-भुत्त-वसेसं, भुंजइ सो भुंजइ जिणुवदिट्ठ ।
सं॒सार-सार-सोक्खं, कमसो णिव्वाण-वर-सोक्खं ।।३४।।

यो मुनिभुक्तविशेषं, भुङ्क्ते स भुङ्क्ते जिनोपदिष्टम् ।
संसारसारसौख्यं, क्रमशो निर्वाणवरसौख्यम् ।।३४।।

जो गृहस्थ मुनि को भोजन कराने के पश्चात भोजन करता है, वास्तव में उसी का भोजन करना सार्थक है। वह मोक्ष का उत्तम सुख प्राप्त करता है।

He, who eats which is left after a monk has taken food, enjoys the best worldly happiness and will gradually obtain the bliss of emancipation. This is the preaching of the Jina. (334)

भय से जीव की रक्षा, होय अभय का दान ।
अभय दान श्रेष्ठ है, सब दान में महान ।।२.२३.३५.३३५।।

जं कीरइ परि-रक्खा, णिच्चं मरण-भय-भीरु-जीवाणं ।
तं जाण अभय-दाणं, सिंहामणिं सव्व-दाणाणं ।।३५।।

यत् क्रियते परिरक्षा, नित्यं मरणभयभरुजीवानाम् ।
तद् जानीहि अभयदानम्, शिखामणि सर्वदानानाम् ।।२७।।

मृत्यु भय से जीवों की रक्षा करना अभय दान है। यह दान सब दानों का शिरोमणि है।

Know that giving protection always to living beings who are in fear of death is known as abhayadana, supreme amongst all charities. (335)

प्रकरण २४ - श्रमणधर्म सूत्र

Chapter 24 - Precepts On Religion Of Monks

श्रमण, संयत, ऋषि कहे, मुनि साधु वीतराग ।
या अनगार भदन्त कहे, होय शास्त्र अनुराग ।।२.२४.१.३३६।।

समणोत्ति संजदो त्ति य, रिसि मुणि साधुत्ति वीदरागो त्ति ।
णामाणि सुविहिदाणं अणगार भदंत दंतो त्ति ।।१।।

श्रमण इति संयत इति च, ऋषिर्मुनिः साधुः इति वीतराग इति ।
नामानि सुविहितानाम् अनगारो भदन्तः दान्तः इति ।।१।।

श्रमण, संयत, ऋषि, मुनि, साधु, वीतराग, अनगार, भदन्त ये सब शास्त्र अनुसार आचरण करने वालों के नाम है।

Sramana (Jain recluses), samyata (lone, who has controlled his senses), Rishi (saint with miraculous powers), Muni (Saint with clairvoyance with telepathic knowledge), sadhu (saints of long standing), vitaraga (nonattach saint), Anagar (houseless ascetic), (monk), Dhanta all these terms indicate persons, who follow conduct as prescribed by scriptures. (336)

सिंह गज वृष मृग पशु सिंधु, मेरु, सूर्य समान ।
चन्द्र मणि नभ सर्प धरा, लक्ष्य मोक्ष ही मान ।।२.२४.२.३३७।।

सीह-गय-वसह-मिय-पसु, मारुद-सूरुवहि-मंदरिंदु-मणी ।
खिदि-उरगंवर-सरिसा, परम-पय-विमग्गया साहू ।।२।।

सिंह-गज-वृषभ-मृग-पशु, मारुत-सूर्योदधि-मन्दरेन्दु-मणयः ।
क्षिति-उरगाम्बरसदृशाः, परमपद-विमार्गका: साधवः ।।२।।

सिंह के समान पराक्रमी, हाथी के समान स्वाभिमानी, वृषभ के समान भद्र, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, वायु के समान निस्संग, सूर्य के समान तेजस्वी, सागर के समान गम्भीर, मेरु के समान निश्चल, चन्द्रमा के समान शीतल, मणि के समान कांतिमान, पृथ्वी के समान सहिष्णु, सर्प के समान अनियत आश्रयी तथा आकाश के समान निरवलम्ब साधु परमपद मोक्ष की खोज में रहते हैं।

Monks who are in search of the supreme path of liberation, resemble a lion (in fearlessness), an elephant (in dignity), a bull (in strength), a deer (in uprightness), a beast (in freedom from attachment), the wind (in being companionless), the sun (in brilliance), an ocean (in serenity), the Mandara Mountain (in firmness) the moon (in coolness), a diamond (in lustre), the earth (in patience), a serpent (in being houseless) and the sky (in not being dependent). (337)

साधु ना, जग साधु कहे, साधु समझे लोक ।
साधु को ही साधु कहो, मिले नहीं परलोक ।।२.२४.३.३३८।।

बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चंति साहुणो ।
न लवे असाहुं साहुत्ति, साहुं साहु त्ति आलवे ।।३।।

बहवः इमें असाधवः, लोके उच्यन्ते साधवः ।
नलपेदसाधुं साधुः इति साधुं साधुः इति आलपेत् ।।३।।

ऐसे भी बहुत से असाधु है जिन्हें संसार में साधु कहा जाता है। लेकिन असाधु को साधु नही कहना चाहिये। साधु को ही साधु कहना चाहिये।

In this world, there are many ill-behaved monks who are called monks; a pseudo-monk should not be called a monk; but a true monk alone must be called a monk. (338)

ज्ञान दर्शन से संपन्न, संयम तप संलीन ।
ऐसे गुण से युक्त हो, साधु उसको चीन ।।२.२४.४.३३९।।

नाणं–दंसण–संपन्न, संजमे य तवे रयं ।
एवं गुण–समाउत्तं, संजयं साहु–मालवे ।।४।।
ज्ञानदर्शनसम्पन्नं, संयमे च तपसि रतम् ।
एवंगुणसमायुक्तं, संयतं साधुमालपेत् ।।४।।

ज्ञान और दर्शन से संपन्न, संयम और तप में लीन संयमी को ही साधु कहना चाहिये।

A person who is endowed with (Right) knowledge and (Right) Faith, is engaged in self-restraint and penance, and is endowed truly with all these virtues, should be called a monk. (339)

सिर मुंडावे श्रमण नहीं, ब्राह्मण ना ओंकार ।
वन बसने से मुनि नहीं, तापस न कुशचीर ।।२.२४.५.३४०।।

न वि मुण्डिएण समणो, न आंकारेण बम्भणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ।।५।।

नाऽपि मुण्डितेन श्रमणः, न ओंकारेण ब्राह्मणः ।
न मुनिररण्यवासेन, कुशचीरेण न तापसः ।।५।।

केवल सिर मुंडाने से कोई साधु नही हो जाता। ओम् का जप करने से कोई ब्राह्मण नही हो जाता । अरण्य में रहने से कोई मुनि नही होता । भेष बदलने से कोई तपस्वी नही होता ।

A person does not become a monk by merely shaving his head, a Brahmin by repeating the Omkara mantra, a monk by residing in a forest, nor a hermit by wearing garments woven of darbha grass. (340)

समता से बनते श्रमण, ब्राह्मण ब्रह्म आचार ।
ज्ञान से वह मुनि बने, तपस्वी तप से पार ।।२.२४.६.३४१।।

समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।।६।।

समतया श्रमणो भवति, ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः ।
ज्ञानेन च मुनिर्भवति, तपसा भवति तापसः ।।६।।

समता से साधु, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है ।

A person becomes a Sramana by equanimity, a Brahmin by his celibacy, a Muni by his knowledge and an ascetic by his austerities. (341)

साधु, न साधु-गुण कहे, साधु गुण स्वीकार ।
राग द्वेष सम, पूज्य वही, करता आत्म विचार ।।२.२४.७.३४२।।

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू, गिणहाहि साहूगुण मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पग-मप्पएणं, जो राग-दोसेहिं समो स पुज्जो ।।७।।

गुणैःसाधुरगुणैरसाधुः, गृहाण साधुगुणान् मुञ्चाऽसाधु (गुणान्) ।
विजानीयात् आत्मानमात्मना, यः रागद्वेषयोः समः स पूज्यः ।।७।।

गुणों से साधु और अगुणों से असाधु होता है। अतः साधु के गुणों को ग्रहण करो और असाधुता का त्याग करो। आत्मा को आत्मा के द्वारा जानते हुए जो राग द्वेष में समभाव रखता है वही पूज्य है।

A person becomes a monk by his virtues and a pseudo-monk by absence of virtues; therefore master all the virtues of a monk and be free from all the vices of a pseudo-monk; conquer your self through the self. He who possesses equanimity in the face of attachments and hatred is worthy of veneration. (342)

देह विषय अनुरक्त रहे, छूटे नहीं कषाय ।
सुप्त हो साधु आत्म से, सम्यक्त्व नहीं पाय ।।२.२४.८.३४३।।

देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसाय-संजुत्ता ।
अप्प-सहावे सुत्ता, ते साहू सम्म-परिचत्ता ।।८।।

देहादिषु अनुरक्ता, विषयासक्ताः कषायसंयुक्ताः ।
आत्मस्वभावे सुप्ता, ते साधवः सम्यक्त्वपरित्यक्ताः ।।८।।

देहादि में अनुरक्त, विषय व कषाय से युक्त तथा आत्मस्वभाव से सुप्त साधु सम्यक्त्व से शून्य होते हैं।

Those monks who are attached to their body, addicted to sensual pleasures, possessed of passions, and asleep in respect of their own nature are certainly devoid of righteousness. (343)

बातें कानों से सुने, देखे बात अनेक।
मगर भिक्षु सब देख-सुन, भाव नहीं अतिरेक ।।२.२४.९.३४४।।

बहुं सुणेई कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पेच्छइ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ।।९।।

बहु श्रृणोति कर्णाभ्यां, बहु अक्षिभ्यां प्रेक्षते।
न च दृष्टं श्रुतं सर्व, भिक्षुराख्यातुमर्हति ।।९।।

भिक्षा के लिये निकला साधु बहुत सी बातें सुनता है और देखता है पर सब कुछ देख सुन कर भी उदासीन रहता है।

A monk hears much through his ears and sees much with his eyes; but he remains indifferent towards everything that he has seen and heard. (344)

नींद जरा सी रात को, ज्ञान ध्यान तल्लीन।
सूत्रों का चिंतन करे, ना हो नींद अधीन ।।२.२४.१०.३४५।।

सज्झाय-झाण-जुत्ता रत्तिं ण सुवंति ते पयामं तु।
सुत्तत्थं चिंतता णिद्दाय वसं ण गच्छंति ।।१०।।

स्वाध्यायध्यानयुक्ताः, रात्रौ न स्वपन्ति ते प्रकामं तु।
सूत्रार्थं चिन्तयन्तो, निद्राया वशं न गच्छन्ति ।।१०।।

स्वाध्याय और ध्यान में लीन साधु रात में बहुत नहीं सोते हैं। सूत्र और अर्थ का चिन्तन करते रहने के कारण वे निन्द्रा के वश नही होते।

The monks do not sleep long at night as they are engaged in studying of scriptures and meditation. They do not fall asleep as they are always reflecting on the meaning of precepts. (345)

निरहंकारी नहीं ममत्व, निस्संग गारव त्याग ।
सर्व जीव सम भाव हो, रखे न साधु राग ।।२.२४.११.३४६।।

निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।।११।।

निर्ममो निरहंकारः, निःसंगस्त्यक्तगौरवः ।
समश्च सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च ।।११।।

साधु ममतारहित, निरहंकारी, निस्संग, गारव का त्यागी तथा सभी जीवों के प्रति समदृष्टि रखता है ।

The (real) monks are free from attachment, selfconceit, companionship and egotism, they treat impartially and equally all living beings, whether mobile or immobile. (346)

लाभ हानि सुख दुख सदा, जिये-मरे सम जान ।
हो निंदा या प्रशंसा, नहीं मान अपमान ।।२.२४.१२.३४७।।

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दा-पसंसासु, तहा माणा-वमाणओ ।।१२।।

लाभालाभे सुखे दुःखे, जीविते मरणे तथा ।
समो निन्दाप्रशंसयोः, तथा मानापमानयोः ।।१२।।

साधु लाभ और हानि में, सुख और दुख में, जीवन और मरण में तथा मान और अपमान में समभाव रखता है ।

A real monk maintains his equanimity, in success and failure, happiness and misery, life and death, condemnation and praise and honour and disnhonour. (347)

निदातबन्धन रहित वहीं, गारवकषाय मुक्त ।
दण्ड, शल्य भय रहित हो,हास्य शोक निवृत्त ।।२.२४.१३.३४८।।

गारवेसु कसाएसु, दंड–सल्ल–भएसु य।
नियत्तोहास–सोगाओ, अनियाणो अबन्धणो ।।१३।।

गौरवेभ्यः कषायेभ्यः, दण्डशल्य भयेभ्यश्च ।
निवृत्तो हासशोात्, अनिदानो अबन्धनः।।१३।।

साधु गौरव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त तथा निदान और बन्धन से रहित होता है।

He is thoroughly unaffected by honour, passions, punishment, affliction and fear; he is undisturbed and unbound and free from laughter and sorrow. (348)

आसक्ति इस लोक नहीं, अनासक्त परलोक ।
लेप चंदन, शूल लगे, राग रहे ना शोक ।।२.२४.१४.३४९।।

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासी चन्दण–कप्पो य, असणे अणसणे तहा ।।१४।।

अनिश्रित इहलोके, परलोकेऽनिश्रितः ।
वासीचन्दकल्पश्च, अशनेऽनशने तथा ।।१४।।

वह लोक और परलोक दोनों से अनासक्त होता है। काँटे से छीले या चंदन का लेप लगे, आहार मिले या न मिले, सम भाव रहता है

He is neither interested in this world nor in the next. He is indifferent to food or fasts. He does not mind whether his limb is smeared with Sandal paste or cut off with an axe. (349)

है अनेक आस्रव दर, साधु करें निरोध ।
अध्यात्मध्यान योग से, करे प्रशस्त सुबोध ।।२.२४.१५.३५०।।

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवे ।
अज्झप्प-ज्झाण-जोगेहिं, पसत्थ-दम-सासणे ।।१५।।

अप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्यः, सर्वतः पिहितास्रवः ।
अध्यात्मध्यानयोगैः, प्रशस्तदमशासनः ।।१५।।

ऐसे साधु किसी भी तरीक़े से आने वाले आस्रवों का निरोध करते हैं। अध्यात्म संबंधी ध्यान और योगों से प्रशस्त संयम शासन में लीन हो जाते हैं।

Such a monk prevents the influx of Karmas through inauspicious doors (i.e., ways) of every kind and becomes engrossed in his rigorous self-contor and discipline through his spiritual meditation. (350)

भूख प्यास सर्दी गर्मी, भय, सेज, अरतिभाव ।
महाफलदायक देहदुख, साधु सहें समभाव ।।२.२४.१६.३५१।।

खुह पिवा दुस्सेज्जं, सीउण्हं अरई भयं ।
अहियासे अव्वहिओ, देहे दुक्खं महाफलं ।।१६।।

क्षुधं पिपासां दुःशय्यां, शीतोष्णं अरतिं भयम् ।
अतिसहेत अव्यथितः देहदुःखं महाफलम् ।।१६।।

भूख-प्यास, पथरीली शय्या, ठंडी-गर्मी, भय आदि को बिना दुखी हुए सहन करता है। दैहिक दुखों को समभावपूर्वक सहन करना महाफलदायी होता है।

Without any pain one must bear hunger, thirst, uncomfortable ground for sleep, cold, heat, uneasiness and fear. Mortification of body is most fruitful. (351)

सतत तपश्चर्या रहे, निज संयम यदि इष्ट।
एकमुक्ति का मार्ग, वह ज्ञानीजन उपदिष्ट ।।२.२४.१७.३५२।।

अहो निच्चं तवोकम्मं, सव्वबुद्धेहिं वण्णियं ।
जाय लज्जासमा वित्ती, एगभत्तं च भोयणं ।।१७।।

अहो नित्यं तपःकर्म, सर्वबुद्धैर्वर्णितम् ।
यावल्लज्जासमा वृत्तिः, एकभक्तं च भोजनम् ।।१७।।

सभी ज्ञानियों ने ऐसे तप का उपदेश दिया है कि साधु संयम के साथ दिन में केवल एक बार भोजन करे।

Oh: all learned men have said that in order to observe penance constantly, it is necessary always to maintain selfrestraint and to take food only once a day. (352)

काम क्लेष सब व्यर्थ है और कठिन उपवास।
मौन अध्ययन व्यर्थ सभी, समता का ना वास ।।२.२३.१८.३५३।।

किं काहदि वणवासो, काय-किलेसो विचित्त-उववासो।
अज्झयण-मोण-पहुदी, समदा-रहियस्स समणस्स ।।१८।।

किं करिष्यति वनवासः, कायक्लेशो विचित्रोपवासः ।
अध्ययनमौनप्रभृतयः, समतारहितस्य श्रमणस्य ।।१८।।

समतारहित श्रमण का वनवास, कायाक्लेश, तप, उपवास, अध्ययन और मौन बेकार है।

What is the use of residing in a lonely place, mortification of body, different types of fasting, study of scriptures, keeping silence etc., to a monk who is devoid of equanimity? (353)

प्रबुद्ध शांति से करे, ग्राम नगर संवाद।
शांतिमार्ग की वृद्धि कर, गौतम छोड़ प्रमाद ।।२.२३.१९.३५४।।

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए ।
सन्तिमग्गं च बहए, समयं गोयम! मा पमायए ।।१९।।

बुद्धः परिनिर्वृतश्चरेः, ग्रामे गतो नगरे वा संयतः ।
शान्तिमार्गं च बृंहयेः, समयं गौतम! मा प्रमादीः ।।१९।।

हे गौतम क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर। प्रबुद्ध और उपशान्त होकर संयतभाव से गाँव और नगर में विचरण कर। शान्ति का मार्ग बढ़ा।

The enlightened and desisted monk should control himself; whether he be in a village or a town, and he should preach to all the road of peace; O'Gautama!, be careful all the while. (354)

'जिन' होंगे कल जब नहीं, होंगे विभिन्न वाद ।
न्याय मार्ग उपलब्ध है, गौतम छोड़ प्रमाद ।।२.२४.२०.३५५।।

न हु जिणे अज्ज दिस्सई बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम ! मा पमायए ।।२०।।

न खलु जिनोऽद्य दृश्यते, बहुमतो दृश्यते मार्गदर्शितः।
सम्प्रति नैयायिके पथि, समयं गौतम ! मा प्रमादीः ।।२०।।

भविष्य में लोग कहेंगे कि आजकल 'जिन' दिखाई नही देते और जो मार्गदर्शन है वे भी एकमत के नही है। किन्तु आज तुझे न्यायपूर्ण मार्ग उपलब्ध है अतः गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।

In future people will say "No Jinas" are seen these days, while those proclaiming the path of spiritual progress hold divergent views; now being on the right path, O'Gautama! be careful all the while? (355)

वेश नहीं प्रमाण है, संयमहीन भी पाय।
बदले वेश मरे नहीं? जो जन विष को खाय ।।२.२४.२१.३५६।।

वेसो वि अप्पमाणी, असंजमपएसु वट्टमाणस्स ।
किं परियत्तिवेसं, विसं न मारेइ खज्जंतं ।।२१।।

वेषोऽपि अप्रमाणः, असंयमपदेषु वर्तमानस्य ।
किं परिवर्तितवेषं, विषं न मारयति खादन्तम् ।।२१।।

संयम मार्ग में वेश प्रमाण नही है वो तो असंयम लोगों में भी पाया जाता है। क्या वेश बदलने वाले व्यक्ति को खाया हुआ विष नही मारता?

(In the path of Restraint) Dress (apparel/costume) is not evidence; as it is used by (found in) the un-restrain persons also (fictitious persons as well). Does poison nor kill a person, who is disguised (i.e. who has assumed a form, other than his own). (356)

लोक में जो साधु लगे, विकल्प चिन्ह अनेक ।
संयम यात्रा के लिये, लोक-विश्वास प्रत्येक ।।२.२४.२२.३५७।।

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविह-विगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगो लिंगप्पओयणं ।।२२।।

प्रत्ययार्थं च लोकस्य, नानाविधविकल्पनम् ।
यात्रार्थं ग्रहणार्थं च, लोके लिङ्गप्रयोजनम्।।२२।।

लोक में बताने के लिये वेश आदि की परिकल्पना की गई है। संयम यात्रा के निर्वाह के लिये और "मैं साधु हूँ" इसका बोध रहने के लिये लोक में लिंग (चिन्ह) का प्रयोजन है।

People wear various kinds of dresses to win the confidence of others. A distinguishing mark is useful to a person who is self-restrained to show the people that he is a monk. (357)

साधु हो या हो गृहस्थ, वेश अनेक प्रकार ।
मूर्ख करे धारण, कहे वेश मोक्ष का द्वार ।।२.२४.२३.३५८।।

पासंडी–लिगाणि व, गिहि–लिंगाणि व बहुप्पयाराणि ।
घित्तं वदंति मूढा, लिंग–मिणं मोक्ख–मग्गो त्ति ।।२३।।

पाषंडिलिङ्गानि वा, गृहिलिङ्गानि वा बहुप्रकाराणि ।
गृहीत्वा वदन्ति मूढा, लिङ्गमिदं मोक्षमार्ग इति।।२३।।

लोक में साधुओं तथा गृहस्थों के लिये तरह तरह के चिन्ह प्रचलित हैं। जिन्हें धारण कर अज्ञानी कहते हैं कि यह चिन्ह मोक्ष का प्रतीक है।

In the world, various symbols (marks/tokens/linga) have been assigned to various types of saints and house holders. Those who adopt them and assert that such symbols cause salvation are great fools (murha-jana/idiots). (358)

पोली मुट्ठी और सिक्का, खोटापन आधार।
कांच चमके नीलमसा, ज्ञानी कहे निस्सार ।।२.२४.२४.३५९।।

पुल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयन्तिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होई य जाणएसु ।।२४।।

शुषिरा इव मुष्टिर्यथा स असारः, अयन्त्रितः कूटकार्षापणो वा ।
राढामणिर्वैडूर्यप्रकाशः, अमहार्घकोभवति च ज्ञायकेषु ज्ञेषु ।।२४।।

जानकारों की दृष्टि में पोली मुट्ठी का, खोटे सिक्के का या हिरे की तरह चमकिली काँच की मणि का कोई मोल नही।

He, who is devoid of strength like a hollow fist, is untested like a false coin and a bead of glass shining like a diamond, will have no respect from the wise who know the truth. (359)

भावलिंग ही प्रमुख है, द्रव्यलिंग अपरमार्थ ।
मूल भाव गुण दोष का, जिन का ये मथितार्थ ।।२.२४.२५.३६०।।

भावो हि पढम-लिंगं, ण दव्व-लिंग च जाण परमत्थं ।
भावो कारण-भूदो, गुण-दोसाणं जिणा विंति ।।२५।।

भावो हि प्रथमलिङ्गं, न द्रव्यलिङ्गंच जानीहि परमार्थम् ।
भावः कारणभूतः, गुणदोषाणां जिना ब्रुवन्ति ।।२५।।

भाव ही मुख्य चिन्ह है। द्रव्य लिंग परम अर्थ नही है । भाव को ही जिनदेव ने गुण दोषों का कारण कहा है ।

Know that it is the mental state and not the dress that is the first distinguishing mark of spirituality. Jinas state that it is the mental state that is the cause of virtues and vices. (360)

भाव शुद्धता के लिये, बाह्य परिग्रह त्याग ।
परिग्रही मन में बसा, हो न सफल परित्याग ।।२.२४.२६.३६१।।

भाव-विसुद्धि-णिमित्तं, बाहिर-गंथस्स कीरए चाओ ।
बहिर-चाओ विहलो, अब्भंतर-गंथ-जुत्तस्स ।।२६।।

भावविशुद्धिनिमित्तं बाह्यग्रन्थस्य क्रियते त्यागः ।
बाह्यत्यागः विफलः, अभ्यन्तरग्रन्थयुक्तस्य ।।२६।।

भावों की शुद्धि के लिये ही बाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता है । जिसके भीतर परिग्रह की वासना है उसका बाह्य त्याग निष्फल है ।

Renunciation of external possessions is the cause of mental purity. Renunciation of external possessions is futile if it is not combined with internal resolve of non-attachment. (361)

बाह्य परिग्रह त्याग करे, पर अशुद्ध परिणाम ।
त्याग नही हित कर सके, भाव शून्य हो काम ।।२.२४.२७.३६२।।

परिणाममि असुद्धे, गंथे मुंचेइ बाहिरे य जई ।
बांहिर-गंथ-च्चाओ, भाव-विहूणस्स किं कुणइ ।।२७।।

परिणामे अशुद्धे, ग्रन्थान् मुञ्चति बाह्यान् च यतिः ।
बाह्यग्रन्थत्यागः, भावविहीनस्य कं करोति? ।।२७।।

बाह्य परिग्रह का त्याग कर के अशुद्ध परिणामों में रहता है तो आत्मा भावना से शून्य ऐसे साधु का बाह्य त्याग क्या हित कर सकता है?

If a monk who is of impure mentality renounces all external possessions, what can such renunciation do to one who is devoid of appropriate mental condition? (362)

ममता ना हो देह की, कण भी रहे न मान ।
स्वयंलीन आत्मा रहे, साधु भावलिंग जान ।।२.२४.२८.३६३।।

देहादि-संग-रहिओ,माण-कसाएहिं सयल-परिचत्तो ।
अप्पा-अप्पम्मि रओ स भाव-लिंगी हवे साहू ।।२८।।

देहादिसंगरहितः, मानकषायैः सकलपरित्यक्तः ।
आत्मा आत्मनि रतः, स भावलिङ्गी भवेत् साधुः ।।२८।।

जो देह आदि की ममता से रहित है, मान आदि कषायों से पूरी तरह मुक्त है तथा जो अपनी आत्मा में ही लीन है, वही साधु भाव लिंगी है ।

One, who is unattached to his body, is entirely free from passions like pride etc. and possessed of a soul which is engrossed in itself, is a real monk. (363)

प्रकरण २५ - व्रतसूत्र

Chapter 25 - Precepts On Vows

सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व अस्तेय।
पाँच महाव्रत ग्रहण हो, जिन धरम का ध्येय ।।२.२५.१.३६४।।

अहिंसा सच्चं च अतेणगं च, तत्तो य बंभं अपरिग्गह च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विउ ।।१।।

अहिंसा सत्यं चास्तेनकं च, ततश्चाब्रह्मापरिग्रहं च ।
प्रतिपद्य पञ्चमहाव्रतानि, चरति धर्मं जिनदेशितं विदः ।।१।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इन पाँच महाव्रतों को स्वीकार करके विद्वान मुनि जिन उपदेश अनुसार धर्म का आचरण करे।

A wise monk, after adopting the five great vows of non-violence, truthfulness, nonstealing, celibacy and non-possessiveness, should practise the religion preached by the Jina. (364)

तीन शूल व्रत घात करे, मिथ्या मोह निदान।
शूल हटे महाव्रत रहे, जिन का धरम विधान ।।२.२५.२.३६५।।

णिस्सल्लस्सेव पुणो, महव्वदाइं हवंति सव्वाइं ।
वदमुवहम्मदि तीहिं दु, णिदाणमिच्छत्तमायाहिं ।।२।।

निःशल्यस्यैव पुनः, महाव्रतानि भवन्ति सर्वाणि ।
व्रतमुपहन्यते तिसृभिस्तु, निदान-मिथ्यात्व-मायाभिः ।।२।।

निदान (पाने की इच्छा), मिथ्यात्व (ग़लत धारणा) और माया, इन तीन कारणों से ही व्रत निष्फल होते है। इन तीन शूलों को निकालने से ही महाव्रत का पालन होगा।

A monk, who is free from the thorns of character (salya) really observes (five) great vows; the vows become ineffective due to three thorns of character, i. e., desire for worldly return for one's good acts, wrong faith and deceit. (365)

मोक्षसुख को त्याग, तुच्छ, सुख का करे निदान।
लेकर टुकडे काँच के, माणिक का प्रतिदान ।।२.२५.३.३६६।।

अगिणअ जो मुक्खसुहं, कुणइ निआणं असारसुहहेउं ।
सो कायमणिकएणं, वेरुलियमणिं पणासेइ ।।३।।

अगणयित्वा यो मोक्षसुखं, करोति निदानमसारसुखहेतोः ।
स काचमणिकृते, वैडूर्यमणिं प्रणाशयति ।।३।।

जो व्रती मोक्ष सुख की उपेक्षा करके भौतिक सुख प्राप्ति की अभिलाषा करता है वो काँच के टुकड़े के लिये असली मणि गँवाता है।

He, who harbours desire for worthless worldly pleasures and disregard for bliss of emancipation, is like a person who destroys a (real) gem for a (glittering) piece of glass. (366)

कुल योनि जीव मार्गणा, जीवों को पहचान ।
रहे निवृत आरम्भ से, व्रत अहिंसा जान ।।२.२५.४.३६७।।

कुल-जोणि-जीव-मग्गण-ठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं ।
तस्सा-रंभ-णियत्तण-परिणामो होइ पढम-वदं ।।४।।

कुलयोनिजीवमार्गणा-स्थानादिषु ज्ञात्वा जीवानाम् ।
तस्यारम्भनिवर्तनपरिणामोभवति प्रथमव्रतम् ।।४।।

कुल, योनि, जीवस्थान, मार्गणास्थान आदि में जीवों को जानकर उनसे सम्बन्धित आरम्भ से निवृत्तिरूप परिणाम प्रथम अहिंसाव्रत है।

The first vow of non violence consists of thought natures of (internal) retirement from the activities, concerned with the living beings, after having been acquainted with their families, and Margana sthans etc.
Mental state of refrainment from killing living beings after having knowledge of them in respect of their species of-birth, place-of-birth, peculiarities and (marganasthana) this is called the first vow (viz, non-killing). (367)

सब आश्रम की जान हैं, सब शास्त्रों का सार।
व्रतों गुणों का पिण्ड है, अहिंसा मुख्य विचार ।।२.२५.५.३६८।।

सव्वेसि–मासमाणं हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं ।
सव्वेसिं वदगुणाणं, पिंडो सारो अहिंसा हु ।।५।।

सर्वेषामाश्रमाणां, हृदयं गर्भो वा सर्वशास्त्राणाम् ।
सर्वेषां व्रतगुणानां, पिण्डः सारः अहिंसा हि ।।५।।

अहिंसा सब आश्रमों का हृदय, सब शास्त्रों का रहस्य, सब व्रतों और गुणों का पिण्डभूत सार है।

Non violence is the heart of all ashramas mystery of all the scriptures and the quint essence essence of all vows and attributes. (368)

खुद या औरों के लिये, भय या क्रोध विचार ।
हिंसक मिथ्या वचन नहीं, यही सत्यव्रत सार ।।२.२५.६.३६९।।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जई वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूया नो वि अन्नं वयावए ।।६।।

आत्मार्थं परार्थं वा, क्रोधाद्वा यदि वा भयात् ।
हिंसकं न मृषा ब्रूयात्, नाप्यन्यं वदापयेत् ।।६।।

स्वयं अपने लिये या दूसरों के लिये क्रोध या भय आदि के वश में होकर हिंसात्मक असत्यवचन न तो स्वयं बोलना चाहिये और न दूसरों से बुलवाना चाहिये। यह दूसरा व्रत 'सत्यव्रत' है।।

One should not speak or excite others to speak harmful false words, either in the interest of oneself or of another, through anger or fear. (369)

गाँव नगर या जंगल में दूजे का हो माल ।
ग्रहण भाव रखना नहीं, तीजे..व्रत की चाल ।।२.२५.७.३७०।।

गामे वा णयरे वा रण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं ।
जो मुयादि गहण-भाव, तिदिय-वदै होदि तस्सेव ।।७।।

ग्रामे वा नगरे वाऽरण्ये वा प्रेक्षित्वा परमार्थम् ।
यो मुञ्चति ग्रहणभावं, तृतीयव्रतं भवति तस्यैव ।।७।।

ग्राम, नगर या वन में दूसरे की वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने का भाव त्याग देनेवाले साधु के तीसरा अचौर्य व्रत होता है ।

He, who desists from a desire to take anything belonging to others, on seeing it lying in a village or town or forest, observes the third vow of non-stealing. (370)

चेतन रहे अचेतना, अल्प-अधिक उपहार ।
दाँत साफ़ की सींक भी, संत न करे स्वीकार ।।२.२५.८.३७१।।

चित्तमंत-मचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंत-सोहण-मेत्तं पि, ओग्गहंसि अजाइया ।।८।।

चित्तवदचित्तवद्वा, अल्पं वा यदि वा बहु (मूल्यतः) ।
दन्तशोधनमात्रमपि, अवग्रहे अयाचित्वा (न गृह्णान्ति) ।।८।।

सचेतन या अचेतन, अल्प अथवा बहुत, यहाँ तक की दाँत साफ़ करने की सींक तक भी साधु बिना दिये ग्रहण नही करते।

The saint does not take (or accept) any things-whether it be animate or unanimate and large or small-without that having been given (to the saint) by its owner. He does not take even a tooth pick, in the like manner. (371)

वर्जित भूमि भ्रमण नहीं, मुनि भिक्षा प्रस्थान।
कुल भूमि का ज्ञान रहे, मित भूमि ही स्थान ।।२.२५४.९.३७२।।

अइभूमिं न गच्छेज्जा, गोयरग्गगओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणिता, मियं भूमिं परक्कमे ।।९।।

अतिभूमिं न गच्छेद् गोचराग्रगतो मुनिः।
कुलस्य भूमिं ज्ञात्वा, मितां भूमिं पराक्रमेत् ।।९।।

गोचरी लिए जाने वाले मुनि को वर्जित भूमि में प्रवेश नहीं करना चाहिये। कुल की भूमि को जानकर मितभूमि तक ही सीमित रहना चाहिये।

The saint, who goes for begging alms (food), should not enter into the prohibited area; and in case the area concerned belongs to his family, he should go in a limited part thereof, only. (372)

सम्भोग मूल अधर्म का, दोष भयंकर जान।
वर्जन इस संसर्ग का, ब्रह्मचर्य सम्मान ।।२.२५.१०.३७३।।

मूल-मेय-महम्मस्स, महा-दोस-समुस्सयं ।
तम्हा मेहुण-संसग्गिं, निग्गंथा वज्जयंति णं ।।१०।।

मूलम् एतद् अधर्मस्य, महादोषसमुच्छयम् ।
तस्मात् मैथुनसंसर्गं, निर्ग्रन्थाः वर्जयन्ति णम् ।।१०।।

मैथुन-संसर्ग अधर्म का मूल है, महान दोषों का समूह है। इसलिये ब्रह्मचर्य व्रती निर्ग्रन्थ साधु मैथुन सेवन का सर्वथा त्याग करते है।

Sexual contact (maithun-sansarg) is the root of all (irreligious-conduct/wrongs). It is the sum total (samuga/collection) of all the vices (dosa). Hence, the possessionless saints, who take the vow of celibacy, totally renounce sexual indulgence (maithun sevan/unchastity). (373)

माता पुत्री बहन हैं, स्त्री का हर इक रूप ।
वर्जित है नारी कथा, ब्रह्मचर्य प्रारूप ।।२.२५.११.३७४।।

मादु-सदा-भगिणीव य, दट्ठुणित्थि-त्तियं च पडिरूवं ।
इत्थि-कहादि-णियत्ति, तिलोय-पुज्जं हवे बंभं ।।११।।

मसतृसुताभगिनीमिव च, दृष्टवा स्त्रीत्रिकं च प्रतिरूपम् ।
स्त्रीकथादिनिवृत्ति-स्त्रिलोकपूज्यं भवेद् ब्रह्म ।।११।।

वृद्धा, बालिका और युवती स्त्री के इन तीन प्रतिरुपों को देखकर उन्हें माता, पुत्री और बहन के समान मानना तथा स्त्री कथा से निवृत्त होना ब्रह्मचर्य व्रत है। यह व्रत तीनों लोकों में पूज्य है।

The fourth vow of celibacy (Brahmacarya) consists of treating the old, young and adolescent (juvenete) women as mothers, sisters and daughters; and keeping one self away from the talks about women (stri-katha). This vow of celibacy commands respect (is worshipped) through all the three universes. (374)

सभी वस्तुएँ त्याग कर, निरपेक्ष मन भाव ।
अंदर बाहर हर तरह, अपरिग्रह व्रत स्वभाव ।।२.२५.१२.३७५।।

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिरवेक्ख-भावणा-पुव्वं ।
पंचम-वद-मिदि भणिदं, चारित्त-भरं वहंतस्स ।।१२।।

सर्वेषां ग्रन्थानां, त्यागो निरपेक्षभावनापूर्व्वम् ।
पंचमव्रतमिति भणितं, चारित्रभरं वहतः ।।१२।।

निरपेक्षतापूर्वक चारित्र का भारवहन करने वाले साधु का बाह्याभ्यंतर, सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना, पाँचवा परिग्रह-त्याग नामक महाव्रत कहा जाता है।

The fifth great vow for monks, who are followers of right conduct, is renunciation of attachments for all things with a dispassionate mind. (375)

परिग्रह है यह देह भी, कहे देव अरहन्त ।
फिर तो परिग्रह अन्य के, संदेहों का अन्त ।।२.२५.१३.३७६।।

किं किंचण त्ति तक्कं, अपुणब्भव-कामिणोथ देहे वि ।
संग त्ति जिणवरिंदा, णिप्पडिकम्मत्त-मुद्दिट्ठा ।।१३।।

किं किंचनमिति तर्कः, अपुनर्भवकामिनोऽथ देहेऽपि ।
संग इति जिनवरेन्द्रा, निष्प्रतिकर्मत्वमुद्दिष्टवन्तः ।।१३।।

जब भगवान अरहंतदेव ने मोक्ष के अभिलाषी को 'शरीर भी परिग्रह है' कहकर देह की उपेक्षा करने का उपदेश दिया है, तब अन्य परिग्रह की तो बात ही क्या है।

Lord Arihanta deva has advised to, those who want to attain salvation, to ignore body, by asserting "Body is also a possession" in view of this, there is no necessity of any further argument (in support of non possession). (376)

जो वस्तु अनिवार्य है, जनता को ना ग्राह्य ।
उत्पन्न रके न मोह को, वस्तू वही है ग्राह्य ।।२.२५.१४.३७७।।

अप्पडिकुट्ठं उवधिं, अपत्थ-णिज्जं-असंजद-जणेहिं ।
मुच्छादि-जणण-रहिदं, गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं ।।१४।।

अप्रतिक्रुष्टमुपधि-मप्रार्थनीयमसंयतजनैः ।
मूर्च्छादिजननरहितं, गृह्णातु श्रमणो यद्यप्यल्पम् ।।१४।।

फिर भी जो अनिवार्य है, दूसरों के काम की नही है, ममत्व पैदा करने वाली नही है ऐसी वस्तु ही साधु के लेने योग्य है। इससे विपरीत अल्पतम परिग्रह भी उनके लिये उचित नही है।

A monk can keep only such things which are necessary for the observance of vratas and are not desired by worldly people and are incapable of creating any attachment; anything that may create even a slight attachment is unacceptable to a monk. (377)

देश, काल, श्रम, शक्ति, पद या आहार-विहार ।
ध्यान श्रमण इसका रखे, अल्प बंध का भार ।।२.२५.१५.३७८।।

आहारेव विहारे, देसं कालं समं खमं उवधि।
जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ।।१५।।

आहारे वा विहारे, देशं कालं श्रमं क्षमम् उपधिम् ।
ज्ञात्वा तान् श्रमणः, वर्तते यदि अल्पलेपी सः ।।१५।।

आहार अथवा विहार में देश, काल, श्रम, अपनी सामर्थ्य तथा उपाधि को जानकर श्रमण यदि अपना बर्ताव रखता है तो उसे अल्प बंधन ही होता है ।

If in connection with his eating and touring, a monk acts taking into consideration the place, time, needed labour, his own capacity, requisite implements; there would be little bondage of karmas. (378)

परिग्रह सत् परिग्रह नहीं, महावीर का ज्ञान ।
परिग्रह से जब मोह हो, असल परिग्रह मान ।।२.२५.१६.३७९।।

न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइण।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ।।१६।।

न सः परिग्रह उक्तो, ज्ञातपुत्रेण तायिना ।
मूर्च्छा परिग्रह उक्तः, इति उक्तं महर्षिणा ।।१६।।

भगवान महावीर ने वस्तुगत परिग्रह को ही परिग्रह नहीं कहा है । उन महर्षि ने परिग्रह से मोह की मूर्च्छा को ही परिग्रह कहा है ।

Jnataputra (Bhagavan Mahavira) has said that an object itself is not possessiveness; what that great saint has said is that attachment to an object is possessiveness. (379)

पास नहीं कुछ भी रखे, लेशमात्र भी माल ।
पक्षी सा निरपेक्ष रहे, संयम संग्रह पाल ।।२.२५.१७.३८०।।

सन्निहिं च न कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए ।
पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए ।।१७।।

सन्निधिं च न कुर्वीत, लेपमात्रया संयतः ।
पक्षी पत्रं समादाय, निरपेक्षः परिव्रजेत् ।।१७।।

साधु लेशमात्र भी संग्रह न करे। पक्षी की तरह संग्रह से निरपेक्ष रहते हुए केवल संयमोपकरण के साथ विचरण करे।

A monk should not collect anything, not even as little as a particle of food sticking to his alms-bowl, as a bird flies away only with its wings so he should wander alone without having any means. (380)

शय्यासन आहार की, इच्छा नहि श्रीमान ।
ग्रहण अधिक करता नहीं, उसी मुनि का मान ।।२.२५.१८.३८१।।

संथार-सेज्जासण-भत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभे विसंते ।
जो एव-मप्पाण-भितोसएज्जा, संतोसपाहन्न-रए स पुज्जो ।।१८।।

संस्तारकशय्यासनभक्तपानानि, अल्पेच्छता अतिलाभेऽपि सति ।
एवमात्मानमभितोषयति, सन्तोषप्राधान्यरतः स पूज्यः ।।१८।।

शय्या, आसन और आहार का अति लाभ होने पर भी जो अल्प इच्छा रखते हुए अल्प से अपने को संतुष्ट रखता है वह साधु पूज्य है।

Even when blankets, beds, seats, food and drink are available in plenty, a monk who desires only a little and remains self-contented is worthy of adoration. (381)

सूर्योदय के पूर्व या, सूर्य गमन पश्चात ।
साधु न भोजन भावना, हो सम्मुख जब रात ।।२.२५.१९.३८२।।

अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था अ अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि ण पत्थए ।।१९।।

अस्तंगते आदित्ये, पुरस्ताच्चानुद्गते।
आहारमादिकं सर्वं, मनसापि न प्रार्थयेत् ।।१९।।

परिग्रहरहित समरसी साधु को सूर्यास्त के पश्चात व सूर्योदय के पूर्व किसी भी प्रकार के आहार की इच्छा मन में नही लानी चाहिये ।

A monk should not desire even in his mind for food, after sun-set and before sun-rise. (382)

त्रस अथवा हो स्थावरा, जीवन सूक्ष्म हज़ार ।
अंधकार में दिखे नहीं, करे न मुनि आहार ।।२.२५.२०.३८३।।

संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे? ।।२०।।

सन्ति इमे सूक्ष्माः प्राणिनः, त्रससा अथवा स्थावराः।
यान् रात्रावपश्यन्, कथम् एषणीयं चरेत् ।।२०।।

इस धरती पर ऐसे त्रस और स्थावर सूक्ष्म जीव सदैव व्याप्त रहते है जो रात्रि को अंधकार में दीख नही पड़ते । अतः ऐसे समय में साधु के द्वारा शुद्ध आहार की कल्पना कैसे हो सकती है?

There are innumerable subtle living beings, mobile as well as immobile, which are invisible in night; how can a monk move around for food at such time? (383)

प्रकरण २६ - समिति-गुप्तिसूत्र

Chapter 26-Precepts On Carefulness (Samiti) & Self-Control (Gupti)

गमनागमन, भाषा, भिक्षा, रखरखाव, उत्सर्ग।
काय वचन मन गुप्तियाँ, आठ गुप्ति समिति वर्ग ।।२.२६.१.३८४।।

इरिया-भासे-सणा-दाणे, उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ।।१।।

ईर्याभाषैषणाऽऽदाने-उच्चारे समितय इति ।
मनोगुप्तिर्वचोगुप्तिः, कायगुप्तिश्चाष्टमी ।।१।।

ईर्या (गमनागमन), भाषा, एषणा (आहार), आदान-प्रदान और उत्सर्ग (मल-मूत्र त्याग) - ये पाँच समितियाँ है। मन, वचन व काया ये तीन गुप्तियाँ है।

Vigilance in walk, speech, begging alms, receiving and keeping down of things and excreting are five Samitis (acts of carefulnes): control of mind, control of speech and control of body (i.e. actions) are three guptis. All are eight in number. (384)

प्रवचन माता आठ हैं, रक्षा पुत्र समान ।
हरपल मुनि रक्षा करे, चरित्र दर्शन ज्ञान ।।२.२६.२.३८५।।

एदाओ अट्ठ पवयणमादाओ णाणदंसणचरित्तं ।
रक्खंति सदा मुणिणो, मादा पुत्तं व पयदाओ ।।२।।

एता अष्ट प्रवचन-मातरः ज्ञानदर्शनचारित्राणि ।
रक्षन्ति सदा मुनीन्, मातरः पुत्रमिव प्रयताः ।।२।।

ये आठ प्रवचन माताएँ है। ये माता की तरह मुनि के सम्यक् दर्शन ज्ञान व चारित्र का रक्षण करती हैं।

These eight are called pravacanamata (mother precepts). Just as a diligent mother protects her son, so they protect right knowledge, right faith and right conduct of the monk. (385)

करें नियंत्रित आचरण, ये समितियाँ पाँच ।
गुप्तियाँ निवृत्त करे, अशुभ करे ना आँच ।।२.२६.३.३८६।।

एयाओ पंच समिई ओ, चरणस्स य पवत्तणे ।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ।।३।।

एताः पञ्च समितयः, चरणस्य च प्रवर्तने ।
गुप्तयो निवर्तने उक्ताः, अशुभार्थेभ्यः सर्वशः।।३।।

ये पाँच समितियाँ चारित्र की प्रवृत्ति के लिये है और तीन गुप्तियाँ सभी अशुभ विषयों से निवृत्ति के लिये है।

The five types of vigilances are meant for the practice of religious life and the three controls (guptis) for the prevention of every thing sinful. (386)

गुप्ति समिति पालन हो, गमनागमन न दोष ।
गुप्ति समिति त्रुटि रोकती, चेष्टाएँ निर्दोष ।।२.२६.४.३८७।।

जह गुत्तस्सिरियाई, न होंति दोसा तहेव समियस्स ।
गुत्तीद्विय प्पमायं, रुंभइ समिई सचेट्ठस्स ।।४।।

यथा गुप्तस्य ईर्यादि (जन्या) न भवन्ति दोषाः, तथैव समितस्य ।
गुप्तिस्थितो प्रमादं, रुणद्धि समिति (स्थितः) सचेष्टस्य ।।४।।

जैसे गुप्ति का पालन करने वाले को अनुचित गमनागमन मूलक दोष नही लगते, वैसे ही समिति का पालन करने वाले को भी दोष नही लगते।

Just as one who practises the gupti is not touched by defects pertaining to Samiti so also one who practises the samiti; does not have the defects of gupti. (387)

जीव जिये अथवा मरे, लापरवाही दोष।
समितियों में जो रहे, ना बंधन निर्दोष ।।२.२६.५.३८८।।

मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्स णत्थि बंधो, हिंसामेत्तेण समिदस्स ।।५।।

म्रियतां वा जीवतु वा जीवः अयताचारस्य निश्चिता हिंसा ।
प्रयतस्य नास्ति बन्धो, हिंसामात्रेण समितिषु ।।५।।

जीव मरे या जीये, लापरवाह (अयतनाचारी) को हिंसा का दोष अवश्य लगता है। किन्तु जो समितियों में प्रयत्नशील है उस से बाह्य हिंसा हो जाने पर भी उसे कर्म बंध नही होता।

The person who is careless in his activities is certainly guilty of violence irrespective of whether a living being remains alive or dies; on the other hand, the person who is careful in observing the samitis experiences no karmic bondage simply because some killing has taken place in connection with his activities. (388)

समिति पालन में हिंसा, द्रव्य है, नहीं भाव ।
हिंसा भाव असंयत का, दोष बड़ा प्रभाव ।।२.२६.६.३८९।।
प्राणी का जब घात हो, द्रव्य–भाव का दोष ।
संत मन से घात नहीं, द्रव्य–भाव निर्दोष ।।२.२६.७.३९०।।

आहच्च हिंसा समितस्स जा तू, सा दव्वतो होति ण भावति उ ।
भावेण हिंसा तु असंजतस्सा, जे वा वि सत्तेण सदा वधेति ।।६।।
संपत्ति तस्सेव जदा भविज्जा, सा दव्वहिंसा खलु भावतो य ।
अज्झत्थसुद्धस्स जदा ण होज्जा, वधेण जोगो दुहतो वऽहिंसा ।।७।।

आहत्य हिंसा समितस्य या तु, सा द्रव्यतो भवति न भावतः तु ।
भावेन हिंसा तु असंयतस्य, यान् वा अपि सत्त्वान् न सदा हन्ति ।।६।।
सम्प्राप्तिर्तस्येव यदा भवति, सा द्रव्यहिंसा खलु भावतो च ।
अध्यात्मशुद्धस्य यदा न भवति, वधेन योगः द्विधाऽपि च अहिंसा ।।७।।

इसका कारण यह है कि समिति का पालन करते हुए जो अंजाने में हिंसा होती है वो द्रव्य हिंसा है भाव हिंसा नही। असंयमी को जाने अंजाने में गई द्रव्य व भाव दोनों हिंसा का दोष लगता है ।

A monk who is observing the Samitis i.e. vigilant about his activities may commit himsa (injury) through oversight; in such a case, there is only external violence (Dravya-Himsa) and not the internal. On the other hand a negligent person is guilty of the internal violence (Bhava-Himsa) even though no external violence is caused by him by killing being. When an injury is caused through negligence of a person, whether he is ascetic or not there will be both types of violence external (physical) as well as internal (mental). A monk firm in his observance of the samitis will not cause any violence because of the purity of his soul; there will be neither external violence nor internal violence. (389 & 390)

ईर्यासमिति सम्मत चले, कुचल मरे जब जीव।
दोष लगे ना साधु को, अहिंसक है वो जीव ।।२.२६.८.३९१।।
ज्यूँ मूर्च्छा अध्यात्म में, परिग्रह की पहचान।
घमंड में जो जन रहे, हिंसक उसको मान ।।२.२६.९.३९२।।

उच्चालियम्हि-पाए, इरिया-समिदस्स णिग्गमत्थाए ।
आबाधेज्ज कुहिगहँ मरिज्ज तं जोगमासेज्ज ।।८।।
ण हितस्स तण्णिमित्तोबंधोसुहुमो य देसिदो समये ।
मुच्छा परिग्गहो च्चिह, अज्झप्प पमाणदो दिट्ठो ।।९।।

उच्चालिते पादे, ईर्यासमितस्य निर्गमनार्थाय।
अबाधे कुलिङ्गी, म्रियेत तं योगमासाद्य ।।८।।
न हि तद्घातनिमित्तो, बन्धो सूक्ष्मोऽपि देशितः समये।
मूर्च्छा परिग्रहो इति च, अध्यात्मप्रमाणतो भणितः ।।९।।

ईर्यासमिति पूर्वक चलने वाले साधु के पैर के नीचे अचानक कोई छोटा सा जीव आ जावे और कुचल कर मर जाये तो आगम के अनुसार इससे साधु को लेश मात्र भी बंध नही होता। जैसे शास्त्रों में मूर्छा को ही परिग्रह कहा गया है वैसे ही प्रमाद को हिंसा कहा गया है।

If a tiny living creature is accidentally crushed under the foot of a monk who is careful in respect of his movement, the scriptures state that he will not attract even the slightest of karmac bondage (i.e. he is not responsible for that violence). Just as possessiveness consists in a sese of attachment so the violence consists in the intention of killing. (391 & 392)

लिप्त नहीं ज्यूँ कमलिनी, सगुणा स्नेह अपार ।
समिति पूर्वक साधु चले, रहे न बंध विचार ।।२.२६.१०.३९३।।

पउमणि–पंत व जहा उदयेण ण लिप्पदि सिणेह–गुण–जुत्तं ।
तह समिदीहिं ण लिप्पई साधू काएसु इरियंतो ।।१०।।

पद्मिनीपत्रं वा यथा, उदकेन न लिप्यते स्नेहगुणयुक्तम् ।
तथा समितिभिर्न लिप्यते, साधुः कायेषु ईर्यन् ।।१०।।

जैसे स्नेहगुण से युक्त कमलिनी का पत्र जल से लिप्त नही होता, वैसे ही समितिपूर्वक जीवों के बीच विचरण करने वाला साधु पाप से लिप्त नही होता।

Just as a lotus-leaf possessing the property of smoothness in not touched by water; similarly a monk practising samitis is not touched by karmic bondage in the course of moving around in the midst of living beings. (393)

यत्न चरित जननी धरम, यत्न ही पालनहार ।
यत्न चरित बढ़ता धरम, यत्न ही सुख का द्वार ।।२.२६.११.३९४।।

जयणा उ धम्मजणणी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव ।
तव्वुड्ढीकरी जयणा, एगंतसुहावहा जयणा ।।११।।

यतना तु धर्मजननी, यतना धर्मस्य पालनी चैव ।
तद्वृद्धिकरी यतना, एकान्तसुखावहा यतना ।।११।।

यत्नाचारिता धर्म की जननी है। यत्नाचारिता धर्म की पालनहार है। यत्नाचारिता धर्म को बढ़ाती है। यत्नाचारिता एकान्त सुखावह है।

Carefulness (Yatana) is the mother of religion; it is also the protector of religion; it helps the growth of religion and it begets perfect happiness. (394)

सोये बैठे चल रहे, खान-पान संवाद ।
साथ विवेकी आचरण, पाप न बंधन बाद ।।२.२६.१२.३९५।।

जयं चरे जयंचिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई ।।१२।।

यत चरेत् यतं तिष्ठेत्, यतमासीत यतं शयीत।
यतं भुञ्जानः भाषमाणः, पाप कर्मं न बध्वाति ।।१२।।

यत्नाचारपूर्वक चलने, बैठने, सोने, खाने और बोलने में साधु को पाप कर्म का बंध नही होता।

A monk who moves cautiously, stands cautiously, sits cautiously, sleeps cautiously, eats cautiously and speaks cautiously would not be bounded by the evil karmas. (395)

चार हाथ तक देख के, पथ चलता जब काम ।
ध्यान जीव हिंसा रहे, ईर्या समिति अंजाम ।।२.२६.१३.३९६।।

फासुय-मग्गेण दिवा, जुगंतर-प्पेहिणा सकज्जेण ।
जंतूणि परिहरंते-णिरिया-समिदी हवे गमणं ।।१३।।

प्रासुकमार्गेण दिवा, युगान्तरप्रेक्षिणा सकार्येण।
जन्तून् परिहरता, ईर्यासमितिः भवेद् गमनम् ।।१३।।

कार्यवश दिन में प्रासुक मार्ग (जिस पर पहले से आवागमन है) पर चार हाथ भूमि को आगे देखते हुए जीवों को बचाते हुए चलना ईर्या समिति है।

Iryasamiti consists in walking along a trodden path during day-time when required to move out for any work, looking ahead to a distance of four cubits and avoiding the killing of tiny living creatures. (396)

रहती वश में इंद्रियाँ, स्वाध्याय नही नाम ।
हो तन्मयता गमन में ईर्या समिति अंजाम ।।२.२६.१४.३९७।।

इन्दियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए ।।१४।।

इन्द्रियार्थान् विवर्ज्य, स्वाध्यायं चैव पञ्चधा ।
तन्मूर्तिः (सन्) तत्पुरस्कारः, उपयुक्त ईर्यां रीयेत ।।१४।।

इन्द्रियों के विषय तथा पाँच प्रकार के स्वाध्याय का कार्य छोड़कर केवल गमन क्रिया में लीन हो, उसी को महत्व देकर जागृतिपूर्वक चलना चाहिये।

A saint should walk, paying full attention to and giving utmost importance to walking. During that period he should give up all the five kinds of studies and sense subjects. (397)
Note:- The five-fold methods of study are: Reading of sacred texts (vacana), questioning the teacher (prcchana), revision by re-reading (paravartana), pondering over what has already been studied and learnt (anupreksa) and reading illustrative strories (dharmakatha).

जीव जन्तु जब राह में, भोजन लेकर चाह ।
पास कभी ना जाइये, भय से वो गुमराह ।।२.२६.१५.३९८।।

तहेवुच्चावया पाणा, भत्ताट्ठाए समागया।
त–उज्जुयं न गच्छेज्जा, जयमेव परक्कमे ।।१५।।

तथैवुच्चावचाः प्राणिनः, भक्तार्थं समागताः ।
तदृजुकं न गच्छेत्, यतमेव पराक्रामेत् ।।१५।।

नाना प्रकार के जीव–जन्तु चारा दाने के लिये राह में होते है, साधु को उनके सामने भी नही जाना चाहिये ताकि वे भयग्रस्त न हो।

While walking, proper care should be taken so as to avoid confrontation with the animals, birds and various other living beings which gather on the way, in search of food-in order to save them from being fear struck (terror-struck). (398)

पाप वचन या निरर्थक, ना दुख भेदी वाद ।
भाषा समिति यही कहे, कर ना वाद विवाद ।।२.२६.१६.३९९।।

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं न निरट्ठं न मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्सन्तरेण वा ।।१६।।

न लपेत् पृष्टः सावद्यं, न निरर्थं न मर्मगम् ।
आत्मार्थं परार्थं वा, उभयस्यान्तेण वा ।।१६।।

जो स्वयं व अन्य के लिये पाप वचन, निरर्थक वचन और कटु वचन का प्रयोग न करे वो भाषा समिति परायण साधु है।

Even when enquired, a monk ought not to utter a sinful word, a senseless word, a heart-rending word either for the sake of oneself, or for the sake of another one, or for the sake of both. (399)

कटु वचन बोले नहीं, लगे जीव अपघात ।
सत्य वचन पापी बड़ा, जो करता आघात ।।२.२६.१७.४००।।

तहेव करुसा भासा गुरु भूओ-वघाइणी ।
सच्चा विसा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ।।१७।।

तथैव परुषा भाषा, गुरुभूतोपघातिनी।
सत्यापि सा न वक्तव्या, यतो पापस्य आगमः ।।१७।।

कटु वचन या प्राणियों के चोट पहुँचाने वाली भाषा भी न बोले। ऐसा सत्य वचन भी न बोले जिससे पाप का बंध होता है।

The monk should not use harsh words or speak what is harmful to other living beings; even if it is true, because it is sinful. (400)

काने को काना नहीं, नही नपुंसक बोल।
रोगी को रोगी नहीं, चोर चोर ना बोल ।।२.२६.१८.४०१।।

तहेव काणं काणे त्तिल पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वा वि रोगि त्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए ।।१८।।

तथैव काणं काण इति, पण्डकं पण्डक्र इति वा।
व्याधिवाऽपि रोगी इति, स्तेनं चौर इति नो वदेत् ।।१८।।

काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर भी न कहे।

Similarly, he should not call an one-eyed person as one-eyed, and eunuch as eunuch, a diseased person as diseased or a thief a thief. (401)

चुग़ली, हास्य, कर्कश, निन्दा, आत्म प्रशंसा त्याग ।
करे निरर्थक बात नहीं, भाष समिति वीतराग ।।२.२६.१९.४०२।।

पेसुण्ण-हास-कक्स-पर-णिंदा-प्पप्पसंस विकहादी।
वज्जिा स-परहियं, भासा-समिदी हवे कहणं ।।१९।।

पैशुन्यहासकर्कश-परनिन्दाऽऽत्मप्रशंसा-विकथादीन्।
वर्जयित्वा स्वपरहित्तं, भाषासमितिः भवेत् कथनम् ।।१९।।

चुग़ली, हास्य, कर्कश वचन, पर निन्दा, आत्म प्रशंसा, रसवर्धक या विकारवर्धक कथा का त्याग करके स्व-पर हितकारी वचन बोलना ही भाषा समिति है।

Carefulness in speech (bhasasamiti) consists in avoiding slanderous, ridiculous and speeches blaming others, selfpraise or incredible stories. Such speeches conduce neither to the good of oneself nor that of others. (402)

असंदिग्ध, देखी भली, पूर्ण व्यक्त हो बात।
उद्वेगरहित व सहज हो, आत्मवान मुनि जात ।।२.२६.२०.४०३।।

दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुन्न वियं जियं।
अयंपिरम-णुव्विवग्गं, भासं निसिर अत्तवं ।।२०।।

दृष्टां मिताम् असन्दिग्धां, प्रतिपूर्णां व्यक्ताम्।
अजल्पनशीलां अनुद्विग्नां, भाषां निसृज आत्मवान् ।।२०।।

आत्मवान मुनि ऐसी भाषा बोले जो आँखों देखी बात को कहती हो, संक्षिप्त हो, संदेहास्पद न हो, स्वर-व्यंजन आदि से पूर्ण हो, व्यक्त हो, सहज और उद्वेगरहित हो।

A wise monk would speak what he has seen; his speech should be brief, free from ambiguity, clearly expressed, free from prattle and incapable of causing anxiety. (403)

निष्प्रयोजन देन दुर्लभ, दुर्लभ भिक्षा पान।
दोनों को शुभ गति मिले, बढ़े मोक्ष की शान ।।२.२६.२१.४०४।।

दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवो वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवो, दो वि गच्छंति सोग्गइं ।।२१।।

दुर्लभा तु मुधादायिनः, मुधाजीविनोऽपि दुर्लभः।
धादायिनः मुधाजीविनः, द्वावपि गच्छत सुगतिम् ।।२१।।

बिना स्वार्थ के देने वाले भी दुर्लभ है और भिक्षा पर जीवन बिताने वाले भी दुर्लभ है। दोनों तरह के व्यक्ति परम्परा से सुगति या मोक्ष प्राप्त करते है।

It is difficult to find faultless alms-givers; it is more difficult to find one who lives on faultless begging; one who gives faultless alms and the one who lives one faultless begging, both will attain happy state in the next birth. (404)

उद्गम, उत्पादन, अशन, दोष रहित हो भोज ।
शुद्ध न जिनकी शायिका, एषणा व्रत मुनि रोज़ ।।२.२६.२२.४०५।।

उग्गम-उप्पादण-एसणेहिं पिंड च उवधि सज्जं च।
सोधंतस्स य मुणिणो, परिसुज्झइ एसणा-समिदी ।।२२।।

उद्गमोत्पादनैषणैः, पिण्डं च उपधिं शय्यां वा ।
शोधयतश्च मुनेः, परिशुद्ध्यति एषणा समितिः।।२२।।

आहार उगाने, बनाने व ग्रहण करते समय लगने वाले दोषों का ध्यान रखना और शय्या आदि शुद्ध रखना एषणा समिति है ।

The carefulness of food (E'sana-samiti) of a saint consists of accepting food, free of all the defects, arising out of its preparation (Udgamadosa), production (utpadan) and consumption (Asan/eating); and the purification of the material objects of his bed, place of residence etc. (405)

बल, आयु व स्वाद, नही, नहीं तेज-उपचार ।
ज्ञान संयम ध्यान मिले, मुनि करता आहार ।।२.२६.२३.४०६।।

णबलाउ-साउअट्ठं, ण सरीरस्सु-वचयट्ठ तेजट्ठं ।
णाणट्ठ-संजमट्ठं, झाणट्ठं चेव भंजेज्जा ।।२३।।

न बलायुः स्वादार्थं, न शरीरस्योपचयार्थंतेजो अर्थम् ।
ज्ञानार्थं संयमार्थं, ध्यानार्थं चैव भुञ्जीत ।।२३।।

मुनि बल, आयु, स्वाद या तेज बढ़ाने के लिये आहार नहीं करते । वे ज्ञान, संयम और ध्यान की सिद्धि के लिये ही आहार करते हैं।

A monk should not take food for the sake of (physical) strength, taste, bodily improvement or lustre; but only for acquisition of knowledge, self-restraint and meditation. (406)

पुष्प को पीड़ा नहीं, भ्रमर करे रस पान ।
पुष्प मुरझाता नहीं, रहे तृप्ति का भान।।२.२६.२४.४०७।।
साधु मुक्त बस इसी तरह, विचरण करता जाय ।
दाता को भी कष्ट नहीं, समिति एषणा भाय।।२.२६.२५.४०८।।

जहा दुम्मस्स पुप्फेसु, भमरो आवियई रसं।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।।२४।।
उमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विंहगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ।।२५।।

यथाद्रुमस्य पुष्पेषु, भ्रमरः आपिबति रसम् ।
न च पुष्पं क्लामयति, स च प्रीणात्यात्मानम् ।।२४।।
एवमेते श्रमणाः मुक्ता, ये लोके सन्ति साधवः ।
विहंगमा इव पुष्पेषु, दानभक्तैषणारताः ।।२५।।

जैसे भ्रमर पुष्पोंको तनिक भी पीड़ा पहुँचाये बिना रस ग्रहण करता है और अपने को तृप्त करता है, वैसे ही लोक में विचरण करने वाले परिग्रहण से रहित साधु दाता को किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना उसके द्वारा दिया गया शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं। यही उनकी एषणा समिति है।

Just as a large black bee (bhramar) (Collect and) take Juice of flowers without causing any annoyance/inconvenience to them (flowers) and gets itself satisfied; similarly a saint who moves about in world free of (all) external and internal possessions do accept fresh and pure food (Prasuka-Ahar), as offered by the donors, without causing any annoyance/inconvenience to them (donors). The carefulness of food of a saint lie in such process. (407 & 408)

हिंसा से भोजन बने, प्रासुक भोजी दोष ।
मन में शुद्ध हो भावना, हिंसक भोज निर्दोष ।।२.२६.२६.४०९।।

आहाकम्म-परिणओ, फासुयभोई वि बंधओ होई ।
सुद्धं गवे माणो, आहाकम्मे वि सो सुद्धो ।।२६।।

आधाकर्मपरिणतः, प्रासुकभोजी अपि बन्धको भवति ।
शुद्धं गवेषयन्, आधाकर्मण्यपि स शुद्धः ।।२६।।

यदि साधु दोषयुक्त अपने उद्देश्य से बनाया गया भोजन करता है तो वह दोष का भागी हो जाता है। किन्तु यदि वह उद्गम आदि दोषों से रहित शुद्ध भोजन की आशा रखते हुए अशुद्ध भोजन भी कर लेता है तो भावों से शुद्ध होने के कारण वह शुद्ध है।

IA monk who entertains in his mind the idea of having a violently prepared meal; binds down karmas even if he is actually having a nonviolently prepared meal. On the other hand, a monk who always looks for a pure (non-violently prepared) meal is pure (blameless) even if perchance he gets a violently prepared meal. (409)

आँखों से चौकस रहे, रखे या वस्तु उठाय ।
निक्षेपण आदान समिति मुनि को यही बताय ।।२.२६.२७.४१०।।

चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई ।
आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया ।।२७।।

देहादिसंगरहितः, मानकषायैः सकलपरित्यक्तः ।
आत्मा आत्मनि रतः, स भावलिङ्गी भवेत् साधुः ।।२८।।

विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करनेवाला मुनि अपने उपकरणों को आँखों से देखकर तथा साफ़ करते हुए उठाये और रखे। यही आदान निक्षेपण समिति है।

If a monk attentively undertakes the required visual inspection and cleaning while receiving or placing down things, he always practises the concerned two-fold samiti (i.e., samiti in respect of receiving and placing things). (410)

दूर, एकान्त, जीव ना, अवरोधक ना भान।
मल या मूत्र विसर्जन को, उत्सर्ग समिति जान ।।२.२६.२८.४११।।

एगंते अचित्ते दूरे, गूढे विसाल-मविरोहे।
उच्चारदिच्चाओ, पदिठाणिया हवे समिदी ।।२८।।

एकान्ते अचित्ते दूरे, गूढे विशाले अविरोधे।
उच्चारादित्यागः, प्रतिष्ठापनिका भवेत् समितिः ।।२८।।

साधु को मलमूत्र का विसर्जन ऐसे स्थान पर करना चाहिये जहाँ एकान्त हो, गीली वनस्पति तथा त्रस जीवों से रहित हो, गाँव आदि से दूर हो, कोई विरोध न करता हो। यह उत्सर्ग समिति है।

A monk should answer his calls of nature at a place which is solitary, free from insects and grass, concealed, spacious, free from objection, this is observance of Utsarga Samiti. (411)

समारम्भ या हो सरम्भ या आरम्भ हो काम।
रोके मुनि मन को सदा, रहता खुद निष्काम ।।२.२६.२९.४१२।।

संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य।
मणं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ।।२९।।

संरम्भे समारम्भे, आरम्भे च तथैव च।
मनः प्रवर्तमानं तु, निवर्त्तयेद् यतं यतिः ।।२९।।

जागरुक साधु सरम्भ (हिंसा का विचार), समारम्भ (हिंसा के लिये सामग्री जुटाना) व आरम्भ (हिंसा आरम्भ करना) करने से प्रवृत्त मन को रोके।

An attentive monk should prevent his mind from indulging in evil thoughts (samrambha), collection of implements which cause harm to others (samarambha) and evil actions (arambha). (412)

समारम्भ या हो सरम्भ या आरम्भ हो काम ।
साधु वचन को रोकता, रहता खुद निष्काम ।।२.२६.३०.४१३।।

संरंभसमारंभे, आरंभे य तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ।।३०।।

संरम्भे समारम्भे, आरम्भे च तथव च ।
वचः प्रवर्तमानं तु, निवर्त्तयेद् यतं यतिः ।।३०।।

जागरुक साधु सरम्भ (हिंसा का विचार), समारम्भ (हिंसा के लिये सामग्री जुटाना) व आरम्भ (हिंसा आरम्भ करना) करने से प्रवृत्त वचन को रोके ।

A careful saint should with hold his speech from including towards the determination (sainrainbha) preparation (samaranibha) and commencement of doing things (Arambha). He should protect (defend) his speech (vacan) in the like manner. (413)

समारम्भ या हो सरम्भ या आरम्भ हो काम ।
काया को मुनि रोकता, रहता खुद निष्काम ।।२.२६.३१.४१४।।

संरंभसमारंभे, आरंभम्मि तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ।।३१।।

संरम्भे समारम्भे, आरम्भेतथैव च ।
कायं प्रवर्तमानं तु, निवर्त्तयेद् यतं यतिः ।।३१।।

जागरुक साधु सरम्भ (हिंसा का विचार), समारम्भ (हिंसा के लिये सामग्री जुटाना) व आरम्भ (हिंसा आरम्भ करना) करने से प्रवृत्त काया को रोके ।

A careful (vigilant) saint should withhold his body from inclining towards the determination (sanirambha), preparation (samaranbha) and commencement (Aramibha) of doing things, he should protect it body in such manner. (414)

बाड़ खेत, खाई, नगर, रक्षा करे दीवार ।
पाप का होता निरोध, साधु गुप्ति विचार ।।२.२६.३२.४१५।।

खेखत्तस्स वई णयरस्स, खाइया अहव होइ पायारो ।
तह पावस्स णिरोहो, ताओ गुत्तीओ साहुस्स ।।३२।।

क्षे त्र स्य वृत्तिर्नगरस्य, खातिकाऽथवा भवति प्राकारः ।
तथा पापस्य निरोधः, ताः गुप्तयः साधोः ।।३२।।

जैसे खेत की बाड़ और नगर की खाई या दीवार उसकी रक्षा करते है वैसे ही पाप निरोधक गुप्तियाँ साधु के संयम की रक्षा करती है।

As a fence protects a field, a ditch or a rampart protects a city, so the guptis (i.e., control of mind, speech and body) protect a monk from sins. (415)

प्रवचन माता आठ हो, सम्यक् आचरण जान ।
मुक्त भये संसार से, साधु का यह ज्ञान ।।२.२६.३३.४१६।।

एया पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी ।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए ।।३३।।

एताः प्रवचनमातृः, यः सम्यगाचरेन्मुनिः ।
स क्षिप्रं सर्वसंसारात्, विप्रमुच्यते पण्डितः ।।३३।।

जो मुनि आठ प्रवचन माताओं का सम्यक् आचरण करता है वह ज्ञानी शीघ्र इस संसार से मुक्त हो जाता है ।

A monk who practises these eight motherprecepts by his righteous conduct is a wise person who will be liberated quickly from all bondages of mundane existence. (416)

प्रकरण २७ – आवश्यक सूत्र

Chapter 27-Precepts On Obligatory Duties

भेद–ज्ञान अभ्यास से, समता जीव सुजान ।
करना जो है दृढ़ इसे, प्रतिक्रमण बखान ।।२.२७.१.४१७।।

एरिस–भेद–ब्भासे, मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं ।
तं दढ–करण–णिमित्तं, पडिक्कमणादी यवक्खामि ।।१।।

ईदृग्भेदाभ्यासे, मध्यस्थो भवति तेन चारित्रम् ।
तद् दृढीकरणनिमित्तं, प्रत्रिमणादीन् प्रवक्ष्यामि ।।१।।

इस प्रकार के भेद–ज्ञान का अभ्यास हो जाने पर जीव माध्यस्थ भावयुक्त हो जाता है और इससे चारित्र होता है। इसी को दृढ़ करने के लिये प्रतिक्रमण का कथन करता हूँ।

He who contemplates over the pure nature of soul after renouncing all alien states of mind, becomes really engrossed in himself; that results in (Right) conduct), self analysis and repentance for faults (pratikarmana) etc. (i.e. six necessary duties) are being, hereby, discussed. (417)

तज ध्यावे पदभाव को, आत्मा विमल सुभाव ।
आत्मवशी का कर्म ही, है आवश्यक भाव ।।२.२७.२.४१८।।

परिचता परभावं, अप्पाणं झादि णिम्मल–सहावं ।
अप्पवसो सो होदि हु, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं ।।२।।

परित्यक्त्वा परभावं, आत्मानं ध्यायति निर्मलस्वभावम् ।
आत्मवशः सभवति खलु, तस्य तु कर्म्म भणन्ति आवश्यकम् ।।२।।

पर–भाव का त्याग करके निर्मल स्वभावी आत्मा का ध्याता आत्मवशी होता है। उसके कर्म को आवश्यक कहा जाता है।

He who meditates upon the nature of pure self (soul) and renounces the thought nature of non self is self controlled (Atma-vasi). His observances are designated as "Essentialduties". (418))

कर्म आवश्यक रख इच्छा, स्थिर आत्मस्वभाव ।
गुण सामयिक पूर्ण रहे, आवे समता भाव ।।२.२७.३.४१९।।

आवासं जइ इच्छसि, अप्प–सहावेसु कुणदि थिर–भावं ।
तेणदु सामण्ण–गुणं, संपुण्णं होदि जीवस्स ।।३।।

आवश्यकं यदीच्छसि, आत्मस्वभावेषु करोति स्थिरभावम् ।
तेन तु श्रामण्य गुणं, सम्पूर्णं भवति जीवस्य ।।३।।

यदि तू प्रतिक्रमण आदि आवश्यक कर्मों की इच्छा रखता है तो अपने को आत्मस्वभाव में स्थिर कर। इसमें जीव का सामायिक गुण पूर्ण होता है। उसमें समता आती है।

One who performs acts like repentance (pratikramana) etc. attains right conduct viewed from the standpoint of niscayanaya, certainly, on account of that, a monk becomes steadfast in a conduct devoid of attachment. (419)

करम न आवश्यक करे, भ्रष्ट चरित्र स्वभाव ।
पूर्वोक्त क्रम करे श्रमण, कर्म आवश्यक भाव ।।२.२७.४.४२०।।

आवासएण हीणो, पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो ।
पुव्वुत्त–कमेण पुणो, तम्हा आवासयं कुज्जा ।।४।।

आवश्यकेन हीनः, प्रभ्रष्टो भवति चरणतः श्रमणः ।
पूर्वोक्तक्रमेण पुनः, तस्मादावश्यक कुर्यात् ।।४।।

जो श्रमण आवश्यक कर्म नही करता, वह चारित्र से भ्रष्ट है। अतः पूर्वोक्त क्रम से आवश्यक कर्म अवश्य करना चाहिए।

A saint who does not (regularly and properly) perform his essential duties is defiles (Bhrastta/fallen/corrupt/depraved). Hence, one should definitely perform them in aforementioned manner. (420)

प्रतिक्रमण जब युक्त रहे, चरित्र निश्चित जान।
श्रमण चरित वीतराग का, शुरू हुआ उत्थान ।।२.२७.५.४२१।।

पडिकमण–पहुडि–किरियं, कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं ।
तेण दु विराग–चरिए, समणो अब्भुट्ठिदो होदि ।।५।।

प्रतिक्रमणप्रभृतिक्रियां, कुर्व्वन् निश्चयस्य चारित्रम् ।
तेनु तु विरागचरिते, श्रमणोऽभ्युत्थितो भवति ।।५।।

जो निश्चयचारित्रस्वरूप प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ करता है वह श्रमण वीतराग–चारित्र में आरुढ होता है।

One who has capacity to practise repentance, should do it by contemplation : a person having no such capacity, ought to have faith in its efficacy. (421)

मात्र वचनमय प्रतिक्रमण, नियम या प्रत्याखान।
वचनमयी आलोचना, स्वाध्याय पहचान ।।२.२७.६.४२२।।

वयण–मयं पडिकमणं, वयण–मयं पच्चखाण णियमं च ।
आलोयण वयणमयं, तं सव्वं जाण सज्झायं ।।६।।

वचनमयं प्रतिक्रमणं, वचनमयं प्रत्याख्यानं नियमश्च ।
आलोचनं वचनमयं, तत्सर्वं जानीहि स्वाध्यायम् ।।६।।

परन्तु वचनमय प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, नियम, आलोचना ये सब तो केवल स्वाध्याय है चारित्र नही है।

But the linguistic (vacana-maya) self analysis and Expiation (pratikramana); linguistic (vacana manner) self meditation (Pratyakhyana); linguistic (vacan-maya) regulation; and linguistic (vacanmaya) confession of faults to the head of the order (alocana) all these are parts of studies (swadhyaya); they do not constitute Real character. (422)

यदि शक्ति संभाव्य रहे, प्रतिक्रमण कर ध्यान।
नहीं समय ना शक्ति हो, श्रद्धा श्रेष्ठ ही जान ।।२.२७.७.४२३।।

जदि सक्कदि कादुं जे, पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं ।
सत्ति-विहीणो जा जइ, सद्दहणं चेव कायव्वं ।।७।।

यदि शक्यते कर्त्तुम्, प्रतिक्रमणादिकं कुर्याद् ध्यानमयम् ।
शक्तिविहीनो यावद्यदि, श्रद्धानं चैव कर्तव्यम् ।।७।।

यदि करने की शक्ति हो तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदि कर। इस समय यदि शक्ति नही है तो उनकी श्रद्धा करना ही श्रेयष्कर कर्तव्य है।

Hence, perform meditative self analysis and Expiation (Dhyanamaya pratikramana) etc. in case you are not so capable or it is not possible to be done. For the time being one should repose faith in it. (423)

सामयिक जिनेशस्तुति, छह आवश्यक जान।
काम-वंदन प्रतिक्रमण, अमोह, प्रत्याखान ।।२.२७.८.४२४।।

सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणयं ।
पडिक्कमणं काउस्सग्गो पंचक्खाणं ।।८।।

सामायिकम् चतुर्विंशतिस्तवः वन्दनकम् ।
प्रतिक्रमणम् कार्योत्सर्गः प्रत्याख्यानम् ।।८।।

सामायिक, चतुर्विंशति जिन-स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याखान - ये छह आवश्यक है।

The essential duties (Avasyakas) (of a saint) are six:-
1. Equanimity in friends and foes (samayiki);
2. Prayer of twenty four jinas (stava);
3. Worship of twenty four jivas (Vandana);
4. Self analysis and Expiation (Pratikramana);
5. Mortification of self (Kayatsarg/penance); and
6. Self meditation (Pratya khyana).(424)

शत्रु-मित्र तृण-कंचन में, सामायिक समभाव।
राग-द्वेष में चित्त नहीं, उचित प्रवृत्ति स्वभाव ।।२.२७.९.४२५।।

समभावो सामइयं, तणकंचन-सत्तुमित्तविसओ त्ति ।
निरभिस्संगं चित्तं, उचितयपवित्तिप्पहाणं च ।।९।।

समभावो सामायिकं, तृणकाञ्चनशत्रुमित्रविषयः इति।
निरभिष्वङ्गं चित्तं, उचितप्रवृत्तिप्रधानं च ।।९।।

तिनके और सोने में, शत्रु और मित्र में समभाव रखना ही सामायिक है। अर्थात् रागद्वेषरहित, ध्यानमग्न, उचित प्रवृत्तिप्रधान चित्त को सामायिक कहते है।

Equanimity (samayika) consists of giving equal treatment to a blade of grass and a piece of gold or to a friend and a foe. (In other words), it is equivalent to a mind, dominated by proper inclinations/trends/tendencies, a mind that is free of the (abhiswanga) of attachments and aversions. (425)

तज वचनोच्चारण सभी, वीतराग हो भाव।
ध्यान आत्मा में रहे, परम समाधि प्रभाव ।।२.२७.१०.४२६।।

वयणो-च्चारण-किरियं, परिचत्ता वीयराय-भावेण।
जो झायदि अप्पाणं, परम-समाही हवे तस्स ।।१०।।

वचनोच्चारणक्रियां, परित्यक्त्वा वीतरागभावेन।
यो ध्यायत्यात्मा, परमसमाधिर्भवेत् तस्य ।।१०।।

जो वचन-उच्चारण की क्रिया का परित्याग करके वीतरागभाव से आत्मा का ध्यान करता है, उसके परमसमाधि या सामायिक होती है।

He who renounces the activity of speaking (In other words who maintains silence) and meditates upon soul in dispassionate/unattached manner, gets united with self (or becomes equanimous). (426)

विरत सर्वसावद्य से, त्रिगुप्त जितेन्द्रिय सार ।
हो हरदम ही सामयिक, केवलिशासन द्वार ।।२.२७.११.४२७।।

विरदो सव्व-सावज्जे, तिगुत्तो पिहिदिंदिओ ।
तस्स सामइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ।।११।।

विरतः सर्वसावद्ये, त्रिगुप्तः पिहितेन्द्रियः ।
तस्य सामायिकंस्थायि, इति केवलिशासने ।।११।।

जो आरम्भ से विरत है, त्रिगुप्तियुक्त है, इन्द्रियों को जीत लिया है, उसके सामायिक स्थायी होती है, ऐसा केवलि शासन में कहा गया है।

One who refrains from all sinful acts whatsoever, who practises the three controls (guptis), who has one's sense-organs under control is alone possessed of a steadfast samayika this is what has been proclaimed in the discipline preached by omniscients. (427)

स्थावर या हो जीव त्रस में, रखता है समभाव ।
सदा-सदा हो सामायिक, केवलिशासन भाव ।।२.२७.१२.४२८।।

जो समो सव्वभूदेसु, थावरेसु तसेसु वा ।
तस्स सामइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ।।१२।।

यः समः सर्वभूतेषु, स्थावरेषु त्रसेषु वा ।
तस्य सामायिकं स्थायि, इति केवलिशासने ।।१२।।

जो स्थावर व त्रस जीवों के प्रति समभाव रखता है उसके सामायिक स्थायी होती है, ऐसा केवलि शासन में कहा गया है ।

One who treats as equal all the living beings whether mobile or immobile is alone possessed of a steadfast samayika this is what has been proclaimed in the discipline preached by omniscients. (428)

ऋषभ आदि तीर्थंकरों, नाम ग्रहण गुणगान ।
त्रिशुद्धि ये अर्चन मनन, जिनेशस्तवन जान ।।२.२७.१३.४२९।।

उसहादि-जिणवराणं, णाम-णिरुत्तिं गुणाणुकित्तिं च ।
काऊण अच्चिदूण य, तिसुद्धि-पणामो थवो णेओ ।।१३।।

ऋषभादिजिनवराणां, नामनिरुक्ति गुणानुकीर्तिं च।
कृत्वा अर्चित्वा च, त्रिशुद्धि प्रणामः स्तवो ज्ञेयः ।।१३।।

ऋषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों के नामो की स्तुति तथा उनके गुणों का कीर्तन करना, गंध-पुष्प-अक्षतादि से पूजा अर्चना करना, मन वचन काया से शुद्धिपूर्वक प्रणाम करना, चतुर्विंशतिस्तव नामक दूसरा आवश्यक है।

The second essential duty (Avasyat) of a saint named 'Chaturvinsati-stavan consists of the etymological explanations (nirukti) of the names of twenty four tirthankar and the obeisance to them with all the purity of mind, speech and body. By means of narrations given or songs sung in their praise (kirtan) and the worship (puja archna) there of with the offerings of incense flower, rice etc. (429)

काल भाव और क्षेत्र द्रव्य, निज निन्दा मन पाप ।
काय वचन मन से करे, प्रतिक्रमण का जाप ।।२.२७.१४.४३०।।

दव्वे खेत्ते काले, भावे य कया-वराह-सोहणयं ।
णिंदण-गरहण-जुत्तो मण-वच-कायेण पडिक्कमणं ।।१४।।

द्रव्ये क्षेत्रे काले, भावे च कृतापराधशोधनकम् ।
निन्दनगर्हणशयुक्तो, मनोवचःकायेन प्रतिक्रमणम् ।।१४।।

निन्दा से युक्त मन वचन काया द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के दोषों की आचार्य के समक्ष आलोचनापूर्वक शुद्धि करना प्रतिक्रमण कहलाता है।

The self analysis and expiations, before the Head of the order by a saint for his faults (Pratikramana) consists of the purification process which includes confession (Alochana) and condemnation of faults (errors), committed through mind, speech and body as regards his conduct as a full vower. (430)

आलोचनादि कर फिर न, करने का संकल्प ।
भाव प्रतिक्रमण यही, शेष द्रव्य के विकल्प ।।२.२७६.१५.४३१।।

अलोचनण–णिंदण–गरहणाहिं अब्भुट्ठिओ अकरणाए।
तं भाव–पडिक्कमणं, सेसं पुण दव्वदो भणिअं ।।१५।।

आलोचननिन्दनगर्हणाभिः अभ्युत्थितश्चाऽकरणाय ।
तद् भावप्रतिक्रमणं, शेषं पुनर्द्रव्यतो भणितम् ।।१५।।

स्व आलोचना के द्वारा प्रतिक्रमण करने में तथा पुनः दोष न करने में उद्यत साधु के भाव–प्रतिक्रमण होता है। शेष सब तो द्रव्य–प्रतिक्रमण है।

It after having confessed, blamed and condemned an offence committed by him (a monk) makes resolve not to repeat this offence in the future; it is a real repentance on his part-everything else done in this connection constitutes but a formal repentance. (431)

शाब्दिक रचना छोड़, कषायादि कर त्याग ।
आत्मध्यान करता वही, ले प्रतिक्रमण विराग ।।२.२७.१६.४३२।।

मोत्तूण वयण–रयणं, रागादी भाव–वारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं ।।१६।।

मुक्त्वा वचनरचनां, रागादिभाववारणं कृत्वा।
आत्मानं यो ध्यायति, तस्य तु भवतीति प्रतिक्रमणम् ।।१६।।

वचन–रचना मात्र को त्याग कर जो साधु रागादि भावों को दूर कर आत्मा को ध्याता है, उसी के पारमार्थिक प्रतिक्रमण होता है।

A monk who meditates upon his soul after renunciation of attachment and other passions, refraining from talking about them, practises repentance in the true sense. (432)

ध्यानलीन साधु रहे, सब दोषों को मार ।
ध्यान वही सर्वोच्च है, अतिचार प्रतिकार ।।२.२७.१७.४३३।।

झाण–णिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्व–दोसाणं ।
तम्हा दु झाण– मेव हि, सव्व–दिचारस्स पडिकमणं ।।१७।।

ध्याननिलीनः साधुः, परित्यागंक करोतिसर्वदोषाणाम् ।
तस्मात् तु ध्यानमेव हि, सर्वातिचारस्य प्रतिक्रमणम् ।।१७।।

ध्यान मे लीन साधु सब दोषों का परित्याग करता है। इसलिये ध्यान ही समस्त दोषों का प्रतिक्रमण है ।

A monk who becomes absorbed in meditation renounces all faults; therefore meditation alone is real repentance for all transgressions. (433)

जिनगुण का चिन्तन करे, उपयुक्त समय तक ध्यान ।
तन मोह का त्याग करे, कायोत्सर्ग महान ।।२.२७.१८.४३४।।

देविस्सियणियमादिसु, जहुत्तमाणेण उत्तकालम्हि ।
जिणगुणचिंतणजुत्तो, काउसग्गो तणुवसिग्गो।।१८।।

उैवसिकनियमादिषु, यथोक्तमानेन उक्तकाले।
जिनगुणचिन्तनयुक्तः, कायोत्सर्गस्तपनुविसर्गः ।।१८।।

उपयुक्त काल (२७ श्वासोच्छवास) तक जिनेन्द्र भगवान के गुणों का चिन्तन करते हुए शरीर का ममत्व त्याग देना कायोत्सर्ग नामक आवश्यक है।

At the time of daily ceremonials etc. the renunciation of attachment for one's own body at the prescribed time, for the prescribed period (for a period of 27 breathings or some other appropriate period) and with one's mind concentrated on the virtuous qualities of Jinas this is what constitutes kayotsarga (an immobile state of body). (434)

चेतन या अचेतन कृत, हो कोई उपसर्ग।
हर बाधा सहता श्रमण, जो स्थित कायोत्सर्ग ।।२.२७.१९.४३५।।

जे केइ उवसग्गा, देव-माणुस-तिरिक्खऽचेदणिया।
ते सव्वे अधिआसे, काओसग्गे ठिदो संतो ।।१९।।

ये केचनोपसर्गा, देवमानुष-तिर्यगचेतनिकाः।
तान्सर्वानध्यासे, कायोत्सर्गे स्थितः सन् ।।१९।।

कायोत्सर्ग में स्थित साधु देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्थञ्चकृत तथा अचेतनकृत होने वाले समस्त उपसर्गों (आपत्तियों) को समभावपूर्वक सहन करता है।

While performing the kayotsarga one ought to face patiently all the obstacles that might be placed in one's way by a god, a man, an animal, or by the inanimate nature. (435)

तज कर वचन विकल्प सब, शुभो-अशुभ अंजान।
आत्मा को ध्याता रहे, अवश्य प्रत्याखान ।।२.२७.२०.४३६।।

मोत्तूण-सयल-जप्प-मणागय-सुह-मसुह-वारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि, पंचक्खाणं हवे तस्स ।।२०।।

मुक्त्वा सकलजल्पम-नागतशुभाशुभनिवारणं कृत्वा।
आत्मानं यो ध्यायति, प्रत्याख्यानं भवेत् तस्य ।।२०।।

समस्त वाचनिक विकल्पों को त्याग करके तथा अज्ञात शुभ-अशुभ का निवारण करके जो साधु आत्मा को ध्याता है, उसके प्रत्याख्यान नामक आवश्यक होता है।

He who having given up all sorts of talking about and having detached himself from all future thought activities, good and evil; meditates upon his soul, practises renunciation of future evil acts, pratyakhyana in a true sense. (436)

नहीं छोड़ निज भाव को, पर-भाविक अंजान।
"मैं" ही ज्ञाता मैं दृष्टा, आत्मज्ञान का ध्यान ।।२.२७.२१.४३७।।

णिय-भावं णवि मुच्चइ, परभावं णेव गण्हए केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोहं इदि चिंतए णाणी।।२१।।

निजभावं नापि, मुञ्चति, परभावं नैव गृह्णाति कमपि।
जानाति पश्यति सर्वं, सोऽहम् इति चिन्तयेद् ज्ञानी ।।२१।।

जो निज भाव को नही छोड़ता और किसी भी पर भाव को ग्रहण नही करता तथा जो सबका ज्ञाता-द्रष्टा है, वह परम तत्त्व "मैं" ही हूँ। आत्मध्यान में लीन ज्ञानी ऐसा चिंतन करता है।

That, which never gives up its own nature, that which never assumes another one's nature, that which knows and sees everything whatsoever is 'I'. Thus should be the meditation of an intelligent person. (437)

मेरा जो दुश्चरित्र है, त्रिविध करता त्याग।
निर्विकल्प हो सामयिक, सबसे मिटता राग ।।२.२७.२२.४३८।।

जं किंचि मे दुच्चरितं सव्वं तिविहेण वोसरे।
सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं ।।२२।।

यत्किंचिन्मे दुश्चरित्रं, सर्वं त्रिविधेन विसृजामि।
सामायिकं तु त्रिविधं, करोमि सर्वं निराकारम् ।।२२।।

वह ऐसा भी विचार करता है कि जो कुछ भी मेरा दुश्चरित्र है, उस सबको मैं मन वचन कायपूर्वक तजता हूँ और निर्विकल्प होकर त्रिविध सामायिक करता हूँ।

He also thinks; "I fully renounce all my wrong/evil conduct from mind speech and body; and resort to (adopt) threefold equanimity of mind, speech and body (trividha-samayik) in a desire-less manner. (438)

प्रकरण २८ – तपसूत्र

Chapter 28-Precepts On Penance

कषायरोध ब्रह्मचर्य, जिनपूजन उपवास।
ये सब तप के भाग है, भक्तों का विश्वास ।।२.२८.१.४३९।।

जत्थ कसायणिरोहो, बंभं जिणपूयणं अणसणं च ।
सो सव्वो चेव तवो, विससेओ मुद्धलोयंमि ।।१।।

यत्र कषायनिरोधो, ब्रह्म जिनपूजनम् अनशनं च ।
तत् सर्वं चैव तपो, विशेषतः मुग्धलोके ।।१।।

जहाँ कषायों का निरोध, ब्रह्मचर्य का पालन, जिनपूजन तथा उपवास आत्मलाभ के लिये किया जाता है, वह सब तप है।

(A) Vahya-tapa (External Austerities) consists of prevention of passions, adoption of celibacy, worshiping andfasting (for the good of self). The devotees particularly adopt such austerities. (439)

आभ्यंतर व बाह्य हैं, तप के दोय प्रकार ।
दोनों के छह भाग हैं, अंतर बाह्य विचार ।।२.२८.२.४४०।।

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भंतरो तह ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भन्तरो तवो ।।२।।

तत् तपो द्विविधं उक्तं, बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
बाह्यं षड्विधं उक्तं, एवमाभ्यन्तरं तपः ।।२।।

तप दो प्रकार का है। बाह्य और आभ्यंतर। बाह्य व आभ्यअंतर तप छह–छह प्रकार के है।

Austerities are of two kinds: 1. External and 2. Internal The external austerities are of six kinds. Similar is the case with internal austerities; it is also of six kinds. (440)

ऊनोदरिका व अनशन, भिक्षा, रस-परित्याग।
कायक्लेश संलीनता, बाह्य तप के भाग ।।२.२८.३.४४१।।

अणसण-मूणोयरिया, भिक्खा-यरिय य रस-परिच्चाओ ।
काय-किलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ ।।३।।

अनशनमूनादेरिकाभिक्षाचर्या च रसपरित्यागः ।
कायक्लेशः संलीनता च, बाह्यं तपो भवति ।।३।।

अनशन, ऊनोदरिका, भिक्षाचर्या, रस-परित्याग, कायक्लेश और संलीनता- इस तरह बाह्य तप छह प्रकार के है।

The six kinds of External Austerities are : 1. Fasting; 2. Eating less than ones full (i.e. less than one has appetrl for); 3. Taking a mental vow to accept food from a house holder on the fulfilment of certain condition or conditions, without letting anyone know about the vow; 4. Renunciation of one or more six kinds of delicacies e.g. ghee etc. 5. Sitting and sleeping in lonely place or places devoid of animate

कर्मों का करना क्षय हो, त्याग करे आहार ।
यथाशक्ति दिन तय करे, अनशन तप आचार ।।२.२८.४.४४२।।

कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेइ लीलाए ।
एग-दिणादि पमाणं तस्स तवं अणसणं होदि ।।४।।

कर्मणां निर्जरार्थम्, आहारं परिहरति लीलया ।
एकदिनादिप्रमाणं, तस्य तपः अनशनं भवति ।।४।।

जो कर्मों की निर्जरा के लिये एक-दो दिन आदि का यथाशक्ति प्रमाण तय करके आहार का त्याग करता है, उनके अनशन तप होता है।

The austerity of fasting consists of the renunciation (abandonment) of food for the period of a day for the shake shedding karmas (Nirjara). (442)

वही तपस्वी आगम में, ज्ञान हेतु आहार।
श्रुतविहीन तप जो करे, भूख मृत्यु बेकार ।।२.२८.५.४४३।।

जे पयणुभत्तपाणा, सुयहेऊ ते तवस्सिणो समए ।
जो अ तवो सुयहीणो, बाहिरयो सो छुहाहारो ।।५।।

ये प्रतनुभक्तपानाः, श्रुतहेतोस्ते तपस्विनः समये ।
यच्च तपः श्रुतहीनं, बाह्याः स क्षुदाधार ।।५।।

जो स्वाध्याय के लिये अल्प आहार करते है वे ही आगम में तपस्वी माने गये है। श्रुतविहीन तप तो भूखे मरने जैसा है।

A monk who takes a little food for undertaking study of scriptures is said to be a tapasvi (i.e., one practising the penance), according to scriptures. The penance of fasting without scriptural study amounts only to starving. (443)

अनशन तप सब है वही, अचिन्त अमंगल जान।
शिथिल नहीं हों इंद्रियाँ, बचे योग में जान ।।२.२८.६.४४४।।

सो नाम अणसणतवो, जेण मणोऽमंगुलं न चिंतेइ ।
जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा न हायंति ।।६।।

तद् नाम अनशनतपो, येन मनोऽमङ्गलं न चिन्तयति ।
येन नेन्द्रियहानि–र्येन च योगा न हीयन्ते ।।६।।

वास्तव में वही अनशन तप है जिसमें अमंगल की चिंता न हो, इन्द्रियों की शिथिलता न हो तथा मन वचन काय रूप योगों में गिरावट न हो।

Fasting is penance when the person observing it does not entertain any inauspicious thoughts, when it does not result in bodily weakness, and when the activities of mind, speech and body remain unimpaired. (444)

बल तेज़ श्रद्धा परखे, लेए रोग संज्ञान।
क्षेत्र काल को जान, करें उपवास प्रतिज्ञान ।।२.२८.७.४४५।।

बलं थामं च पेहाए, सद्धामारोग्गमप्पणो ।
खेत्तं कालं च विन्न्य, तहप्पाणं निजुंजए ।।७।।

बलं स्थाम च प्रेक्ष्य श्रद्धाम् आरोग्यम् आत्मनः ।
क्षेत्रं कालं च विज्ञाय तथा आत्मानं नियुञ्जीत ।।७।।

अपने बल, तेज, श्रद्धा तथा आरोग्य का निरीक्षण करके तथा क्षेत्र और काल को जानकर अपने को उपवास में नियुक्त करना चाहिये।

One should adopt fasting after having properly taken into consideration and weighed one's own strength/capacity energy, faith and health and having in view the region and the time; (because over-fasting is harmful). (445)

इन्द्रियों का उपशमन, कहलाता उपवास।
भोज करे जितेन्द्रिय भी, अनशन तप का वास ।।२.२८.८.४४६।।

उवसमणो अक्खाणं उववासो वण्णिदो समासेण ।
तम्हा भुंजंता वि य जिदिंदिया होंति उववासा ।।८।।

उपशमनम् अक्षाणाम्, उपवासः वर्णितः समासेन ।
तस्मात् भुञ्जानाः अपि च, जितेन्द्रियाः भवन्ति उपवासाः।।८।।

संक्षेप में इन्द्रियों के उपशमन को ही उपवास कहा गया है। अतः जितेन्द्रिय भोजन करते हुए भी उपवासी ही होते हैं।

In short, subjugation of senses is also described as fasting; therefore those who have conquered their senses are said to be fasting, though they may be taking food. (446)

अज्ञानी का शुद्धीकरण, व्रत करके दो चार।
ज्ञानी चाहे नित्य चखे, निर्मल अधिक विचार ।।२.२८.९.४४७।।

छट्ठ-ट्ठम-दसम-दुवालसेहं अबहुसुयस्स जा सोही ।
तत्तो बहुतर-गुणिया, हविज्ज जिमियस्स णाणिस्स ।।९।।

षष्ठाष्टमदशमद्वादशै-रबहुश्रुतस्य या शुद्धिः ।
ततो बहुतरगुणिता, भवेत् जिमितस्य ज्ञानिनः ।।९।।

अज्ञानी तपस्वी की जितनी शुद्धि दो-चार दिनों के उपवास से होती है उससे बहुत अधिक शुद्धि नित्य भोजन करने वाले ज्ञानी की होती है।

The purity (of self) achieved by one who is well versed in scriptures, though regularly takes food, would be many times more than the purity of a person who is ignorant of scriptures, though he may fast for two, three, four or five days. (447)

भोजन जितना कर सके, थोड़ा कम आहार।
द्रव्यरूप ऊणोदरी, बाह्य तप आकार ।।२.२८.१०.४४८।।

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे ।
जहन्नेणेग-सित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे ।।१०।।

यो यस्य त्वाहारः, ततोऽवमं तु यः कुर्यात् ।
जघन्येनैकसिक्थादि, एवं द्रव्येण तु भवेत् ।।१०।।

जो जितना भोजन कर सकता है उससे कम भोजन करना द्रव्यरूपेण ऊनोदरी तप है।

A person, who takes food less even by a morsel than his usual diet, is said to practise penance called formal unodari (partial fasting). (448)

नियम समय आहार ले, हो भिक्षा का भाव ।
विविध वृत्तिपरिसंख्य ये तप को होत प्रभाव।।२.२८.११.४४९।।

गोयर-पमाण-दायग-भायण-माणा-विहाण जं गहणं ।
तह एसणस्स गहणं, विविहस्स य वुत्ति परिसंखा ।।११।।

गोचरप्रमाणदायक-भाजननानाविधानं यद् ग्रहणम् ।
तथा एषणीयस्य ग्रहणं, विविधस्यच वृत्तिपरिसंख्या ।।११।।

सीमा तय कर भोजन ग्रहण करना वृत्तिपरिसंख्यान नामक तप है।

If one procures alms after having taken various sorts of decisions as to their amount, their donor, their containing-vessel or as to their various types of contents, one performs the penance called vittiparisankhyana i. e. limiting the things begged for. (449)

घी दूध या हो दही, पौष्टिक भोजन त्याग ।
साधु ऐसा जो करते, व्रत से रस परित्याग ।।२.२८.१२.४५०।।

खीर-दहि-सप्पिमाई, पणीतं पाणभोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविज्जणं ।।१२।।

क्षीरदधिसर्पिरादि, प्रणीतं पानभोजनम् ।
परिवर्जनं रसानां तु, भणितं रसविवर्जनम्।।१२।।

दूध दही घी आदि पौष्टिक भोजन के त्याग को रस परित्याग नाम तप कहा गया है।

A monk who avoids delicious food like milk, curds, butter and taking his food on leaf, practises the penance of rasaparityaga (renunciation of delicious dishes). (450)

स्थान चुने एकान्त सा, वर्जित नर और नार ।
शयनासन करके ग्रहण, प्रतिसंलीनता सार ।।२.२८.१३.४५१।।

एगंत-मणावाए, इत्थी-पसु-विवज्जिए ।
सयणासण-सेवणया, विवित्त-सयणासणं ।।१३।।

एकान्तेऽनापाते, स्त्रीपशुविवर्जिते ।
शयनासनसेवनता, विविक्तशयनासनम् ।।१३।।

एकान्त तथा स्त्री-पुरुषादि से रहित स्थान में शयन व आसन ग्रहण करना विविक्त-शयनासन (प्रतिसंलीनता) नामक तप है।

The "viviktasayyasan- tapa" of a saint consists of his sitting and sleeping in a lonely place, devoid of men and women, which is (most often) not visited by persons (Anapta). (451)

वीरासनादि मांडकर सुतप तपें भयकार ।
कायक्लेश तप ये कहे, आत्मा को सुखकार ।।२.२८.१४.४५२।।

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्सउ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति, कायकिलेसं तमाहियं ।।१४।।

स्थानानि वीरासनादीनि, जीवस्य तु सुखावहानि।
उग्राणि यथा धार्यन्ते, कायक्लेशः स आख्यातः ।।१४।।

पहाड़ गुफा आदि भयंकर स्थानों में आत्मा के सुख के लिये विविध आसनों का अभ्यास करना काया क्लेश नामक तप है।

The "kaya-kleshatapa" of a saint consists of practising the exercises of postures (such as virasan) in dangerous places like forests, caves etc. exercises, that please the soul. (452)

ज्ञान जब सुख से मिले, दुख आने से नाश ।
कायक्लेश से तप करे, मिलता ज्ञान प्रकाश ।।२.२८.१५.४५३।।

सुहेण-भाविंद णाणं, दुहे जादे विणस्सादि।
तम्हा जहाबलं जोई, अप्पा दुक्खेहि भावए ।।१५।।

सुखेन भावितं ज्ञानं, दुःखे जाते विनश्यति ।
तस्मात् यथाबलं योगी, आत्मानं दुःखैः भावयेत् ।।१५।।

सुखपूर्वक प्राप्त ज्ञान दुख आने पर नष्ट हो जाता है। योगी को अपनी शक्ति अनुसार कायक्लेशपूर्वक आत्मचिन्तन करना चाहिये।

The knowledge, acquired with ease (comfortably) disappears/ vanishes, on the arrival of (at the occasion of) distress or discomforts (Dukha). That is why, an ascetic should, concentrate on self, by means of self-inflicted pains so long as the mind is not disturbed. (453)

सुख व दुख हेतु नहीं, चिकित्सा करते रोग ।
होगा सुख या दुख भले, चिकित्सा है ये योग ।।२.२८.१६.४५४।।
मोह क्षय भी इसी तरह, सुख या दुख तो नाम ।
मोह क्षय भी हेतु नहीं, सुख या दुख परिणाम ।।२.२८.१७.४५५।।

ण दुक्खं ण सुखं वा वि, जहाहेतु तिगिच्छिति।
तिगिच्छिए सुजुत्तस्स, दुक्खं वा जइ वा सुहं ।।१६।।
मोहक्खए उ जुत्तस्स, दुक्खं वा जइ वा सुहं।
मोहक्खए जहाहेउ, न दुक्खं न वि वा सुहं ।।१७।।

न दुःखं न सुखं वाऽपि यथाहेतु चिकित्सति।
चिकित्सते सुयुक्तस्य दुःखं वा यदि वा सुखम् ।।१६।।
मोहक्षये तु युक्तस्य, दुःखं वा यदि वा सुखम्।
मोहक्षये यथाहेतु, न दुःखं नाऽपि वा सुखम् ।।१७।।

चिकित्सा कराने पर रोगी को दुख भी हो सकता है और सुख भी उसी तरह मोह के क्षय में सुख और दुख दोनों हो सकते हैं।

Neither an experience of pain nor an experience of pleasure is an appropriate cause for curing an ailment but one who conducts one's life well, gets cured either by way of pain or by way of pleasure. Likewise, one engaged in putting an end to one's delusion might experience either pain or pleasure but neither pain nor pleasure is what puts an end to one's delusion. (454 & 455)

प्रायश्चित और विनय सह, वैयावृत्य स्वाध्याय।
ध्यान और व्युत्सर्ग भी, आभ्यन्तर तप थाय ।।२.२८.१८.४५६।।

पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं।
झाणं च विउस्सग्गो, अब्भंतरओ तवो एसो ।।१८।।

प्रायश्चित्तं विनयः, वैयावृत्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं च व्युत्सर्गः, एतदाभ्यन्तरं तपः ।।१८।।

आभ्यंतर तप भी छह प्रकार के हैं। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

The internal austerities are of six kinds : 1. Expiation; 2. Reverence; 3. Service of saint (worthy people) 4. Study; 5. Giving up attachment to the body; and 6. Meditation. (456)

शील समिति संयम व्रत, इन्द्रियनिग्रह भाव।
प्रायश्चित तप है यही, कर्तव्य सतत स्वभाव ।।२.२८.१९.४५७।।

वद-समिदि-सील-संजम-परिणामो करण-णिग्गहो भावो।
सो हवदि पायच्छित्तं, अणवरयं चेव कायव्वो ।।१९।।

व्रत-समिति-शील-संयम-परिणामः करणनिग्रहो भावः।
स भवति, प्रायश्चित्तम्, अनवरतं चैव कर्तव्यः ।।१९।।

व्रत, समिति, शील, संयम तथा इंद्रिय निग्रह का भाव ये सब प्रायश्चित तप हैं, जो निरन्तर कर्तव्य नित्य करणीय है।

The internal austerity of Expiation includes vows, carefulnesses, conduct, thought natures of Restraint and thought actions of sense control which are to be constantly observed or followed. (457)

क्रोध आदि निज भाव में, क्षय का रखते ध्यान।
निजगुण चिंतन हो जहाँ, प्रायश्चित ही जान ।।२.२८.२०.४५८।।

कोहादि-सग-ब्भाव-क्खय-पहुदि-भावणाए णिग्गहणं।
पायच्छित्तं भणिदं, णिय-गुण-चिंता य णिच्छयदो।।२०।।

क्रोधादि-स्वकीयभाव-क्षयप्रभृति-भावनायां निग्रहणम्।
प्रायश्चित्तं भणितं, निजगुणचिन्ता च निश्चयतः ।।२०।।

क्रोध आदि स्वकीय भावों के क्षय की भावना रखना तथा निजगुणो का चिंतन करना निश्चय प्रायश्चित तप है।

Thinking of controlling anger and other thoughts, passification of intense thoughts, contemplation of one's own virtues, these constitute atonement from the real view-point. (458)

अनन्त भव, अर्जित करम, शुभ अशुभ का नाश।
मार्ग तपस्या ही करे, प्रायश्चित तप खास ।।२.२८.२१.४५९।।

णंता-णंत-भवेण, समज्जिअ-सुह-असुह-कम्म-संदोहो।
तव-चरणेण, विणस्सदि, पायच्छित्तं तवं तम्हा ।।२१।।

अनन्तानन्तभवेन, समर्जित-शुभाशुभकर्म्मसन्दोहः।
तपश्चरणेन विनश्यति, प्रायश्चित्तं तपस्तस्मात् ।।२१।।

अनन्तान्त भवों में उपर्जित शुभ-अशुभ कर्मों का नाश तपस्या से होता है। अतः तपस्या करना प्रायश्चित है।

The multitude of auspicious and inauspicious Karmas accumulated during endless transmigration can be destroyed by practice of penances; so, the atonement (expiation) is called the penance. (459)

आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, व्युत्सर्ग, विवेक ।
छेद, मूल, परिहार, तप, प्रायश्चित दस नेक ।।२.२८.२२.४६०।।

आलोयण पडिकमणं, उभयविवेगो तहा विउस्सगो ।
तव छेदो मूलं वि य परिहारो चेव सद्दहणा ।।२२।।

अलोचना प्रतिक्रमणं, उभयविवेकः तथा व्युत्सर्गः ।
तपःछेदो मूलमपि च, परिहारः चैव श्रद्धानं ।।२२।।

प्रायश्चित दस प्रकार का है। स्व-आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार तथा श्रद्धान।

The Expiation is of ten kinds : 1. Full and voluntary confession to the Head of the order (Alochana); 2. Self analysis and repentance for faults (pratikramana); 3. Doing both (ubaya); 4. Giving up a much abandonment of beloved object (e.g. particular food or drink) (vivka); 5. Giving up attachment with the body (vyutsarga); 6. Austerities of a particular kind prescribe in a penance (tapa); 7. Cutting short the standing of a saint by way of degradation (chheda); 8. Out rooting the standing of a saint (muta); 9. Rustication for some time (parihar); and 10. Fresh readmission after expulsion from the order (upasthpana). (460)

अनाभोगकृत कर्म रहे सार्वजनिक या काम ।
दोनो की आलोचना करना गुरु के धाम ।।२.२८.२३.४६१।।

अणाभोग-किदं कम्मं, जं किं वि मणसा कदं ।
तं सव्वं आलोचेज्ज हु, अव्वाखित्तेण चेदसा ।।२३।।

अनाभोगकृतं कर्म, यत्किमपि मनसा कृतम् ।
तत्सर्वमालोचयेत् खलु अव्याक्षिप्तेन चेतसा ।।२३।।

दूसरों द्वारा जाने गये कर्म आभोगकृत व न जाने गये कर्म अनाभोगकृत कर्म हैं। दोनों प्रकार के कर्मों की आलोचना अपने गुरु से करनी चाहिये।

An evil act done unintentionally or intentionally all this has to be confessed with an unperturbed mind. (461)

बालक अपने काम को, माँ को देत बताय ।
कर स्वदोष आलोचना, साधु सम्मुख आय ।।२.२८.२४.४६२।।

जह बालो जपन्तो, कज्जमकज्जं च उज्जुयं भणइ।
तं तह आलोइज्जा, माया-मय-विप्पमुक्को वि ।।२४।।

यथा बालो जल्पन् कार्यमकार्यं च ऋजुकं भणति।
तत् तथाऽऽलोचेन्मायामदविप्रमुक्त एव ।।२४।।

जैसे बालक अपने कार्य को माता के समक्ष व्यक्त कर देता है वैसे ही साधु के समक्ष अपने दोषों की आलोचना माया व मद त्याग कर करनी चाहिये ।

Just as a child speaks of its good and bad acts in a straight-forward manner to mother, similarly one ought to confess one's guilt with a mind free from deceit and pride. (409)

काँटा चुभने पर जहाँ, पीड़ा का हो भान ।
निकले काँटा देह से, लगता सब आसान।।२.२८.२५.४६३।।
प्रकट करे नहीं दोष को, मायावी दुख भोग ।
गुरु से निज आलोचना, विशुद्ध सुखी सब रोग ।।२.२८.२६.४६४।।

जह कंटएण विद्धो, सव्वंगे वेयणट्टिओ होइ।
तह चेव उद्धियम्मि उ, निस्सल्लो निव्वुओ होइ ।।२५।।
एवमणुद्धिय दोसो, माइल्लो तेणं दुक्खिओ होइ।
सो चेव चत्तदोसो, सुविसुद्धो निव्वुओ होइ ।।२६।।

यथा कण्टकेन विद्धः, सर्वाङ्गे वेदनार्दितो भवति।
तथैव उद्धृते तु निश्शल्यो निर्वृतो भवति ।।२५।।
एवमनुददृतदोषो, मायावी तेन दुःखितो भवति।
स एव त्यक्तदोषः, सुविशुद्धो निर्वृतो भवति ।।२६।।

जैसे काँटा चुभने पर पीड़ा निकलने पर सुख अनुभव होता है वैसे ही स्व आलोचना साधु के समक्ष कर देने पर शुद्धि प्राप्त होती है।

He who is pricked by a thorn feels the pain all over his body (but) becomes free from such pain when the thorn is removed. Similarly, he who hides his faults fraudulently, becomes miserable; he who confesses his faults honestly becomes pure and free from mental affliction. (463 & 464)

स्थापित हो परिणाम में, देख आत्म समभाव।
ज्ञान यही आलोचना, जिन उपदेश प्रभाव ।।२.२८.२७.४६५।।

जो पस्सदि अप्पाणं सम-भावे संठवित्तु परिणामं ।
आलोयण-मिदि जाणह, परम-जिणंदस्स उवएसं ।।२७।।

यः पश्यत्यात्मानं, समभावे संस्थाप्य परिणामम्।
आलोचनमिति जानीत, परमजिनेन्द्रस्योपदेशम् ।।२७।।

जिनदेव का कहना है कि अपने परिणामों को समभाव में स्थापित करके आत्मा को देखना ही आलोचना है।

He who realises his own soul after attaining mental equanimity achieves confession, know this to be the advice of the supreme Jina. (465)

हाथ जोड़कर हो खड़े, उच्चासन बैठाय।
गुरु भक्ति सेवा करे, तप वो विनय कहाय ।।२.२८.२८.४६६।।

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं तहेवासणदायणं।
गुरु-भत्ति-भाव-सुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ।।२८।।

अभ्युत्थानमञ्जलिकरणं, तथैवासनदानम्।
गुरुभक्तिभावशुश्रूषा, विनय एष व्याख्यातः ।।२८।।

गुरु व वृद्ध जनों के समक्ष आने पर खड़े होना, हाथ जोड़ना व उन्हें उच्च आसन देना, भक्ति करना व सेवा करना विनय तप है।

To get up at the arrival of an elder to welcome him with folded hands, to offer him (an honoured) seat, to serve him with feeling of devotedness, these constitute humility. (466)

औपचारिक ज्ञान, तप, दर्शन, चरित्र, प्रकार ।
पाँच भेद हैं विनय के, ले जाते भव पार ।।२.२८.२९.४६७।।

दंसण-णाणे विणओ चरित्त-तव-ओवचारिओ विणओ ।
पंचविहो खलु विणओ पंचम-गइ-णायगो भणिओ ।।२९।।

दर्शनज्ञाने विनय-श्चारित्रतप-औपचारिको विनयः ।
पञ्चविधः खलु विनयः पञ्चमगतिनायको भणितः ।।२९।।

दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय और औपचारिकविनय- ये विनय तप के पाँच भेद है जो मोक्ष की ओर ले जाते है।

Humility is of five kinds; humility in faith, in knowledge, in conduct, in penance and in decorum or etiquette, these lead to liberation, i.e. the fifth state. (467)

तिरस्कार हो एक का, सब पर है यह वार ।
करता पूजा एक की, सब पूजे संसार ।।२.२८.३०.४६८।।

एकम्मि हीलियम्मि, हीलिया हुंति ते सव्वे ।
एकम्मि पूइयम्मि, पूइया हुंति सव्वे ।।३०।।

एकस्मिन् हीलिते, हीलिता भवन्ति सर्वे ।
एकस्मिन् पूजिते, पूजिता भवन्ति सर्वे ।।३०।।

एक के तिरस्कार में सब का तिरस्कार होता है और एक की पूजा में सब की पूजा होती है।

If one (elder) is insulted, it amounts to an insult to all; if one is venerated, all of them are venerated. (468)

जिन शासन की जड विनय, संयम तप के भाव ।
विनय रहित को क्या कहे, तप और धर्म अभाव ।।२.२८.३१.४६९।।

विणओ सासणे मूलं, विणीओ संजओ भवे ।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो? ।।३१।।

विनयः शासने मूलं, विनीतः संयतः भवेत् ।
विनयात् विप्रमुक्तस्य, कुतो धर्मः कुतः तपः? ।।३१।।

विनय जिनशासन का मूल है। संयम तथा तप से विनीत बनना चाहिये। जो विनय से रहित है उसका कैसा धर्म और कैसा तप?

Humility is the basic (virtue) according to Jaina scripture; a person of humility acquires selfrestratint. What conduct and austerities can be observed by him, who lack humility. (469)

विनय मोक्ष का द्वार वो, संयम तप और ज्ञान ।
विनीत गुरु आराधना, सकल संघ सम्मान ।।२.२८.३२.४७०।।

विणओ मोक्खद्दारं, विणयादो संजमो तवो णाणं ।
विणएणा-राहिज्जइ, आयरिओ सव्वसंघो य ।।३२।।

विनयो मोक्षद्वारं, विनयात् संयमस्तपो ज्ञानम् ।
विनयेनाराध्यते, आचार्यः सर्वसंघश्च ।।३२।।

विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से संयम, तप, तथा ज्ञान प्राप्त होता है। विनय से आचार्य तथा सर्वसंघ की आराधना होती है।

Humility is the gateway to liberation; through humility one acquires self-restraint, penance and knowledge. By humility one honours the Acarya and the Sangh (i.e. the entire community of religious people). (470)

विनय से जो विद्या मिले, फलदायिनी त्रिलोक ।
विनयविहीन सफल नहीं, जल बिन धान न लोक ।।२.२८.३३.४७१।।

विणयाहीया विज्जा, देंति फलं इह परे य लोगम्मि ।
न फलंति विणयहीणा, सस्साणि व तोयहीणाइं ।।३३।।

विनयाधीताः विद्याः, ददति फलम् इह परत्र च लोके ।
न फलन्ति विनयहीनाः, सस्यानीव तोयहीनानि ।।३३।।

विनयपूर्वक प्राप्त की गयी विद्या इस लोक तथा परलोक में फलदायिनी होती है और विनयविहीन विद्या फलप्रद नही होती जैसे बिना जल के धान्य नही उपजता।

Learning acquired with humility proves fruitful in this world and in the other world; just as a plant cannot grow without water, learning will not be fruitful without humility. (471)

विनय कभी ना छोड़िये, करें प्रयत्न हज़ार ।
अल्पश्रुती भी विनय से, कर्म झराए अपार ।।२.२८.३४.४७२।।

तम्हा सव्व-पयत्तेण, विणयत्तं मा कदाइ छंडिज्जो ।
अप्प-सुदो वि य पुरिसो खवेदि कम्माणि विणएण ।।३४।।

तस्मात् सर्वप्रयत्ने, विनीतत्वं मा कदाचित् छर्दयेत् ।
अल्पश्रुतोऽ पि च पुरुषः, क्षपयति कर्माणि विनयेन ।।३४।।

इसलिये हर तरह से विनय को कभी नही छोड़ना चाहिए। अल्पश्रुत का अभ्यासी पुरुष भी विनय के द्वारा कर्मों का नाश करता है।

Therefore, one should not abandon humility at any cost. Even a person with less scriptural knowledge can annihilate his Karmas, if he has humility. (472)

शय्या, वसति, आसन धरे, सेवा संत प्रतिलेख ।
भोजन, औषधि, वाचना, वैयावृत्य तप देख ।।२.२८.३५.४७३।।

सेज्जा-गास-णिसेज्जा उवधीपडिलेहणा उवग्गहिदे।
आहारो-सह-वायण- विकिंचणुव्वत्तणादीसु ।।३५।।

शय्यावकाशनिषद्या, तथा उपधिप्रतिलेखनाभि:उपगृहीते।
आहारौषधवाचना-विकिंचन वन्दनादिभि: ।।३५।।

शय्या, वसति, आसन तथा प्रतिलेखन से उपकृत साधुजनों की आहार, औषधि, वाचना, मल-मूल विसर्जन तथा वन्दना आदि से सेवा-सुश्रुषा करना वैयावृत्य तप है।

The service to a monk (vaiyavrttya) consists in providing him bed, residence, seat, proper cleaning of his implements etc. and then arranging for his food, medicine, a reading of scriptural text, a proper disposal of refuse with propers respect. (473)

चोर व राजा पशु नदी, थके व रोगी लोग ।
सेवा और रक्षा करे, वैयावृत्य तप योग ।।२.२८.३६.४७४।।

अद्धाण-तेण-सावद-रय-णदी-रोधणा-सिवे ओमे।
वेज्जावच्चं उत्तं, संगह-सारक्खणो-वेदं ।।३६।।

अध्वस्तेनश्वापद-राजनदीरोधनाशिवे अवमे ।
वैयावृत्यमुक्तं, संग्रहसंरक्षणोपेतम् ।।३६।।

जो मार्ग में चलने से थक गये हैं, चोर हिंसक पशु, राजा द्वारा व्यथित, नदी की रुकावट, मरी आदि रोग तथा दुर्भिक्ष से रक्षा व सार-सम्हाल करना वैयावृत्य है।

Offering protection to and taking care of a monk who becomes fatigued on his way, is threatened by a thief, a wild animal, a king or obstructed by river or gets afflicted by a contagious disease or famine, is service to a monk (vaiyavrttya). (474)

परिवर्तन पूछे पढ़े, चिंतन, कथा विचार ।
मंगलपूर्वक स्तुति करे, स्वाध्याय प्रकार ।।२.२८.३७.४७५।।

परियट्टणा य वायण, पडिच्छणा- णुवेहणा य धम्मकहा ।
थुदि-मंगल-संजुत्तो, पंचविहो होइ सज्झाओ ।।३७।।

परिवर्तना च वाचना, पृच्छानाऽपुनप्रेक्षणा च धर्मकथा ।
स्तुतिमङ्गलसंयुक्तः, पञ्चविधो भवति स्वाध्यायः ।।३७।।

स्वाध्याय तप पाँच प्रकार का है। परिवर्तना, वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा और स्तुति मंगलपूर्वक धर्म कथा करना।

Study of scriptures (svadhyaya) is of five kinds : (1) reading of scriptural text (2) questioning (3) repitition (4) pondering over and (5) narration of religious discourses opening with auspicious praise (of Jina). (475)

आदर की इच्छा नहीं, भक्तिपूर्वक ज्ञान ।
कर्म रूपी मल शोधन को , श्रुतलाभ सुखद जान ।।२.२८.३८.४७६।।

पूयदिसु णिरवेक्खो, जिण-सत्थं जो पढेइ भत्तीए।
कम्ममल-सोहणट्ठं, सुयलाहो सुहयरो तस्स ।।३८।।

पूजादिषु निरपेक्षः, जिनशास्त्रं यः पठति भक्त्या ।
कर्ममलशोधनार्थं, श्रुतलाभः सुखकरः तस्य ।।३८।।

आदर सत्कार की अपेक्षा से रहित होकर जो कर्मरूपी मल को धोने के लिये भक्तिपूर्वक जिनशास्त्रों को पढ़ता है, उसका श्रुतलाभ स्व-पर सुखकारी होता है।

He who studies scriptures with devotion without any desire for personal praise and honour or purging of his Karmic pollution, will have the benefit of scriptural knowledge conducive to his happiness. (476)

जानता स्वाध्याय को, पंचेन्द्रिय कमान ।
त्रिगुप्तिमय एकाग्रमन, साधु विनय पहचान ।।२.२८.३९.४७७।।

सज्झायं जाणंतो, पंचिंदियसंवुडो तिगुत्तो य।
होइ य एकग्गमणो, विणएण समाहिओ साहू ।।३९।।

स्वाध्यायं जानानः, पञ्चेन्द्रियसंवृतः त्रिगुप्तः च।
भवति च एकाग्रमनाः, विनयेन समाहितः साधुः ।।३९।।

स्वाध्यायी पाँचों इन्द्रियों से संयत, तीन गुप्तियों से युक्त, विनय से समाहित तथा एकाग्रमन होता है।

A monk who has studied the scriptures keeps his five sense organs under control, practises the three guptis i.e. the control over one's speech and body, concentrates his mind and observes humility. (477)

ध्यान–सिद्धि है ज्ञान से, कर्म–ध्यानसे कर्मनाश ।
निर्जराफल मोक्ष करे, सतत ज्ञान अभ्यास ।।२.२८.४०.४७८।।

णाणेण–झाण–सिज्झी, झाणादो सव्व–कम्म–णिज्जरणं।
णिज्जरणफलं मोक्ख, णाणब्भासं तदो कुज्जा ।।४०।।

ज्ञानेन ध्यानसिद्धिः ध्यानात् सर्वकर्मनिर्जरणम् ।
निर्जरणफलं मोक्षः ज्ञानाभ्यासं ततः कुर्यात् ।।४०।।

ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है। ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा का फल मोक्ष है। अतः सतत ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

Perfect meditation is attained through knowledge and destruction of Karmas by meditation; liberation is the fruit of destruction of Karmas; hence; one should be engaged constantly in acquisition of knowledge. (478)

अन्तर्बाह्य बारह तप, तप स्वाध्याय महान।
है, ना होगा, ना हुआ, महिमा इसकी जान ।।२.२८.४१.४७९।।

बारसविहम्मि वि तवे, अब्भिंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।
न वि अत्थि वि होही, सज्झायसमं तवोकम्मं ।।४१।।

द्वादशविधेऽपि तपसि, साभ्यन्तरबाह्ये कुशलदृष्टे।
नापि अस्ति नापि च भविष्यति, स्वाध्यायसमं तपः कर्म ।।४१।।

बाह्याभ्यंतर बारह तपों में स्वाध्याय के समान तप न तो है, न हुआ है न होगा।

Among the twelve penances, internal and external which are experienced by one wise person, there is no penance, that equals or will be equal to the study of scriptures. (479)

शयन आसन स्थान में, कायिक ना व्यापार।
कायोत्सर्ग है तप छठा, कर ले साधु विचार ।।२.२८.४२.४८०।।

सयणासण–ठाणे वा, जे उ भिक्खू न वावरे।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकत्तिओ ।।४२।।

शयनासनस्थाने वा, यस्तु भिक्षुर्न व्याप्रियते ।
कायस्य व्युत्सर्गः, षष्ठः स परिकीर्तितः ।।४२।।

भिक्षु का शयन, आसन और खड़े होने में व्यर्थ का कायिक व्यापार न करना, काष्ठवत रहना, छठा कायोत्सर्ग तप है।

A monk who makes no movements of his body while sleeping, sitting or standing and checks all activities of his body is said to observe the sixth penance of bodily steadiness (Kayotsarg). (480

कायोत्सर्ग देहमति, जड़ता करे विनाश ।
अनुप्रेक्षा, एकाग्रता व सहनशक्ति विकास ।।२.२८.४३.४८१।।

देहमइजड्डसुद्धी सुहदुक्खतितिक्खया णुप्पेहा ।
झायइ य सुहं झाण, एगग्गो काउसग्गम्मि ।।४३।।

देहमति जाड्यशं सुखदुःख तितिक्षता अनुप्रेक्षा ।
ध्यायति च शुभं ध्यानम् एकाग्रः कायोत्सर्ग ।।४३।।

कायोत्सर्ग के लाभ : १. देह की जड़ता नष्ट होती है। २. बुद्धि की जड़ता नष्ट होती है । ३. सुख दुख सहने की शक्ति का विकास होता है । ४. भावनाओं का समुचित नियंत्रण होता है । ५. चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है ।

The benefits of practising meditation with bodily steadiness are: removal of bodily and mental lethargy, development of capacity to bear pain as well as pleasure, acquisition of deep reflection, and enhanced power of concentration in pure meditation. (481)

महाकुल का तप अशुद्ध, इच्छा तप सत्कार ।
नहीं ख़बर ना प्रशंसा, तप का नहीं प्रचार ।।२.२८.४४.४८२।।

तेसिं तु तवो ण सुद्धो निक्खंता जे महाकुला ।
जं नेवन्नो वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जइ ।।४४।।

तेषामपि तपो न शुद्धं, निष्क्रान्ताः ये महाकुलाः ।
यद् नैवाऽन्येविजानन्ति, न श्लोकं प्रवेदयेत् ।।४४।।

पूजा सत्कार के लिये जो तप करते है वो व्यर्थ है ।तप इस तरह से करना चाहिये की दूसरे लोगों को पता न चले । अपने तप की प्रशंसा नही करनी चाहिये ।

The penance of those who are born in noble families and have renounced their homes will not be pure, if they practise it for praise and honour; those who desire to attain purity must practise penance unnoticed and without any desire for praise. (482)

ज्ञानवायु शील प्रज्वलित, तप की लगती आग।
कर्मबीज सारे जलें, घास जले वन आग ।।२.२८.४५.४८३।।

नाणमयवायसहिओ, सीलुज्जलिओ तवो मओ अग्गी ।
संसारकरणबीयं, दहइ दवग्गी व तणरासिं ।।४५।।

ज्ञानमयवातसहितं, शीलोज्ज्वलितं तपो मतोऽग्निः ।
संसारकरणबीजं, दहति दवाग्निरिव तृणराशिम् ।।४५।।

ज्ञानमयी वायु तथा शील द्वारा प्रज्वलित अग्नि कर्म बीज को वैसे ही जला डालती है, जैसे वन में लगी आग घास को।

The fire of penance which is set ablaze by righteous character when combined with the wind of Right knowledge, will burn the seed of karma which is the cause of mundane existence, like a forest-fire which burns heap of grass. (483)

प्रकरण २९ – ध्यानसूत्र

Chapter 29-Precepts On Meditation

शीश श्रेष्ठ शरीर में, जड़ पेड़ का मूल।
मुनि धरम बस ध्यान में, साधु कभी ना भूल।।२.२९.१.४८४।।

सीसं जहा सरीरस्स, जहा मूलं दुमस्स य ।
सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते ।।१।।

शीर्षं यथा शरीरस्य यथा मूलं द्रुमस्य च ।
सर्वस्य साधुधर्मस्य तथा ध्यानं विधीयते ।।१।।

जैसे मनुष्य शरीर में सिर श्रेष्ठ और वृक्ष में जड़ उत्कृष्ट है वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है।

Just as the most prominent part of a man's body is head and that of a tree e is root; similarly the most prominent part of a saint conduct is meditation (Dhayana). (484)

ये मन की एकाग्रता, होती सदा सुध्यान।
चित्त भावना चंचलता, अनुप्रेक्षा प्रधान ।।२.२९.२.४८५।।

जं थिरमज्झवसाणं, तं झाणं जं चलंतयं चित्तं ।
तं होज्ज भावणा वा, अणुपेहा वा अहव चिंता ।।२।।

यत् स्थिरमध्यवसानं, तद् ध्यानं यत् चलत्कं चित्तम् ।
तद् भवेद् भावना वा, अनुप्रेक्षा वाऽथवा चिन्ता ।।२।।

मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है। चित्त की चंचलता के तीन रूप हैं। भावना, अनुप्रेक्षा और चिन्ता।

A steady state of mind constitutes meditation while an active mind might be engaged in either contemplation or deep reflection or thinking. (485)

घुले नीर में लवण सम, चित्त विलय हो ध्यान।
शुभ–अशुभ हो कर्म दहन, आत्म प्रकाश महान ।।२.२९.३.४८६।।

लवण–व्व सलिल–जोए, झाणे चित्तं विलीयए जस्स ।
तस्स सुहा–सुह–डहणो, अप्पा–अणलो पयासेइ ।।३।।

लवणमिव सलिलयोगे, ध्याने चित्तं विलीयते यस्य ।
तस्य शुभाशुभदहनो, आत्मानलः प्रकाशयति ।।३।।

जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है वैसे ही जिसका चित्त निर्विकल्प समाधि में लीन हो जाता है उसकी चिरसंचित शुभाशुभ कर्मों को भस्म करने वाली आत्मरूप अग्नि प्रकट होती है।

Just as salt dissolves due to its contact with water, similarly if the mind becomes absorbed in meditation, the fire of soul shines brightly, burning the auspicious and inauspicious karmas. (486)

राग द्वेष व मोह नहीं, नहीं योग संपन्न ।
शुभ–अशुभ हो कर्म दहन, अग्नी हो उत्पन्न ।।२.२९.४.४८७।।

जस्स न विज्जदि रागो, दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुहडहणो, झाणमओ जायए अग्गी ।।४।।

यस्य न विद्यते रागो, द्वेषो मोहो वा योगपरिकर्म ।
तस्य शुभाशुभदहनो, ध्यानमयो जायते अग्निः ।।४।।

जिसके राग द्वेष और मोह नहीं है तथा मन वचन काय रूप योगों का व्यापार नहीं रह गया है, उसमें समस्त शुभाशुभ कर्मों को जलानेवाली ध्यानाग्नि प्रकट होती है।

If a person is free from attachment, hatred, delusion and activities of the mind, speech and body, he becomes filled with fire of meditation that burns the auspicious and inauspicious Karmas. (487)

पूरब, उत्तर मुख करे, आसन शुद्ध आचार।
ध्यान समाधि में धरे, मन में शुद्ध विचार ।।२.२९.५.४८८।।

पुव्वाभिहो, उत्तरमुहो व, होऊण सुइ-समायारो ।
झाया समाहिजुत्तो, सहासणत्थो सुइसरीरो ।।५।।

पूर्वाभिमुखः उत्तरमुखो वा भूत्वा शुचिसमाचारः ।
ध्याता समाधियुक्तः सुखासनस्थः शुचिशरीरः ।।५।।

पूर्व या उत्तर दिशाभिमुख होकर बैठने वाला ध्याता सुखासन से स्थित हो समाधि में लीन होता है।

A person who being pure in thought and body, concentrates his mind sitting in a comfortable posture, facing the East or the North, becomes absorbed in perfect meditation. (488)

पल्यंकासन में रहें, रोक योग व्यापार।
दृष्टि नासिका पर रहे, मंद श्वास हर बार ।।२.२९.६.४८९।।

पलियंकं बंधेउं, निसिद्धमण-वयणकायवावारो ।
नासग्गनिमियनयणो, मंदीकयसासनीसासो ।।६।।

पल्यङ्कं बद्ध्वा निषिद्धमनोवचनकायव्यापारः ।
न्यासग्रनिमित्तनयनः मन्दीकृतश्वासनिःश्वासः ।।६।।

वह ध्याता पल्यंकासन बाँधकर और मन वचन काय के व्यापार को रोक कर दृष्टि को नासिकाग्र पर स्थिर करके मन्द मन्द श्वाच्छोवास ले।

A person (engaged) in meditation should sit in the palyanka posture, stop all activities of mind, speech and body, fix the gaze of his eyes one the tip of his nose and slow down his expiration and inspiration. (489)

स्व आलोचन कर्म बुरे, क्षमा न भाव प्रमाद।
चित्त निश्चल ध्यान धरे, कर्म न हो बरबाद ।।२.२९.७.४९०।।

गरहियनियदुच्चरिओ, खामियसत्तो नियत्तियपमाओ ।
निच्चलचित्तो ता झाहि, जाव पुरओव्व पडिहाइ ।।७।।

गर्हितनिजदुश्चरितः क्षमितसत्त्वः निवर्तिततप्रमादः ।
निश्चलचित्तः तावद् ध्याय यावत् पुरतः इव प्रतिभाति ।।७।।

वह अपने पूर्वकृत बुरे आचरण की आलोचना करे, सब प्राणियों से क्षमाभाव चाहे, प्रमाद को दूर करे और चित्त को निश्चल करके तब तक ध्यान करे जब तक पूर्वबद्ध कर्म नष्ट न हो जाय।

Having condemned all one's evil conduct having begged pardon of all the living beings, having renounced negligence, having steadied one's mink, one ought to undertake meditation until the thing meditated looks like standing in front of oneself. (490)

स्थिर रहे हो योग में, निश्चलमन हो ध्यान।
हो अरण्य या गांव हो, सब है एक समान ।।२.२९.८.४९१।।

थिरकयजोगाणं पुण, मुणीण झाणे सुनिच्चलमणाणं ।
मागम्मि जणाइण्णे, सुण्णे रण्णे व ण विसेसो ।।८।।

स्थिरकृतयोगानां पुनः, मुनीनां ध्याने सुनिश्चलमनसाम् ।
ग्रामे जनाकीर्णे, शून्येऽरण्ये वा न विशेषः ।।८।।

जिन्होंने अपने योग अर्थात् मन-वचन-काय को स्थिर कर लिया है और जिनका ध्यान में चित्त पूरी तरह निश्चल हो गया है, उन मुनियों को ध्यान के लिये घनी आबादी के गाँव अथवा जंगल में कोई अंतर नहीं रह जाता।

In the case of monks who have steadied all their mental, vocal and bodily activity and who have thoroughly concentrated their mind on meditation, it does not matter at all whether they stay in a village full of people or in an empty forest. (491)

समाधिकारी तपस्वी, मनोज्ञ पर करे न राग।
अमनोज्ञ विषयों के प्रति, भी रहे वीतराग ।।२.२९.९.४९२।।

जे इंदियाणं विसया मणुण्णा, न तेसु पावं निसिरि कयाइ ।
न याऽमणुण्णेसु मणं पि कुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी ।।९।।

य इन्द्रियाणां विषया मनोज्ञाः, न तेषु भावं निसृजेत् कदापि।
न चामनोज्ञेषु मनोऽपि कुर्यात्, समाधिकामः श्रमणस्तपस्वी।।९।।

समाधि की भावना वाला तपस्वी इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में कभी रागभाव न करे और प्रतिकूल विषयों में मन से भी द्वेषभाव न करे।

A monk devoted to penance and desirous of practising meditation should neither entertain pleasant nor unpleasant thoughts about the objects of senses. (492)

जगस्वभाव से परिचित, असंग अभय न आस।
वैराग्यपूरित सुचित्त, सुध्यान उसके पास ।।२.२९.१०.४९३।।

सुविदियजगस्सभावो, निस्संगो निब्भओ निरासो य ।
वेरग्गभावियमणो, झाणंमि सुनिच्चलो होइ ।।१०।।

सुविदितजगत्स्वभावः, निस्संगः निर्भयः निराशश्च।
वैराग्य भावितमनाः, ध्याने सुनिश्चलो भवति ।।१०।।

जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित है, निःसंग, निर्भय तथा आशारहित है तथा जिसका मन वैराग्यभाव से युक्त है, वही ध्यान में स्थित होता है।

A monk becomes quite steady in his meditation if he has understood thoroughly the nature of mundane existence, is deviod of all attachment, is fearless, is desireless, and has developed an attitude of indifference to the world. (493)

जो ध्यावे पुरुषाकार, आत्मा जो निष्पाप।
अनन्तज्ञानादि संपन्न, सो अद्वन्द्व अपाप ।।२.२९.११.४९४।।

पुरिसायारो अप्पा, जोई वर-णाण-दंसण-समग्गो ।
जो झायदि सो जो, पाव-हरो भवदि णिछंदो ।।११।।

पुरुषकार आत्मा, योगी वरज्ञानदर्शनसमग्र ।
यः ध्यायति सः योगी, पापहरः भवति निर्द्वन्द्वः ।।११।।

जो योगी पुरुष के आकारवाली तथा केवलज्ञान व केवलदर्शन से पूर्ण आत्मा का ध्यान करता है, वह कर्मबन्धन को नष्ट करके निर्द्वन्द्व हो जाता है।

A yogin (monk) who meditates upon the soul in human form equipped with supreme knowledge and faith, is a (real) yogi; he puts an end to all his sins and becomes free from conflicting feelings of pain and pleasure. (494)

देखता है आत्मा को, देहादिसंग भिन्न ।
वह देह से असंग हो, होता आत्म अभिन्न ।।२.२९.१२.४९५।।

देहविवित्तं पेच्छई, अप्पाणं तह ये सव्वसंजोगे ।
देहोवहिवोसग्गं निस्संगो सव्वहा कुणइ ।।१२।।

देहविविक्तं प्रेक्षते आत्मानं तथा च सर्वसंयोगान् ।
देहोपधिव्युत्सर्गं, निस्संगः सर्वथा करोति ।।१२।।

ध्यान योगी अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न देखता है अर्थात् देह का सर्वथा त्याग करके निःसंग हो जाता है।

A monk who sees that soul is distinct from body as well as from all other (external and internal) possessions; becomes free from all attachments and undertakes an absolute renunciation of body as also of all external implements. (495)

न मैं पर का, न परमेश मेरा, मैं हूँ ज्ञायक रूप ।
यह जो ध्यावे ध्यान में, ध्याता वही अनूप ।।२.२९.१३.४९६।।

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को ।
इदि जो झायदि झाणे, सो अप्पाणं हवदि झादा ।।१३।।

नाहं भवामि परेषां, न मे परे सन्ति ज्ञानमहमेकः ।
इति यो ध्यायति ध्याने, स आत्मा भवति ध्याता ।।१३।।

वही श्रमण आत्मा का ध्याता है जो ध्यान में चिन्तन करता है कि ''मैं न पर का हूँ न पर मेरे हैं'' । मैं तो एक शुद्ध ज्ञानमय चैतन्य हूँ।

That soul verily undertakes meditation which at the time of meditation knows as follows: "I do not belong to the others nor do the others belong to me while I am all alone and of the form of knowledge." (496)

ध्यानस्थित योगी यदि न, करे आत्मानुभूति ।
पाये नहीं शुद्धात्मा, ज्यों अभागा विभूति ।।२.२८.१४.४९७।।

झाण–ट्ठिओ ह जोइ, जइणो संवेइ णियय–अप्पाणं ।
तो ण लहइ तं सुद्धं, भग्ग–विहीणो जहा रयणं ।।१४।।

ध्यानस्थितो खलु योगी यदि नो संवेत्ति निजात्मानम् ।
सो न लभते तं शुद्धं भाग्यविहीनो यथा रत्नम् ।।१४।।

ध्यान में स्थित योगी यदि अपनी आत्मा का संवेदन नही करता है तो वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त नही कर सकता । जैसे कि भाग्यहीन व्यक्ति रत्न प्राप्त नही कर सकता।

Verily, if a monk, while doing meditation does not attain the knowledge of his real nature of soul, he cannot secure a precious stone. (497)

पिण्डपदस्थरूपातीत ये, ध्यान कहे त्रि रूप ।
देहप्रेक्षा, पदचिन्तन, विषय आत्मस्वरूप ।।२.२९.१५.४९८।।

भावेज्ज अवत्थत्तियं, पिंडत्थ-पयत्थ-रूवरहियत्तं ।
छउमत्थ-केवलित्तं, सिद्धत्तं चेव तस्सत्थो ।।१५।।

भावयेत् अवस्थात्रिकं पिण्डस्थ-पदस्थ-रूपरहितत्वम् ।
छद्मस्थ-केवलित्वंसिद्धत्वं चैव तस्यार्थः ।।१५।।

साधक तीन अवस्थाओं की भावना करे। पिण्डस्थध्यान-देह विपश्यत्व। पदस्थध्यान-केवलि द्वारा बताये गये अर्थ का चिंतन। रूपातीतध्यान-सिद्धत्व शुद्ध आत्मा का ज्ञान।

One must undertake meditation over the three states technically called pindastha, padastha and ruparahitatva which respectively stand for an ordinary embodied soul, an embodied soul that has attained omniscience and an emancipated soul. (498)

महावीर का ध्यान ज्यूँ, उंकडू आसन ध्यान ।
ऊँचे नीचे लोक के, आत्म समाधि ज्ञान।।२.२९.१६.४९९।।

अवि झइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं ।
उड्ढमहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिण्णे ।।१६।।

अपि ध्यायति सः महावीरः, आसनस्थः अकौत्कुचः ध्यानम् ।
ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च, प्रेक्षमाणः समाधिम् अप्रतिज्ञः ।।१६।।

भगवान ऊंकडू आदि आसनों में स्थित और स्थिर होकर ध्यान करते थे। वे उँचे नीचे व तिरछे लोक में होने वाले पदार्थों को ध्येय बनाते थे। उनकी दृष्टि आत्म समाधि पर टिकी थी। वे संकल्प मुक्त थे।

That Mahavira, having assumed a particular bodily posture and having freed himself from all unsteadiness, undertook meditation. At that time he, free from all worldly desires, would meditatively inspect whatever exist in the upper region, the lower region and the transverse region of the world. (499)

विगत भविष्य देखे नहीं, वर्तमान में ध्यान।
वीर करे तन क्षीण सा, कल्पक मुक्त महान ।।२.२९.१७.५००।।

णातीत–मट्ठे ण य आगमिस्सं, अट्ठं नियच्छंति तहागया उ।
विधूत–कप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी ।।१७।।

नातीतमर्थं न च आगमिष्यन्तम् अर्थं निगच्छन्ति तथा गतास्तु ।
विधूतकल्पः णजउपूदर्शी निर्सोषयिता क्षपकः महर्षि ।।१७।।

तथागत अतीत और भविष्य के अर्थ को नही देखते। कल्पना मुक्त महर्षि वर्तमान को देखते हुए कर्म शरीर का शोषण कर उसे क्षीण कर डालता है।

The blessed personages give no consideration to what existed in the past nor to what will exist in the future. Certainly, the great sage, free from all indulgence in imagination and concentrating his thought on what exsted in the present, first dries down and then annihilates (all his karmas). (500)

त्रियोगनिरोध हो सही, होता है स्थिर ध्यान।
आत्मलीन आत्मा रहे, ध्यान परम यह जान ।।२.२९.१८.५०१।।

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिन्तह किं वे जेण होइ थिरी।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ।।१८।।

मा चेष्टध्वम् मा जल्पत, मा चिन्तयत किमपि येन भवति स्थिरः।
आत्मा आत्मनि रतः, इदमेव परं भवेद् ध्यानम् ।।१८।।

हे ध्याता! तू न तो शरीर से चेष्टा कर, न वाणी से कुछ बोल, न मन से चिन्तन कर। इस प्रकार योग का निरोध करने से तू स्थिर हो जायेगा। यही परम ध्यान है।

Undertake no bodily act, utter no word and think no thought; thus you will become steady. Certainly, supreme meditation consists in a soul engaged in concentration on itself. (501)

मुक्त कषायों से रहे, दुख मानस ना होय।
जलन शोक संताप नहीं, ध्यान चित्त जो खोय ।।२.२९.१९.५०२।।

न कसायसमुत्थेहि य, वहिज्जइ माणसेहिं दुक्खेहिं।
श्रसा-विसाय-सोगा-इएहिं, झाणोवगयचित्तो ।।१९।।

न कषायसमुत्थैश्च, बाध्यते मानसैर्दुःखैः ।
ईर्ष्या-विषाद-शोक-दिभिः ध्यानोपगतचित्तः ।।१९।।

जिसका चित्त इस प्रकार के ध्यान में लीन है, वह आत्मध्यानी पुरुष कषाय से उत्पन्न ईर्ष्या, विषाद, शोक आदि मानसिक दुखों से पीड़ित नही होता।

A mind engaged in meditation is not perturbed by miseries born of passions nor those born of mental acts nor by jealousy, remorse, sorrow etc. (502)

परीषह या उपसर्ग से विचलित ना भयभीत।
मया, सूक्ष्मतम भाव का, धीर पुरुष ना मीत ।।२.२९.२०.५०३।।

चालिज्जइ बीभेइ य, धीरो न परीसहोवसग्गेहिं।
सुहमेसु न संमुच्छइ, भावेसु न देवमायासु ।।२०।।

चाल्यते विभेति च, धीरः न परीषहोपसर्गैः।
सूक्ष्मेषफ न संमुह्यति, भावेषु न देवमायासु ।।२०।।

वह धीर पुरुष न तो परीषह से न उपसर्ग से विचलित और भयभीत होता है तथा न ही सूक्ष्म भावों से मायाजाल में मुग्ध होता है।

A (monk) is neither moved nor frightened by afflictions and calamities; his mind does not become infatuated in the slightest degree, not even by the celestial illusions. (503)

संचित ईंधन जल उठे, जब भी चले बयार।
कर्मबंधन भस्म हुआ, अग्नि ध्यान आहार ।।२.२९.२१.५०४।।

जह चिर-संचिय-मिंधण-मणलो पवणस-हदो दुयं डहदि।
तह कम्मिं-धण-महियं खणेण झाणा-णलो दहइ ।।२१।।

यथा चिरसंचितमिन्द्यन-मनलः पवनसहितः द्रुतं दहति।
तथा कर्मेन्धनममितं, क्षणेन ध्यानानलः दहति ।।२१।।

जैसे चिरसंचित ईंधन को वायु सहित लगी आग तत्काल जला डालती है, वैसे ही ध्यानरूपी अग्नि अपरिमित कर्म ईंधन को क्षण भर में भस्म कर डालती है।

Just as fire favoured by wind speedily burns up the fuel accumulated since long, so also, the fire of meditation destroys in a moment the unlimited fuel of karmas. (504)

प्रकरण ३० - अनुप्रेक्षासूत्र

Chapter 30 - Precepts On Reflection

धर्म ध्यान ही परम है, सर्वप्रथम हो भाव।
धर्म ध्यान परिपूर्ण हो, आदि अनित्य सुभाव ।।२.३०.१.५०५।।

झाणोवरमेऽवि मुणी, णिच्चमणिच्चाइभावणापरमो ।
होइ सुभावियचित्तो, धम्मज्झाणेण जो पुव्विं ।।१।।

ध्यानोपरमेऽपि मुनिः, नित्यमनित्यादिभावनापरमः ।
भवति सुभावितचित्तः, धर्मध्यानेन यः पूर्वम् ।।१।।

मोक्षार्थी मुनि सर्वप्रथम धर्म ध्यान द्वारा अपने चित्त को भावपूर्ण करे। बाद में सदा अनित्य, अशरण आदि भावनाओं के चिन्तन में लीन रहे।

A saint desirous of salvation should first of all inculcate his mind (subhavit kare) with Righteous concentration and thereafter (i.e. after being disinterested therefrom) he should engage himself in pondering of Reflections such as that of transitoriness (Anityabhavana) or unprotectiveness (Asharna-bhavana). (505)

अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्य, अपवित्र, लोक, संसार ।
आस्रव, संवर, धर्म, निर्जरा, बारह बोधि प्रकार ।।२.३०.२.५०६।।

अद्धुव-मसरण-मेगत्त-मण्ण-संसार-लाय-मसुइत्तं ।
आसव-संवर-णिज्जर-धम्मं बोधिं च चिंतिज्ज ।।२।।

अध्रुवमशरणमेकत्व-मन्यत्वसंसार-लोकमशुचित्वं ।
आस्रवसंवरनिर्जर, धर्मं बोधि च चिन्तयेत् ।।२।।

अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, अपवित्र, लोक, संसार, आस्रव, संवर, धर्म, निर्जरा, बोधि इन बारह भावनाओं का चिन्तन करना चाहिये।

One should reflect upon twelve reflections, which are : 1. Reflection of Transitoriness; 2. Reflection of unprotectiveness refugelessness; 3. Reflection of mundaneness; 4. Reflection of loneliness; 5. Reflection of separateness; 6. Reflection of impurity; 7. Reflection of inflow of karmas; 8. Reflection of stoppage of karmas; 9. Reflection of shedding off of karmas; 10. Reflection of universe; 11. Reflection of nature of Right path; (Dharma); 12. Reflection of Rarity of enlightenment. (506)

जन्म मरण का संग है, वृद्ध अपि यौवन यार।
लक्ष्मी संग विनाश है, क्षण भंगुर संसार ।।२.३०.३.५०७।।

जम्मं मरणेण समं, संपज्जइ जोव्वणं जरा–सहियं ।
लच्छी विणास–सहिया इय सव्वं भंगुरं मुणह ।।३।।

जन्म मरणेन समं, सम्पद्यते यौवनं जरासहितम् ।
लक्ष्मीः विनाशसहिता, इति सर्वं भङ्गुरं जानीत ।।३।।

जन्म मरण के साथ जुड़ा हुआ है और यौवन वृद्धावस्था के साथ। लक्ष्मी चंचला है। इस प्रकार संसार में सब कुछ अनित्य है।

The birth is blended with death and youth with oldage (or decay). The Goddess of wealth (Laxmi) is playful (Chanchala/wanton/trekish). Thus, everything in the world is fragile/transitory (Kshanabhangur/quickly perishable). (507)

इन्द्रिय विषयक मोह तजे, क्षण भंगुर सब जान ।
विषयरहित मन को रखें, उत्तम सुख का भान ।।२.३०.४.५०८।।

चउऊण महामोहं सिए मुणिऊण भंगुरे सव्वे ।
णिव्वसयं कुणह मणं जेण सुहं उत्तम लहह ।।४।।

त्यक्त्वा महामोहं, विषयान् ज्ञात्वा भङ्गुरान् सर्वान् ।
निर्विषयं कुरुत मनः, येन सुखमुत्तमं लभध्वम् ।।४।।

महामोह को तज कर तथा सब इन्द्रिय विषयों को अनित्य जानकर मन को निर्विषय बनाओ ताकि उत्तम सुख प्राप्त हो।

Having renounced great delusion/mahamoha) and being conscious of the perishable nature of the subjects of senses (indriya-visaya), make your mind free of sense subjects (Nirvisaya) so that you may attain supreme bless. (508)

जो धन पशु की शरण ले, ज्ञानशून्य अंजान।
ये मेरे मैं आपका, शरणागत ना मान ।।२.३०.५.५०९।।

वित्तं पसवो य णाइओ, तं बालं सरणं त्ति मण्णई ।
एए मम तेसिं वा अहं णो ताणं सरणं ण विज्जई ।।५।।

वित्तं पशवश्च ज्ञातयः, तद् बालः शरणमिति मन्यते ।
एते मम तेष्वप्यहं, नो त्राणं शरणं न विद्यते ।।५।।

अज्ञानी जीव, धन, पशु तथा जातिबन्धु को अपना रक्षक या शरण मानता है कि ये मेरे हैं और मैं इनका हूँ।

The ignorant being (Ajnani-jiva) deems cattle wealth and fellow being (janti varga/caste fellows) as his protectors or protection (refuge). (He deems) "they are mine and I am theirs in actuality" they are neither (his) protectors nor (his) protection (refuge). (509)

तजूं परिग्रह, मायादि, तजता त्रिविध शल्य।
गुप्ति और समितियाँ हैं, मेरी रक्षक शरण्य ।।२.३०.६.५१०।।

संगं परिजाणमि, सल्लं पि य उद्धरामि तिविहेणं ।
गुत्तीओ समिईओ, मज्झं ताणं च सरणं च ।।६।।

संगं परिजानामि, शल्यमपि चोद्धरामि त्रिविधेन ।
गुप्तयः समितयः, मम त्राणं च शरणं च ।।६।।

मै परिग्रह को समझ बूझकर छोड़ता हूँ। माया, मिथ्यात्व व निदान इन तीन शल्यों को भी मन–वचन–काय से दूर करता हूँ। तीन गुप्तियाँ और पाँच समितियाँ ही मेरे लिये रक्षक और शरण हैं।

I know that they are all (the forms of) attachments; I shall remove those defects knows as salya from my mind, speech and body; the guptis and the samitis are my protectors and shelters. (510)

अति सुन्दर गर्वित युवा, मृत्यु बाद विचार।
कीट बने उसी तन में, जग को है धिक्कार ।।२.३०.७.५११।।

धी संसारो जहियं, जुवाणओ परमरूवगव्वियओ ।
मरिऊण जायइ, किमी तत्थेव कलेवरे नियए ।।७।।

धिक् संसारं यत्र, युवा परमरूपगर्वितकः ।
मृत्वा जायते, कृमिस्तत्रैव कलेवरे निजके ।।७।।

इस संसार को धिक्कार है जहाँ अति सुन्दर युवक मृत्यु पश्चात उसी शरीर में कीट के रुप में उत्पन्न हो जाता है।

Fie upon the transmigratory cycle where a youth, highly proud of his own handsomeness, is born after death as a tiny insect in his own dead body. (511)

बाल – नोक बराबर भी, नहीं जगत में स्थान।
पड़ा भोगना कष्ट जहाँ, जन्म–मरण श्रीमान ।।२.३०.८.५१२।।

सो नत्थि इहोगासो, लोए वालग्गकोडिमित्तोऽवि ।
जम्मण मरणाबाहा, अणेगसो जत्थ न य पत्ता ।।८।।

स नास्तीहावकाशो, लोके बालाग्रकोटिमात्रोऽपि ।
जन्ममरणाबाधा, अनेकशो यत्र न च प्राप्ताः ।।८।।

इस संसार में बाल की नोक जितना भी स्थान ऐसा नही है जहाँ इस जीव ने अनेक बार जन्म–मरण का कष्ट न भोगा हो।

There is no place in this world, even as tiny as tip of hair, where a soul has not suffered the pangs of births and deaths several times. (512)

ज्वर बुढापा और मरण, मगरमच्छ कर पार।
सतत जन्म जलराशि है, भवसागर व्यापार ।।२.३०.९.५१३।।

बाहिजरमरणमयरो निरंतरुप्पत्तिनीरनिकुरुंबो ।
परिणामदारुणदुहो, अहो दुरंतो भवसमुद्दो।।९।।

व्याधिजरामरणमकरो, निरन्तरोत्पत्ति-नीरनिकुरुम्बः ।
परिणामदारुणदुःखः, आहे! दुरन्तो भवसमुद्रः।।९।।

अहो! इस भव सागर का अन्त बड़े कष्ट से होता है। इसमें व्याधि, बुढ़ापा, मरणरूपी अनेक मगरमच्छ है। निरन्तर जन्म ही जलराशि है। इसका परिणाम दारुण दुख है।

Oh, this ocean of mundane existence is difficult to cross over; there are many crocodiles in the form of disease, old-age and death; there is great mass of water in the form of constant births and deaths, the result of all these are terrible misery. (513)

त्रिरत्न संयुक्त जीव ये, उत्तम तीर्थ समान।
पार करे संसार की, नाव त्रिरत्न महान ।।२.३०.१०.५१४।।

रयणत्तय-संजुत्तो,जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।
संसारं तरइ जदो, रयणत्तय-दिव्व-णावाए ।।१०।।

रत्नत्रयसंयुक्तः, जीवः अपि भवति उत्तमं तीर्थम् ।
संसारं तरति यतः, रत्नत्रयदिव्यनावा ।।१०।।

रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन, ज्ञान व चारित्र) से सम्पन्न जीव ही उत्तम तीर्थ है क्योंकि वह रत्नत्रय रूपी दिव्य नौका द्वारा संसार सागर पार कर लेता है।

A soul endowed with the Three Jewels constitutes an excellent ford. One can cross the ocean of transmigratory cycle with the aid of the divine boat of Three Jewles. (514)

प्रत्येक जीव स्वतंत्र है, करे कर्मफल भोग ।
कौन अपना या-पर-जन कौन बताये लोग ।।५१५।।

पत्तेयं पत्तेयं नियगं, कम्मफलमणुहवंताणं ।
को कस्स जए सयणो? को कस्स व परजणो भणिओ? ।।११।।

प्रत्येक प्रत्येकं निजकं, कर्मफलमनुभवताम् ।
कः कस्य जगति स्वजनः? कः कस्य वा परजनो भणितः ।।११।।

यहाँ प्रत्येक जीव अपने अपने कर्म फल को अकेला ही भोगता है। ऐसी स्थिति में यहाँ कौन किसका स्वजन है और कौन किसका पर जन?

In this world where every one has to suffer the fruits of his own Karmas individually, is there any person whom one can call his own either related or stranger? (515)

शाश्वत केवल आत्मा, ज्ञान दर्शन योग ।
देह राग है अन्य सभी, मात्र रहे संयोग ।।२.३०.१२.५१६।।

एगो मे सासदो अप्पा, णाण-दंसण-लक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा-भावा, सव्वे संजोग-लक्खणा ।।१२।।

एको मे शाश्वत आत्मा, ज्ञानदर्शनसंयुतः ।
शेषा मे बाह्या भावाः, सर्वे संयोगलक्षणाः ।।१२।।

ज्ञान और दर्शन से युक्त मेरी एक आत्मा ही शाश्वत है शेष सब अर्थात देह तथा रागादि भाव तो संयोगलक्षण वाले है । उनके साथ मेरा संयोग संबंध मात्र है । वे मुझसे अन्य ही है ।

My soul endowed with knowledge and faith is alone permanently mine; all others are alien to me and are in the nature of external adjuncts. (516)

दुख मूल संयोग सदा, एक सनातन राग ।
करूँ मेल संयोग का, पूर्ण भाव से त्याग ।।२.३०.१३.५१७।।

संजोगमूला जीवेणं, पत्ता दुक्खपरंपरा।
तम्हा जोगसंबंधं, सव्वभावेण वोसिरे ।।१३।।

संयोगमूला जीवेन, प्राप्ता दुःखपरम्परा ।
तस्मात्संयोगसम्बन्धं, सर्वभावेन व्युत्सृजामि ।।१३।।

इस संयोग के कारण ही जीव दुखों की परम्परा को प्राप्त हुआ है । अतः सम्पूर्ण भाव से मैं इस संयोग सम्बंध का त्याग करता हूँ।

All the series of miseries suffered by a soul are born of these alien associations; therefore, I sever whole-heartedly contacts from all alien associations. (517)

मृतक जनों पर दुख करें, कहलाता अज्ञान ।
आत्मा की चिंता नहीं, भवसागर में जान ।।२.३०.१४.५१८।।

अणुसोअइ अन्न जणं अन्नभवंतरगयं तु बालजणो ।
नवि सोयइ अप्पाणं, किलिस्समाणं भवसमुद्दे ।।१४।।

अनुशोचत्यन्यजन-मन्यभावान्तरगतं तु बालजनः ।
नैव शोचत्यात्मानं, क्लिश्यमानं भवसमुद्रे ।।१४।।

अज्ञानी मनुष्य अन्य भवों में गये हुए दूसरे लोगों के लिये तो शोक करता है किन्तु भव सागर में कष्ट भोगने वाली अपनी आत्मा की चिन्ता नही करता ।

A foolish person grieves over the death of another person when he has departed to assume another birth but he does not think of his own soul which is suffering in this ocean of mundane existence. (518)

मैं शरीर दोनों अलग, बंधु अन्य समान ।
कुशल जन आसक्त नहीं, हो जो ऐसा ज्ञान ।।२.३०.१५.५१९।।

अन्नं इमं सरीरं, अन्नोऽहं बंधवाविमे अन्ने ।
एवं ज्ञात्वा क्षमं, कुशलस्य न तत् क्षमं कर्तुम् ।।१५।।

अन्यदिदं शरीरम्, अन्योऽहं बान्धवा अपीमेऽन्ये ।
एवं ज्ञात्वा क्षमं, कुशलस्य न तत् क्षमं कर्तुम् ।।१५।।

यह शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ, बन्धु बान्धव भी मुझसे अन्य है। ऐसा जानकर कुशल व्यक्ति उनमें आसक्त न हो।

My body is other than (different from) my self; my relatives are also other than my self. Having known so the clever persons should not have (or continue to have) attachments with them. (519)

रूप समझ तन-जीव को, भिन्न तत्व का ज्ञान ।
आत्मा का अनुचिंतन हो, अन्यत्व भाव संज्ञान।।२.३०.१६.५२०।।

जो जाणिऊए देहं, जीवसरूवादु तच्चदो भिण्णं ।
अप्पाणं पि य सेवदि कज्जकरं स्स अण्णत्तं ।।१६।।

यः ज्ञात्वा देहं, जीवस्वरूपात् तत्त्वतः भिन्नम् ।
आत्मानमपि च सेवते, कार्यकरं तस्य अन्यत्वम् ।।१६।।

जो शरीर को जीव के स्वरूप से तत्त्वतः भिन्न जानकर आत्मा का अनुचिन्तन करता है, उनकी अन्यत्व भावना कार्यकारी है।

He who reflects over his own soul, after knowing that, in principle, his body is distinct from his soul, achieves effective results. (520)

माँस हड्डियों से बना, मैल भरे नौ छेद।
तन है नाली गंदगी, सुख का कैसा वेद ।।२.३०.१७.५२१।।

मंसट्ठियसंघाए, मुत्तपुरीसभरिए नवच्छिद्दे।
असुइं परिस्सवंते, सुहं सरीरम्मि किं अत्थि? ।।१७।।

मांसास्थिकसंघाते, मूत्रपुरीषभृते नवच्छिद्रे।
अशुचि परिस्रवति, शुभं शरीरे किमस्ति? ।।१७।।

माँस और हड्डी के मेल से निर्मित, मल-मूत्र से भरे, नौ छिद्रों के द्वारा अशुचि पदार्थों को बहाने वाले शरीर में क्या सुख हो सकता है ?

What joy can there be in a body that is constructed/ made by assembling bones and flesh; which is full of excreta; and which out pours the filthy material (ashuchi-padartha) from (as many as) nine out lets. (521)

भाव उदय हो मोह के, साधु करता त्याग।
आस्रव इसको मानना, अनुप्रेक्षा का भाग ।।२.३०.१८.५२२।।

एदे मोहय-भावा, जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो।
हेयं ति मण्णमाणो आसव-अणुवेहणं तस्स ।।१८।।

एतान् मोहजभावान् यः परिवर्जयति उपशमे लीनः।
हेयम् इति मन्यमानः, आस्रवानुप्रेक्षणं तस्य ।।१८।।

मोह के उदय से उत्पन्न होने वाले इन सब भावों को त्यागने योग्य जानकर उपशम भाव में लीन मुनि इनका त्याग कर देता है। यह उसकी आस्रव अनुप्रेक्षा है।

A monk who controls his senses through restraints of his mind, speech and body, and is aware of the observance of samiti, i.e., the five types of vigilance, prevents influx of karmas and will not attract the dust of new karmas. (522)

काय मन वचन गुप्ति का, शुद्ध समिति पहचान।
बंद आस्रव द्वार रहे, संवर अनुप्रेक्षा ज्ञान ।।२.३०.१९.५२३।।

मण-वयण-काय-गुत्तिंदियस्स समिदीसु अप्पमत्तस्स।
आसव-दार-णिरोहे, णव-कम्म-रया-सवो ण हवे ।।१९।।

मनोवचनकायगुप्तेन्द्रियस्य समितिषु अप्रमत्तस्य ।
आस्रवदारनिरोधे, नवकर्मरजआस्रवो न भवेत् ।।१९।।

तीन गुप्तियों के द्वारा इन्द्रियों को वश में करनेवाला तथा पाँच समितियों के पालन में अप्रमत्त मुनि के आस्रव द्वारों का निरोध हो जाने पर नवीन कर्म रज का आस्रव नही होता है। वह संवर अनुप्रेक्षा है।

The closure of the inlets of karmic inflow of the soul by a saint – who observes all the five carefulnesses and controls his senses by means of three preservations (disciplines) results in the stoppage of the arrival of new filth of karmas, this constitutes his reflection of stoppage (samivaraanupreksha) of karmas. (523)

सार नहीं इस लोक में, दीर्घ गमन संसार।
ध्यान करे सर्वोच्च का, सिद्ध चले जिस पार ।।२.३०.२०.५२४।।

णाऊण लोगसारं, णिस्सारं दीहगमणसंसारं।
लोयग्गसिहरवासं झाहि पयत्तेण सुहवासं ।।२०।।

ज्ञात्वा लोकसारं, निःसारं दीर्घगमनसंसारम्।
लोकाग्रशिखरवासं, ध्याय प्रयत्नेन सुखवासम् ।।२०।।

लोक को निःसार तथा संसार को दीर्घ गमनरूप जानकर मुनि प्रयत्नपूर्वक लोक के सर्वोच्च अग्रभाग में स्थित मुक्तिपद का ध्यान करता है, जहाँ मुक्त (सिद्ध जीव) सुखपूर्वक सदा निवास करते हैं।

It is preached by Jina that the dissociation of Karmic matter (from the self) is called Nirjara. Know that means of Samvara (stoppage) are also the means of Nirjara. (524)

जरा मरण में डूबते, जीवन तेज बहाव।
द्वीप-प्रतिष्ठा और गति, शरण धर्म की नाव ।।२.३०.२१.५२५।।

जरा-मरण-वेगेणं, वुज्झमणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरण-मुत्तमं ।।२१।।

जरामरणवेगेन, ह्यमानानां प्राणिनाम्।
धर्मो द्वीपः प्रतिष्ठा च, गतिः शरणमुत्तमम् ।।२१।।

जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते-डूबते हुए प्राणियों के लिये धर्म ही द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है तथा उत्तम शरण है।

For living beings who are floating in the currents of old age and death, religion is the best island, resting place and supreme shelter. (525)

दुर्लभ जन्म मनुष्य का, दुर्लभतर श्रुत ज्ञान।
लेय नियम में जानकर, दया क्षमा का दान ।।२.३०.२२.५२६।।

माणुस्सं विग्गहं लद्धूं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खन्ति-महिंसयं ।।२२।।

मानुष्यं विग्रहं लब्ध्वा, श्रुतिर्धर्मस्य दुर्लभा।
यं श्रुत्वा प्रतिपद्यन्ते, तपः क्षान्तिमहिंस्रताम् ।।२२।।

प्रथम तो चतुर्गतियों में भ्रमण करने वाले जीव को मनुष्य शरीर मिलना ही दुर्लभ है फिर ऐसे धर्म का श्रवण तो और भी कठिन है जिसे सुनकर तप, क्षमा और अहिंसा को प्राप्त किया जाय ।।

(An impure soul-,that is roaming about in four grades of life, - is rarely fortunate to occupy (human-body); and he who occupies human body, more rarely gets the opportunity (or opportunities) to listen to (and thereby understand) the (true) religion i.e. a religion that includes austerities forgiveness and non-violence. (526)

लाभ श्रवण शायद मिले, श्रद्धा ना आसान ।
न्याय मार्ग की बात सुन, विचलित होता ध्यान ।।२.३०.२३.५२७।।

आहच्च सवणं लद्धं, सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा ने आउयं मग्गं, बहवे परिभस्सई ।।२३।।

आहत्य श्रवणं लब्ध्वा, श्रद्धापरमदुर्लभ ।
श्रुत्वा नैयायिकं मार्ग बहवः परिभ्रश्यन्ति ।।२३।।

कदाचित् धर्म का श्रवण हो भी जाये तो उस पर श्रद्धा होना महा कठिन है। क्योंकि बहुत से लोग न्यायसंगत मोक्षमार्ग को सुनकर भी उससे विचलित हो जाते है।

Even after listening to the religious text, it is extremely difficult to cultivate faith in it; because there are many people, who even after learning about the righteous path, deviate from it. (527)

श्रुति श्रद्धा अरु लाभ भी, दुर्लभ संयम भार ।
रुचि संयम के साथ रख, सम्यक् नहीं स्वीकार ।।२.३०.२४.५२८।।

सुइं च लद्धं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं।
बहवे रोयमाणा वि, नो एणं पडिवज्जए ।।२४।।

श्रुतिं च लब्ध्वाश्रद्धां च, वीर्यं पुनर्दुर्लभम् ।
बहवो रोचमाना अपि, नो च तत् प्रतिपद्यन्ते ।।२४।।

धर्म के प्रति श्रद्धा हो जाने पर भी संयम में पुरुषार्थ होना अत्यन्त दुर्लभ है। बहुत से लोग संयम में रुचि रखते हुए भी उसे सम्यक् रूपेण स्वीकार नही कर पाते।

(Further more) it is very difficult for one,- who listens to and believes in (true) dharma to adopt (Right) conduct (Restraint). Many persons are inclined towards (such) conduct; but they are incapable of adopting it, righteously in appropriate manner. (528)

भाव योग शुद्ध–आत्मा, जल में नाव समान ।
तट पर पहुँचे नाव तो, अंत दुखो का जान ।।२.३०.२५.५२९।।

भावणा–जोग–सुद्धप्पा, जले णावा व आहिया ।
णावा व तीर–संपण्णा, सव्व–दुक्खा तिउट्टइ ।।२५।।

भावनायोगशुद्धात्मा, जले नौरिव आख्यातः ।
नौरिव तीरसंपन्ना, सर्वदुःखात् त्रुट्यति ।।२५।।

भावना योग से शुद्ध आत्मा को जल में नौका के समान कहा गया है । जैसे अनुकूल पवन का सहारा पाकर नौका किनारे पर पहुँच जाती है वैसे ही शुद्ध आत्मा संसार के पार पहुँचती है जहाँ उसके समस्त दुखों का अन्त हो जाता है ।

A person who has purified his soul by his thought activity resembles a boat; as boat crosses an ocean, so also such a person secures freedom from all misery. (529)

भाव बारह, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान बखान ।
समाधिसह आलोचना, सतत चिन्तवन ध्यान ।।२.३०.२६.५३०।।

बारस–अणुवेक्खाओ, पच्चक्खाणं तहेव पडिक्कमणं ।
आलोयणं समाहिं, तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं ।।२६।।

द्वादशानुप्रेक्षाः, प्रत्याख्यानं तथैव प्रतिक्रमणम् ।
आलोचनं समाधिः, तस्मात् भावयेत् अनुप्रेक्षाम् ।।२६।।

अतः बारह अनुप्रेक्षाओं का तथा प्रत्याख्यान (निरोध करना), प्रतिक्रमण, आलोचना एवं समाधि का बारम्बार चिन्तवन करते रहना चाहिए ।

The twelve Anupreksa (deep reflections), abstinence, repentance, confession and meditation, one should deeply contemplate on these reflections. (530)

प्रकरण ३१ - लेश्यासूत्र

Chapter 31 - Precepts On Soul - Colouring (Lesyas)

शुभ तीन लेश्या मुनि की, पीली पद्म सफ़ेद ।
धर्म ध्यान से युक्त मुनि, तीव्र-मन्द से भेद ।।२.३१.१.५३१।।

होंति कमविसुद्धाओ, लेसाओ पीयपम्हसुक्काओ ।
धम्मज्झाणोवगयस्स, तिव्व-मंदाइभेयाओ ।।१।।

भवन्ति क्रमविशुद्धाः, लेश्याः पीतपद्मशुक्लाः ।
धर्मध्यानोपगतस्य, तीव्रमन्दादि-भेदाः ।।१।।

धर्म ध्यान से युक्त मुनि के क्रमशः विशुद्ध पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएं होती है । इन लेश्याओं के तीव्र मन्द के रुप में अनेक प्रकार होते हैं ।

One engaged in the meditation called `dharma-dhyana' is possessed of three lesyas (soul-colouring), viz, yellow, lotus coloured and white - which are respectively more and more pure and are each divided into sub-types like intense, mild etc. (531)

योग प्रवृत्ति कषाय उदय इसे लेश्या मान ।
कषाय योग का काम है चार बंधु यह जान ।।२.३१.२.५३२।।

होंति कमविसुद्धाओ, लेसाओ पीयपम्हसुक्काओ ।
धम्मज्झाणोवगयस्स, तिव्व-मंदाइभेयाओ ।।२।।

योगप्रवृत्तिर्लेश्या, कषायोदयानुरञ्जिता भवति।
ततः द्वयोः कार्यं, बन्धचतुष्कं समुद्दिष्टम् ।।२।।

कषाय के उदय से अनुरंजित मन-वचन-काय की योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं । इन दोनों अर्थात कषाय और योग का कार्य है चार प्रकार का कर्म बंध । कषाय से कर्मों के स्थित और अनुभाग बन्ध होते हैं और योग से प्रकृति और प्रदेश बन्ध ।

Occurrence of soulcolouring as a result of activities (of mind, speech and body) due to the rise of passions is called Lesya. The twin effects of activity and passions is to bring about bondage of four kinds of Karma. (532)

Note: At the time of bondage of karmas to the soul, four characteristics of karmas are decided. They are : 1) Prakriti (nature). 2) Pradesh (quantity). 3) Sthiti (duration). 4) Anubhag (intensity). The nature and quantity of karmas depend on the vigor of the activities, while the duration and intensity of karmas depend upon the intensity of the desires behind the activities.

काली नील कबूतरी, पीली पद्म सफ़ेद।
छह तरह की लेश्या, रंगो में है भेद ।।२.३१.३.५३३।।

किण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्मा य सुक्क-लेस्सा य ।
लेस्सां णिद्देसा, छच्चेव हवंति णियमेण ।।३।।

कृष्णा नीला कापोता, तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च ।
लेश्यानां निर्देशात्, षट् चैव भवन्ति नियमेन ।।३।।

लेश्याऐं छह प्रकार की है – कृष्णलेश्या, नील, कपोत (कबूतरी), पीली, पद्म और शुक्ल।

The thought colours (leshyas) are of six kinds : 1. Black; 2. Blue; 3. Gray; 4. Yellow; 5. Pink; and 6. White. (533)

काली नील कबूतरी, अशुभ लेश्या तीन ।
दुर्गति संयुक्त सदा पाय जीव गति हीन ।।२.३१.४.५३४।।

किण्हा नीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई बहुसो ।।४।।

कृष्णाननीलाकापोता, तिस्रोऽप्येता अधर्मलेश्याः ।
एताभिस्तिसृभिरपि जीवो, दुर्गतिमुपपद्यते बहुशः ।।४।।

कृष्ण, नील और कपोत ये तीनों अधर्म या अशुभ लेश्याऐं है । इनके कारण जीव विविध दुर्गतियों में उत्पन्न होता है।

The black, blue and grey are the three types of inauspicious Lesyas; as result of these three (Lesyas) the soul takes birth in various-unhappy states of existence. (534)

पीली, पद्म, सफ़ेद है, धर्म लेश्या तीन ।
इन तीनों से जीव सब, सुगति पावे नवीन ।।२.३१.५.५३५।।

तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्णि वि एयाओ धम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई बहुसो ।।५।।

तेजः पद्मा शुक्ला, तिस्रोऽप्येता धर्मलेश्याः ।
एताभिस्तिसृभिरपि जीवः, सुगतिमुपपद्यते बहुशः ।।५।।

पीत (पीली), पद्म और शुक्ल ये तीनों धर्म या शुभ लेश्याऐं है । इनके कारण जीव विविध सुगतियों में उत्पन्न होता है ।

The golden-yellow, lotuscoloured and white are the three types of auspicious Lesyas; on account of these three, the soul mostly takes birth in various happy states of existence. (535)

तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, अशुभ लेश्या भेद।
मन्द, मन्दतर, मन्दतम, शुभ लेश्या के भेद ।।२.३१.६.५३६।।

तिव्वतमा तिव्वतरा, तिव्वा असुहा सुहातहा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा, छट्ठाण–गया हु पत्तेयं ।।६।।

तीव्रतमास्तीव्रतरा–स्तीव्रा अशुभाः शुभास्तथा मन्दः ।
मन्दतरा, मन्दतमाः, षट्स्थानगता हि प्रत्येकम् ।।६।।

कृष्ण, नील और कपोत प्रत्येक के तीव्रतम, तीव्रतर व तीव्र ये तीन भेद होते है। शुभ लेश्याओं के मन्द, मन्दतर व मन्दतम ये तीन भेद होते है। तीव्र और मन्द प्रत्येक में छह वृद्धियाँ और छह हानियाँ होती है। अनन्त–भाग, असंख्यात–भाग, संख्यात–भाग, अनन्त–गुण, असंख्यात–गुण, संख्यात–गुण। इसी कारण लेश्याओं के भेदों में भी उतार चढ़ाव होता रहता है।

Each of the three inauspicious Lesyas differ in their intensity; most intense, more intense and intense; similarly the auspicious Lesyas undergo three changes; most mild, more mild and mild. And each of these sub-types is further subdivided into six classes in accordance with its relative increase and decrease. (536)

छह पथिक घर से चले, भटके जंगल यार।
फल लदा इक वृक्ष मिला, करने लगे विचार ।।२.३१.७.५३७।।
मूल तना शाखा सभी, फल का होत विचार।
टपका फल खाऊँ पका, कर्म मनन संसार ।।२.३१.८.५३८।।

पहिया जे छप्पुरिसा, परि–भट्ठा–रण्ण–मज्झ–देसम्हि ।
फल–भरिय–रुक्ख–मेगं, पेक्खित्ता ते विंचंतंति ।।७।।
णिम्मूलखंधसाहु–वसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलाइं इदि, जं मणेण वयणं हवे कम्मं ।।८।।

पथिका ये षट् पुरुषाः, परिभ्रष्टा अरण्यमध्यदेशे ।
फलभरितवृक्षमेकं, प्रेक्ष्य ते विचिन्तयन्ति ।।७।।
निर्मूलस्कन्धशाखोपशाखं छित्वा चित्वा पतितानि ।
खादितुं फलानि इति, यन्मनसा वचनं भवेत् कर्म ।।८।।

छह पथिक जंगल में भटक गये। भूख लगने पर उन्हें फलों से लदा एक वृक्ष दिखा। वे मन ही मन विचार करने लगे। एक ने सोचा की पेड़ को जड़-मूल से काटकर फल खाये। दूसरे ने सोचा केवल तने से काटा जाय। तीसरे ने सोचा शाखा ही तोड़ना ठीक रहेगा। चौथे ने विचार किया कि छोटी डाल ही तोड़ी जाय। पाँचवाँ चाहता था कि फल ही तोड़े जाय। छटे ने विचार किया कि वृक्ष से टपककर नीचे गिरे फल ही चुनकर क्यों न खाये जाय। इन छहों पथिकों के विचार, वाणी तथा कर्म क्रमशः छहो लेश्याओं के उदाहरण है।

Six persons who are travellers miss their way in the midst of a forest. They see a tree laden with fruits and begin to think of getting those fruits: one of them suggests uprooting the entire tree and eating the fruits; the second one suggests cutting the trunk of the tree; the third one suggests cutting the branches; the fourth one suggests cutting the twigs; the fifth one suggests plucking the fruits only; the sixth one suggests picking up only the fruits that have fallen down. The thoughts, words and bodily activities of each of these six travellers related to eating fruits are mutually different and respectively illustrative of the six Lesyas. (537 & 538)

क्रोध बैर झगड़ा करे, दया धर्म ना भाव।
दुष्ट और वश में नहीं, कृष्ण लेश्य स्वभाव ।।२.३१.९.५३९।।

चंडो ण मुचइ वेरं, भंडण-सीलो य धरम-दय-रहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं, लक्खण-मेयं तु किण्हस्स ।। ९ ।।

चण्डो न मुञ्चति वैरं, भण्डनशीलाश्च धर्मदयारहितः।
दुष्टो न चैति वशं, लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ।।९।।

स्वभाव की प्रचण्डता, बैर की मज़बूत गाँठ, झगड़ालू वृत्ति, धर्म और दया से शून्यता, दुष्टता, समझाने से भी नही मानना ये कृष्ण लेश्या के लक्षण हैं।

The (mental) characteristics of a person of black Lesya are: he is violent; he does not give up enmity; he is quarrelsome, he is devoid of goodness and compassion; he is wicked and he cannot be influenced. (539)

मंद, अज्ञानी, बुद्धि नहीं, लोलुप भोग स्वभाव।
लक्षण है उस जीव के, नील लेश्या भाव ।।२.३१.१०.५४०।।

मंदो बुद्धि-विहीणो, णिव्विणाणी य विसय-लोलो य ।
लक्खण-मेयं भणियं, समासदो णील-लेस्सस्स ।।१०।।

मन्दो बुद्धिविहीनो निर्विज्ञानी च विषयलोलश्च ।
लक्षणमेतद् भणितं, समासतो नीललेश्यस्य ।।१०।।

मन्दता, बुद्धिहीनता, अज्ञान और विषयलोलुपता- ये संक्षेप में नीललेश्या के लक्षण है।

The (mental) characteristics of a person with blue Lesya are: he is dull; he is devoid of intelligence; he has no discrimination; and he is given to sensual enjoyment. (540)

रुष्ट हो, निन्दा, दोष मढ़े, शोकाकुल भयभीत।
ऐसे जिसके काम वो, कपोत लेश्या रीत ।।२.३१.११.५४१।।

रूसइ णिंदइ अण्णे, दूसइ बहुसो य सोय-भय-बहुलो ।
ण गणइ कज्जा-कज्जं, लक्खण-मेयं तु काउस्स ।।११।।

रुष्यति निन्दति अन्यान् दूषयति बहुशश्च शोकभयबहुलः ।
न गणयति कार्याकार्य, लक्षणमेत् तु कापोस्य ।।११।।

जल्दी रुष्ट हो जाना, दूसरों की निन्दा करना, दोष लगाना, अति शोकाकुल होना, अत्यन्त भयभीत होना ये कपोत लेश्या के लक्षण है।

The (mental) characteristics of a person with grey Lesya are: he frequently gets angry, censures others, blames others, is susceptible to sorrow and fear, and does not discriminate between what ought to be done and what not to be done. (541)

कार्य अकार्य ज्ञान हो, हो विवेक समभाव।
दया दान मृदु वृत्ति हो, पीत लेश्या भाव ।।२.३१.१२.५४२।।

जाणइ कज्जाकज्जं, सेयमसेयं च सव्व-सम-पासी।
दय-दाण-रदो य मिदू, लक्खण-मेयं तु तेउस्स ।।१२।।

जानाति कार्याकार्य, श्रेयः अश्रेयः च सर्वसमदर्शी।
दयादानरतश्च मृदुः, लक्षणमेत् तु तेजसः ।।१२।।

कार्य-अकार्य का ज्ञान, उचित-अनुचित का विवेक, समभाव, दया-दान में प्रवृत्ति ये पीत या तेजो लेश्या के लक्षण हैं।

The (mental) characteristics of a person with golden yellow Lesya are : he knows as to what ought to be done and what not to be done; he knows as to what acts lead to welfare and what do not; he has always an attitude of impartiality, he is ever engaged in acts of compassion and charity, and he is soft. (542)

भद्र त्यागी और खरा, रखे क्षमा का भाव।
गुरु साधु पूजित हरदम लेश्या पद्म स्वभाव ।।२.३१.१३.५४३।।

चागी भद्दी चोक्खो, उज्जव कम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहु-गुरु-पूजन-रदो, लक्खण-मेयं तु पम्मस्स ।।१३।।

त्यागी भद्रः चोक्षः, आर्जवकर्मा च क्षमते बहुकमपि।
साधुगुरुपूजरतो, लक्षणमेत् तु पद्मस्य ।।१३।।

त्यागशीलता, परिणामों में भद्रता, व्यवहार में प्रामाणिकता, कार्य में शुद्धता, अपराधियों के प्रति क्षमाशीलता, साधु-गुरुजनों की पूजा सेवा में तत्परता ये पद्म लेश्या के लक्षण हैं।

The (mental) characteristics of a person with Padma Lesya are: he is generous, honest, straight-forward in his dealings, possessed of great forbearance and engaged in the worship of monks and preceptors. (543)

पक्षपात, उम्मीद नहीं, समदर्शी समभाव ।
राग द्वेष से दूर रहे, लेश्य शुक्ल स्वभाव ।।२.३१.१४.५४४।।

णयकुणइ पक्खवायं, ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसिं ।
णत्थि य राय-होसा, णेहो वि य सुक्क-लेस्सस्स ।।१४।।

न च करोति पक्षपातं, नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम् ।
न स्तः च रागद्वेषो, स्नेहोऽपि च शुक्ललेश्यस्य ।।१४।।

पक्षपात न करना, भोगों की आकांक्षा न करना, सब ने समदर्शी रहना, सब में राग द्वेष तथा प्रणय से दूर रहना – शुक्ल लेश्या के लक्षण है।

The (mental) characteristics of a person with white Lesya are: he does not treat anybody with partiality; has no desire for future sensual pleasures, treats everybody with equality and he is devoid of affection, hatred and attachment. (544)

आत्मा शुद्धि जीव की, लेश्या शुद्ध हो जाय।
मन्द करे कषाय को, विशुद्ध लेश्या भाय ।।२.३१.१५.५४५।।

लेस्सासोधी अज्झवसाण-विसोधीए होइ जीवस्स ।
अज्झवसाण-विसोधी मंदकसायस्स णादव्वा ।।१५।।

लेश्याशु द्धिः अध्यवससानविशुया भवति जीवस्य ।
अध्यवसानविशुद्धिः, मन्दकषायस्य ज्ञातव्या ।।१५।।

आत्मपरिणामों में विशुद्ध आने से लेश्या भी विशुद्ध होती है और कषायों की मन्दता से परिणाम विशुद्ध होते हैं।

On the attainment of mental purification there will be purity in the Lesyas: it would be understood that the subsidence of passions leads to attainment of mental purification. (545)

प्रकरण ३२ - आत्मविकाससूत्र (गुणस्थान)

Chapter 32 - Precepts On Spiritual Progress (Gunasthanas)

कर्म उदय परिणाम से, जीवों की पहचान।
जिन देव कहते उसको, जीव के गुणस्थान ।।२.३२.१.५४६।।

जेहिं दु लक्खिज्जंते, उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं ।
जीवा ते गुण-सण्णा, णिद्दिट्ठा सव्व-दरिसीहिं ।।१।।

यैस्तु लक्ष्यन्ते, उदयादिषु सम्भवैर्भावैः ।
जीवास्ते गुणसंज्ञा, निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ।।१।।

कर्मों के उदय से होनेवाले परिणामों से युक्त जीव पहचाने जाते है उन्हे जिनेन्द्रदेव ने 'गुणस्थान' संज्ञा दी है।

Those states resulting from the fruition etc. of Karmas, by which souls are distinguished are given the name 'guna' (spiritual stages) by the Omniscients. (546)

सासादन मिथ्यात्व मिश्र, अविरत-सम्यक् देशान ।
प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्व भी, लघु अनिवृत्ति, गुणान ।।२.३२.२.५४७।।
क्षीणमोह उपशांत भी, सयोगि-अयोगि ज्ञान ।
क्रम ये चौदह मात्र ही, सिद्ध नहीं गुण जान ।।२.३२.३.५४८।।

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरद-सम्मो य देस-विरदो य ।
विरदो पमत्त इयरो, अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य ।।२।।
उवसंत-खीण-मोहो, सजोति केवलि-जणो अजोगी य ।
चोद्दस गुणट्ठाणाणि य, कमेण सिद्धा य णायव्वा ।।३।।

मिथ्यात्वं सास्वादनः मिश्रः, अविरतसम्यक्त्वः च देशविरतश्च।
विरतः प्रमत्तः इतरः, अपूर्वः अनिवृत्तिः सूक्ष्मश्च ।।२।।
उपशान्तः क्षीणमोहः, संयोगिकेवलिजिनः अयोगी च ।
चतुर्दश गुणस्थानानि च, क्रमेण सिद्धाः च ज्ञातव्याः ।।३।।

गुणस्थान चौदह है। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत-सम्यक्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-साम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवलिजिन भी, अयोगिकेवलिजिन। सिद्ध गुण स्थान से परे है।

There are fourteen stages in the path of gradual spiritual development; (1) false belief, (2) failing from right faith, (3) mixture of right faith and wrong faith, (4) vowless right faith, (5) partial observance of vows, (6) non-vigilant observance of vows, (7) vigilant observance of vows, (8) unique condition of bliss, which has not been experienced before, (9) constant thought-activity (that is meditation), (10) slightest attachment, (11) subsided delusion, (12) destroyed delusion, (13) omniscient with activities, and (14) Omniscient without activity. It should be understood that emancipation is attained in stages. (547 & 548)

श्रद्धा ना तत्वार्थ पे, हो ना मिथ्या भाव ।
संशयित, अभिग्रहित भी, अनभिग्रहित स्वभाव ।।२.३२.४.५४९।।

तं मिच्छत्तं जम-सद्दहणं, तच्चाण होदि अत्थाणं ।
संसइद-मभिग्गहियं, अणभिग्गहियं तु तं तिविहं ।।४।।

तद् मिथ्यात्वं यदश्रद्धानं, तत्त्वानां भवति अर्थानाम् ।
संशयितमभिगृहीतम-नभिगृहीतं तु तत् त्रिविधम् ।।४।।

तत्त्वार्थ के प्रति श्रद्धा का अभाव मिथ्यात्व है। यह तीन प्रकार का है। संशयीत, अभिग्रहित और अनभिग्रहित।

Wrong belief consists of the absence of faith in elements (tattva). This is of three kinds; 1. Sceptic, 2. Acquired from external sources (Abhigrahita) and 3. An intuitional (Nisargaja/independent of the precept by others). (549)

गिर सम्यक्त्वशिखर से, पहुँच न पाया स्थान।
अधर लटकते जीव का, सासादन गुणस्थान ।।२.३२.५.५५०।।

सम्मत्त-रय-पव्वय-सिहरादो, मिच्छ-भूमि समभिमुहो ।
णासिय-सम्मत्तो सो, सासण-णामो मुणेयव्वो ।।५।।

सम्यक्त्वरत्नपर्वत-शिखरात् मिथ्याभावसमभिमुखः ।
नाशितसम्यक्त्वः सः, सासस्वादननामा मन्तव्यः ।।५।।

सम्यक्त्व के अभाव में जो मिथ्यात्व की ओर मुड़ गया है लेकिन मिथ्यात्व में प्रवेश नही किया है उस मध्यवर्ती अवस्था को सासादन गुणस्थान कहा है।

The soul falls down from the peak of the mountain of right faith, with his face towards the plain of wrong faith, and has his right-faith destroyed - this stage of soul is called sasvadana, i.e., having taste of right faith. (550)

गुड़ दही जिस तरह मिले, अलग नहीं कर पाय।
सम्यक् मिथ्या जब मिले, स्थान मिश्र कहलाय ।।२.३२.६.५५१।।

दहि-गुड-मिव वा-मिस्सं, पिहु-भावं णेव कारिदुं सक्कं ।
एवं मिस्सय-भावो, सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ।।६।।

दधिगुडमिव व्यामिश्रं, पृथग्भावं नैव कर्तुं शक्यम् ।
एवं मिश्रकभावः, सम्यक्मिथ्यात्वमिति ज्ञातव्यम् ।।६।।

दही और गुड़ के मेल के स्वाद की तरह सम्यकत्व और मिथ्यात्व का मिश्रित भाव जिसे अलग नहीं किया जा सकता, मिश्र गुण स्थान कहलाता है।

The mixed thought nature of Righteousness (Sainykatva) and wrong faith (Methyatva) that can not be separated and is like the taste of curd and Raw sugar is called mixed stage of spiritual development (Misra-Gunasthan). (551)

इन्द्रिय विषय विरक्त नहीं, जीव न हिंसा त्याग।
श्रद्धा हो तत्त्वार्थ में , अविरत सम्यक् जाग ।।२.३२.७.५५२।।

णों इंदिएसु विरदो, णो जीवे थावरे चावि ।
जो सद्दहइ जिणत्तं, सम्माइट्ठी अविरदो सो ।।७।।

नो इन्द्रियेषुविरतो, नो जीवे स्थावरे त्रसे चापि ।
यः श्रद्दधाति जिनोक्तं, सम्यग्दृष्टिरविरतः सः ।।७।।

जो इन्द्रिय विषयों व हिंसा से अनुरक्त नहीं है पर तत्वार्थ पर श्रद्धा रखता है वह व्यक्ति अविरतसम्यकदृष्टि गुणस्थानवर्ती कहलाता है।

He who has not vowed to abstain from indulgence in the senses and from hurting the mobile and immobile living beings; although he has firm faith in the doctrines propounded by the Jina. This stage is said to be of a person of right vision without abstinence (Avirata-Samyagdrsti). (552)

त्रस हिंसा से हो अलग, स्थावर का ना त्याग।
जिन-शासन श्रद्धा रहे, देशविरत गुण जाग ।।२.३२.८.५५३।।

जो तस- वहाउ-विरदो, णो विरओ अक्ख-थावर-वहाओ ।
पडि-समयं जो जीवो, विरया-विरओ जिणेक्कमई ।।८।।

यस्त्रसवधाद्विरतः, नो विरतः अत्र स्थावरबधात् ।
प्रतिसमयं सः जीवों, विरताविरतो जिनैकमतिः ।।८।।

जो त्रस जीवों की हिंसा से तो विरत हो गया है परन्तु एकेन्द्रिय स्थावर (वनस्पति, जल, भूमि, अग्नि, वायु) की हिंसा से विरत नही हुआ है तथा एकमात्र जिन भगवान में ही श्रद्धा रखता है वह श्रावक देशविरत गुणस्थानवर्ती कहलाता है।

One who desists from a killing of the mobile living beings but not from that of the immobile ones and yet who has unwavering faith in Jinas is called (viratavirata or desavirata), i.e., partial observer of vows. (553)

सकल शील गुण समन्वित, महाव्रती हो जान ।
व्यक्त–अव्यक्त प्रमाद बचा, प्रमत्त संयत स्थान ।।२.३२.९.५५४।।

वत्ता–वत्त–पमाएल जो वसइ पमत्त–संजओ होइ ।
सयल–गुण–सील–कलिओ, महव्वई चित्तला–चरणो ।।९।।

व्यक्ताव्यक्तप्रमादे, यो वसति प्रमत्तसंयतो भवति।
सकलगुणशीलकलितो, महाव्रती चित्रलाचरण: ।।९।।

जिसने महाव्रत धारण कर लिये हैं, सकल शील–गुण से समन्वित हो गया है लेकिन जिसमें व्यक्त–अव्यक्तरूप में प्रमाद शेष है वह प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कहलाता है।

One who has adopted the Great Vows, is equipped with all virtuous qualities and good conduct, often exhibits negligence in a manifest or a nonmanifest form and hence whose conduct is bit defective is to be called pramattasamyata i.e., non-vigilant observer of great vows. (554)

पंडित व्रतगुणशील हो, प्रमाद नष्ट हो जाय ।
मोहनीय बाकी रहे, अप्रमत्तसंयत कहलाय ।।२.३२.१०.५५५।।

णट्ठा–सेस–पमाओ,वय–गुण–सीलोलि–मंडिओ णाणी ।
अणुवसमओ अखवओ, झाण–णिलीणो हु अप्पमत्तो सो ।।१०।।

नष्टशेषप्रमादो, व्रतगुणशीलावलिमण्डितो ज्ञानी ।
अनुपशमक: अक्षपको, ध्याननिलीनो हि अप्रमत्त: स:।।१०।।

जो ज्ञानी होने के साथ व्रत, शील और गुण की माला से सुशोभित है व सम्पूर्ण प्रमाद समाप्त हो गया है, आत्मध्यान में लीन रहता है लेकिन मोहनीय कर्म का उपशम व क्षय करना शेष है वह अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कलहाता है।

The wise man who is well equipped with all vows, whose negligence has disappeared entirely, who remains absorbed in meditation, but who has started neither subsiding his delusive karmas nor annihilating his delusive karmas is called apramattasamyata, i.e., vigilant observer of great vows. (555)

भिन्न काल स्थित जीव के अपूर्व भाव संज्ञान ।
पहले ना धारण किये, अष्टम गुण का स्थान ।।२.३२.११.५५६।।

एयम्मि गुणट्ठाणे, विसरिस-समय-ट्ठिएहि जीवेहिं ।
पुव्व-मपत्ता जम्हा, होंति अपुव्वा हु परिणामा ।।११।।

एतस्मिन् गुणस्थाने, विसदृशसमयस्थितैर्जीवैः ।
पूर्वमप्राप्ता यस्मात्, भवन्ति अपूर्वा हि परिणामाः ।।११।।

आठवें गुणस्थान में जीव विभिन्न समय में स्थित अपूर्व भावों को धारण करते है जो पहले कभी नही हो पाये थे, वह अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती है ।

In this (eighth) stage of spiritual development the soul experiences unique but frequently changing mental states (of bliss) which have not been experienced ever before; hence the stage is called apurvakarna). (556)

जीव अपूर्व सगुण रहे, कह जिनेन्द्र यह ज्ञान ।
क्षय उपशम तत्पर रहे, कर्म मोहनीय जान ।।२.३२.१२.५५७।।

तारिस-परिणाम-ट्ठि-जीवा, हु जिणेहिं गलिय-तिमिरेहिं ।
मोहस्स-पुव्वकरणा, खवणु-वसम-णुज्जया भणिया ।।१२।।

तादृशपरिणामस्थितजीवाः, हि जिनैर्गलिततिमिरैः ।
मोहस्यापूर्वकरणाः,क्षपणोपशमनोद्यताः भणिताः ।।१२।।

जिनेन्द्रदेव ने उन अपूर्वपरिणामी जीवों को मोहनीय कर्म का क्षय या उपशम करने में तत्पर कहा है । मोहनीय कर्म का उपशम व क्षय नौवें व दसवें गुणस्थान में होता है लेकिन उसकी तैयारी आठवें स्थान से शुरू हो जाती है

The souls, experiencing such mental states (of bliss), get ready either to subside or to annihilate their delusive karmas, are given the designation `apurvakarna' by Jinas, free from all darkness, i.e., ignorance. (557)

सतत एक परिणाम हो, अनिवृत्ति गुणस्थान ।
ध्यान ये निर्मल अग्नि शिखा, भस्म कर्म वन जान ।।२.३२.१३.५५८।।

होंति अणिट्टिणो ते, पडिसमयं जेसि-मेक्क-परिणामा।
विमल-यर-झाण-हुयवह-सिहाहिं णिद्दड्ढ-कम्म-वणा ।।१३।।

भवन्ति अनिवर्तिनस्ते, प्रतिसमयं येषामेकपरिणामाः।
विमलतरध्यानहुतवह-शिखाभिर्निर्दग्धकर्मवनाः ।।१३।।

जिनके निरंतर एक ही भाव होता है वे जीव अनिवृत्तिकरण गुणस्थान (नौवाँ) वाले होते है। ये जीव निर्मलतर ध्यानरूपी अग्निशिखाओं से कर्म-वन को भस्म कर देते है।

The souls, occupying the ninth stage of spiritual development enjoy the constant mental state (of bliss) each moment and burn down the forest of the karmas through the flames of the fire of a very pure meditation, are called anivartin (anivrttikarana). (558)

क्षीण रंग सा शेष रहा, सूक्ष्म सदा मन-राग ।
सूक्ष्म शेष कषाय सा, 'सूक्ष्मकषाय' प्रभाग ।।२.३२.१४.५५९।।

कोसुंभो जिह राओ, अब्भंतरदो य सुहुम-रत्तो य ।
एवं सुहुम-सराओ, सुहुम-कसाओ त्ति णायव्वो ।।१४।।

कौसुम्भः यथा रागः, अभ्यन्तरतः च सूक्ष्मरक्तः च।
एवं सूक्ष्मसरागः, सूक्ष्मकषाय इति ज्ञातव्यः ।।१४।।

कुसुम्भ के हल्के रंग की तरह जिनके अंतरंग में केवल सूक्ष्म राग शेष रह गया है, उन मुनियों को सूक्ष्म-सराग या सूक्ष्म-कषाय गुणवर्ती (दसवाँ) जानना चाहिये।

Just as a Kusumbha flower has a slight tinge of reddish colour, similarly a monk who has reached this tenth stage of spiritual development retains a slight tinge of attachment internally, Hence this stage is called suksma-Kasaya or suksma - samparaya, i.e., the stage of slight attachment. (559)

ज्यों निर्मल फल युक्त जल, शरद सरोवर जान।
मोह समस्त निशांत हुआ उपशान्त कषाय स्थान ।।२.३२.१५.५६०।।

कदक-फल-जुद जलं वा, सरए सरवाणियं व णिम्मलय ।
सयलो-वसंत-मोहो, उवसंत-कसायओ होदि ।।१५।।

कतकफलयुतजलं वा, शरदि सरः पानीयम् इव निर्मलकम् ।
सकलोपशान्तमोहः, उपशान्तकषायतो भवति ।।१५।।

जैसे मिट्टी के बैठ जाने से जल निर्मल हो जाता है लेकिन जल थोड़ा भी हिल जाने से मिट्टी ऊपर आ जाती है वैसे ही मोह के उदय से उपशान्तकषाय श्रमण (ग्यारहवाँ) स्थानच्युत होकर सूक्ष्मसराग (दसवाँ) स्थान में पहुँच जाता है।

Just as the water mixed with kataka-fruit or a pond's water in the autumn season have their dirtiness subsided, similarly a person whose all delusive karmas have subsided is called upasanta Kasaya. i.e., whose passions are subsided. (560)

सकल मोहनीय कर्म जहां हो जाते अवसान ।
अल्प मोह क्षण भाव कटु, शेष न इस गुणस्थान ।।२.३२.१६.५६१।।

णिस्सेस-खीण-मोहो, फलिहा-मल भायणुदय-समचित्तो ।
खीण-कसाओ भण्णइ,णिग्गंथो वीयराएहिं ।।१६।।

निःशेषक्षीणमोहः स्फटिकामल-भाजनोदक-समचित्तः ।
क्षीणकषायो भण्यते, निर्ग्रन्थो वीतरागैः ।।१६।।

सम्पूर्ण मोह नष्ट हो जाने से जिनका चित्त स्फटिकमणि के पात्र में रखे हुए स्वच्छ जल की तरह निर्मल हो जाता है उन्हें वीतराग ने क्षीणकषाय निर्ग्रन्थ (बारहवाँ) गुणस्थान कहा है।

The monk whose all delusive karmas are annihilated and whose mind is (clean) like the water placed in a crystalmade vessel is designated ksinamoha and destroys passions by the worthy soul, free from all attachment. (561)

केवल ज्ञानरविकिरणोंसे नष्ट किया अज्ञान ।
प्रकटी नौ लब्धियाँ तब, परमात्मा संज्ञान ।।२.३२.१७.५६२।।
केवल ज्ञानदर्शनयुत, पर शेष काय योग।
जिन का यही गुणस्थान है, केवली सयोग ।।२.३२.१८.५६३।।

केवल-णाण-दिवायर-किरण-कलाव-प्पणासि-अण्णाओ।
णव-केवल-लद्धुग्गम-सुजविय परमप्प-ववएसो ।।१७।।
असहाय-णाण-दंसण-सहिओ वि हु केवली हु जोएण।
जुत्तो त्ति सजोगो इदि, अणाइ-णिहणा-रिसे उत्तो ।।१८।।

केवलज्ञानदिवाकर-किरणकलाप-प्रणाशिताज्ञानः।
नवकेवललब्ध्युद्गम-प्रापितपरमात्मव्यपदेशः ।।१७।।
असहायज्ञानदर्शन-सहितोऽपि हि केवली हि योगेन ।
युक्त इति सयोगिजिन :, अनादिनिधन आर्षे उक्तः ।।१८।।

केवल ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से जिनका अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट हो जाता है तथा नौ केवल लब्धियों के प्रकट हो जाने से जिन्हें परम आत्मा की संज्ञा प्राप्त हो जाती है, वे केवली और काय योग ये युक्त हो जाने के कारण सयोगी केवली (तेरहवाँ गुणस्थान) जिन कहलाते है। (नौ उपलब्धियाँ-सम्यकत्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, दान, लाभ, भोग व उपभोग)

The saints, whose darkness of ignorance has been totally annihilated by the rays of the sun of perfect knowledge and who has earned the little of paramatm (pure and perfect soul) on account of the appearance of nine attainments in his soul (i.e. attainments of 1. Perfect Right belief (Samyaktva), 2. Infinite knowledge (Anant-jnana), 3. Infinite conation (Anant Darshan), 4. Infinite bless (Anant sukha), 5. Infinite prowess (Anant virya), 6. Destructive or purified charity (Khayika-dan), 7. Destructive or purified gain (Kshayika-labha), 8. Destructive or purified enjoyment (Kshyikabhog) and 9. Destructive or purified re-enjoyment (Kshayikaupabhog) are called 'kevalis" (omniscient), due to there inherent attributes of (perfect) knowledge and perception which is quite independent of senses. They are also called vibrating pure and perfect souls (sayogakevalis) due to the continuance of their bodies; and they are called 'Jinas's due to their victory over (four) destructive karmas (named) knowledge obscuring obstructurekarmas). This has been so stated in ever lasting jain scriptrures (Jinagam). (562 & 563)

जो है स्वामी शील के, किए आस्रव बंद जान।
सम्पूर्ण कर्मरहित को, अयोग केवलीजान ।।२.३२.१९.५६४।।

सेलेसिं संपत्तो, णिरुद्ध-णिस्सेस-आसवो जीवो।
कम्म-रय-विप्प-मुक्को, गय-जोगो केवली होइ ।।१९।।

शैलेशीसंप्राप्तः, निरुद्धनिःशेषास्रवो जीवः ।
कर्मरजविप्रमुक्तो, गतयोगः केवली भवति ।।१९।।

जो शील के स्वामी हैं, जिनके सभी नवीन कर्मों का आस्रव अवरुद्ध हो गया है तथा जो पूर्वसंचित कर्मों से सर्वथा मुक्त हो चुके हैं वे अयोगीकेवली (चौदहवाँ गुण स्थान) कहलाते हैं।

Ayog-kevalis (vibrationless perfect souls) are such saints, as are masters of conduct (sila ke swami); whose fresh inflow of karmas has been stopped and whose past accumulated karmas have been fully destroyed. (564)

स्थान अयोगी जब मिले, ऊर्ध्वगमन स्वभाव।
अदेह आठ गुण सहित, सिद्ध लोक ठहराव ।।२.३२.२०.५६५।।

सो तम्मि चेव समये, लोयग्गे उड्ढागमणसब्भाओ।
संचिट्ठइ असरीरो पवरट्ठ गुणप्पओ णिच्चं ।।२०।।

सो तस्मिन् चैव समये, लोकाग्रे ऊर्ध्वगमनस्वभावः।
संचेष्टते अशरीरः प्रवराष्टगुणात्मको नित्यम् ।।२०।।

इस चौदहवें केवलस्थान को प्राप्त कर लेने के बाद उसी समय ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला वह अयोगीकेवली अशरीरी तथा उत्कृष्ट आठ गुण सहित सदा के लिये लोक के अग्रभाग में चले जाते हैं उसे सिद्ध कहते हैं।

Having reached the fourteenth stage of the vibrationless pure and perfect soul (Ayogakevali Gunasthan), the soul becomes bodiless is associated with eight supreme attributes; and goes to the summit of the universe. Such souls are called "Siddhas". (565)

आठ कर्मों से रहित, नित्य निरंजन आस।
आठ गुण कृतार्थ सह, सिद्ध लोक निवास ।।२.३२.२१.५६६।।

अट्ठ-विह-कम्म-वियडा सीदीभूता णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा कय-किच्चा, लोयग्ग-णिवासिणो सिद्धा ।।२१।।

अष्टविधकर्मविकलाः, शीतीभूता निरञ्जना नित्याः ।
अष्टगुणाःकृतकृत्याः, लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ।।२१।।

सिद्ध जीव अष्टकर्मों से रहित, सुखमय, निरंजन, नित्य, अष्टगुणसहित तथा कृतकृत्य होते है और सदैव लोक के अग्रभाग में निवास करते है।

"Siddhas" (pure and perfect souls are free of eight karmas, blissful (sukh-maya), spotless (Niraijan/untainted), Eternal (Nitya) and full of eight attributes. Having attained their aims, they permanently dwell on the summit of the universe. (566)

प्रकरण ३३ - संलेखनासूत्र

Chapter 33 - Precepts On Passionless Deaths

नाव इस तन को समझें, नाविक समझे जीव ।
श्रमण इस भवसागर को, पार करें सदीव ।।२.३३.१.५६७।।

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ।।१।।

शरीरमाहुर्नौरिति, जीव उच्यते नाविकः ।
संसारोऽर्णव उक्तः, यं तरन्ति महर्षयः ।।१।।

देह को नाव कहा गया है और जीव को नाविक। यह संसार समुन्दर है जिसे महर्षि तैर जाते हैं। (जीव को तारते नहीं/तरते हैं।)

The body is called a boat, the soul is a boatman, the worldly existence is an ocean which the great sages cross over. (567)

विषयों की आशा नहीं, होय मुक्ति की चाह ।
पूर्व कर्म क्षय के लिये, मिली देह की राह ।।२.३३.२.५६८।।

बहिया उड्ढमादाय नावकंखे कयाइ वि ।
पुव्वकम्मखयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ।।२।।

बाह्यमूर्ध्वमादाय, नावकाङ्क्षेत् कदाचिद् अपि।
पूर्वकर्मक्षयार्थाय, इमं देहं समुद्धरेत् ।।२।।

मुक्ति का लक्ष्य रखने वाला साधक कभी भी बाह्य विषयों की आकांक्षा न रखे। पूर्वकर्मों का क्षय करने के लिये ही इस शरीर को धारण करें।

He who has an eye on his upward journey (liberation) should not think of the external objects (i. e., worldly pleasures): he should protect his body for annihilating the past Karmas. (568)

मरना सबको एक दिन, कायर हो या धीर।
अवश्यंभावी है यदि, स्वीकारो घर धीर ।।२.३३.३.५६९।।

धीरेण वि मरियव्वं काउरिसेण वि अवस्समरियव्वं ।
तम्हा अवस्समरणे, वरं खु धीरत्तेण मरिउं ।।३।।

धीरेणापि मर्त्तव्य, कापुरुषेणाप्यवश्यमर्तव्यम् ।
तस्मात् अवश्यमरणे, वरं खलु धीरत्वे मर्तुम् ।।३।।

धैर्यवान को भी मरना है और कायर पुरुष को भी मरना है। जब मरना अवश्यम्भावी है तो फिर धीरतापूर्वक मरना ही उत्तम है।

The end of the brave as well as coward is death. As death is inevitable one should prefer to die bravely. (In other words, dying bravely is preferable). (569)

ज्ञानपूर्वक जब मरे, हो जन्मों का नाश ।
पंडित मरता इस तरह, हो सुमरण विश्वास ।।२.३३.४.५७०।।

इक्कं पंडियमरणं, छिंदइ जाईसयाणि बहुयाणि ।
तं मरणं मरयिव्वं, जेण मओ सुम्मओ होइ ।।४।।

एकं पण्डितमरणं, छिनत्ति जातिशतानि बहुकानि।
तद् मरणे मर्त्तव्यं, येन मृतः सुमृतः भवति ।।४।।

ज्ञानपूर्वक मरण सैकड़ों जन्मों का नाश कर देता है। अतः इस तरह से मरना चाहिए जिससे मरण सुमरण हो जाय।

One death-of-the-wiseman puts an end to hundreds of births; hence one ought to die such a death as earns one the title well-died. (570)

धैर्यवान सत्पुरुष का, पंडित मरण महान।
एक मरण ही शीघ्र करे, अनन्तजन्म का हान ।।२.३३.५.५७१।।

इक्कं पंडियमरणं, पडिवज्जइ सुपुरिसो असंभंतो ।
खिप्पं सो मरणाणं, काहिइ अंतं अणंताणं ।।५।।

एकं पण्डितमरणं, प्रतिपद्यते सुपुरुषः असम्भ्रान्तः ।
क्षिप्रं सः मरणानां, करिष्यति अन्तम् अनन्तानाम् ।।५।।

निर्भय सत्पुरुष एक पण्डितमरण को प्राप्त होता है और बार बार मरण का अन्त कर देता है।

A wise person who is free from anxiety dies a peaceful death once; by such death, he immediately puts an end to an infinite number of deaths. (571)

पग पग संभव दोष का, साधक रखता ध्यान।
लाभ देह से मिले नहीं, तब ही त्याग विधान ।।२.३३.६.५७२।।

चरे पयाइं परिसंकमाणो जं किंचि पासं इह मण्णमाणो ।
लाभन्तरे जीविय वूहइत्ता, पच्छा परिन्न्य मलावधंसी ।।६।।

चरेत्पदानि परिशङ्कमानः, यत्किंचित्पाशमिह मन्यमानः ।
लाभान्तरे जीवितं वृंहयित्वा, पश्चात्परिज्ञाय मलावध्वंसी ।।६।।

साधक पग पग पर दोषों की संभावनाओं को ध्यान में रख कर चले। छोटे से छोटे दोषों को भी बंधन समझकर सावधान रहे। नये नये लाभ के लिये जीवन को सुरक्षित रखे। जब देह से लाभ होता दिखाई न दे तो ज्ञानपूर्वक शरीर का त्याग कर दे।

One ought to undertake every activity with the fear of bondage (i.e., possibilities of bondage) one ought to prolong one's life in the hope of acquiring ever new gains in the future and at the end, one ought to destroy one's defilements with prudence. (572)

भोज त्याग अनुचित सदा, देह स्वस्थ सुजान।
मरण चाह फिर भी रहे, विरक्त मुनित्व सा मान ।।२.३३.७.५७३।।

तस्स ण कप्पादि भत्तपइण्णं अणुवट्ठिदे भये पुरदो ।
सो मरणं पेच्छंतो होदि हु सामण्ण-णिव्विण्णो ।।७।।

तस्य न कल्पते भक्त-प्रतिज्ञा अनुपस्थिते भयं पुरतः ।
सो मरणं प्रेक्षमाणः, भवति हि श्रामण्यनिर्विण्णः ।।७।।

जिसके सामने संयम तप आदि साधना की क्षति की आशंका नहीं है उसके लिए भोजन का त्याग उचित नहीं। यदि फिर भी भोजन का त्याग करना चाहता है तो कहना होगा की वह मुनित्व से ही विरक्त हो गया है।

He who has no fear of any kind before him, should not take the vow of desisting from food and water; if he seeks death, he should be treated as disgusted taken even from his monkhood, i.e., fast-unto-death. (573)

दो प्रकार संलेखना, बाहर अंदर जान।
नाश देह बाहर करे, कृश-पाप अंतर ज्ञान ।।२.३३.८.५७४।।

संलेहणा य दुविहा, अब्भिंतरिया य बाहिरा चेव।
अब्भिंतरिया कसाए, बाहिरिया होइ य सरीरे ।।८।।

संलेखना च द्विविधा, अभ्यन्तरिका च बाह्या चैव ।
अभ्यन्तरिका कषाये, बाह्या भवति च शरीरे ।।८।।

संलेखना दो प्रकार की है। बाह्य और आभ्यंतर। कषायों को मिटाना आभ्यंतर संलेखना है और देह को नष्ट करना बाह्य संलेखना है।

A Sallekhana-i. e., fastunto- death is of two kinds; internal and external, internal sallekhana consists in emaciating the passions while the external one consists in emaciating the body. (574)

कृश कषाय करता रहे, कम कर ले आहार ।
क्षीण हुई जब देह तो, पूरन त्याग विचार ।।२.३३.९.५७५।।

कसाए पयणुए किच्चा अप्पाहारो तितिक्खए ।
अह भिक्खू गिलाएज्जा, आहारसेव अंतियं ।।९।।

कषायान् प्रतनून् कृत्वा, अल्पाहारः तितिक्षते ।
अथ भिक्षुग्लीयेत्, आहारस्येव अन्तिकम् ।।९।।

अंतर के कषायों को नष्ट करते हुए धीरे धीरे आहार की मात्रा घटाएँ। यदि वह रोगी है और शरीर अत्यंत क्षीण हो गया है तो आहार का सर्वथा त्याग कर दे।

A monk (adopting the vow of sallekhana) should first subdue his passions and (then) reduce the intake of his food gradually; but when the body becomes extremely weak, he should stop taking any food. (575)

संस्तारक तृणमय नहीं, भूमि न प्रासुक जान ।
आत्मा ही संस्तारक है, मन विशुद्ध संज्ञान ।।२.३३.१०.५७६।।

न वि कारणं तणमओ संथारो, न वि य फासुया भूमि ।
अप्पा खलु संथारो, होइ विसुद्धो मणो जस्स ।।१०।।

नापि कारणं तृणमयः संस्तारः, नापि च प्रासुका भूमिः ।
आत्मा खलु संस्तारो भवति, विशुद्धं मनो यस्य ।।१०।।

जिसका मन विशुद्ध है उसका बिछौना न तो घास है और नही प्रासुक भूमि है। उसकी आत्मा ही उसका बिछौना है।

A person whose mind is pure, needs neither a bed of straw nor a faultless ground; his soul itself becomes his bed. (576)

नहीं प्रमादी का करे, अनिष्ट दुष्ट वेताल।
दुष्प्रयुक्त हो यंत्र या, क्रुद्ध सर्प सा काल ।।२.३३.११.५७७।।
मगर समाधि काल में, माया मिथक विचार
बोधि में बाधा बने, अंत न हो संसार ।।२.३३.१२.५७८।।

न वि तं सत्थं च विसं च, दुप्पउत्तु व्व कुणइ वेयालो ।
जंतं व दुप्पउत्तं, सप्पु व्व पमाइणो कुद्धो ।।११।।
जं कुणइ भावा सल्लं, अणुद्धियं उत्तमट्ठकालम्मि ।
दुल्लहबोहीयत्तं, अणंतसंसारियत्तं च ।।१२।।

तत् शस्त्रं च विषं च, दुष्प्रयुक्तो वा करोति वैतालः ।
यन्त्रं वा दुष्प्रयुक्तं, सर्पो वा प्रमादिनः क्रुद्ध ।।११।।
यत् करोति भावशल्य-मनुद्धृतमुत्तमार्थकाले ।
दुर्लभबोधिकत्वम्, अनन्तसंसारिकत्वं च ।।१२।।

शस्त्र, विष, भूत, दुष्प्रयुक्त यन्त्र तथा क्रुद्धसर्प आदि प्रमादी का उतना अनिष्ट नही करते जितना अनिष्ट समाधिकाल में मन में रहे हुए माया, निथ्यात्व व निदान शल्य करते है। इससे ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है तथा संसार का अंत नही होता।

Mental thorns (salya) like deceit, perverted attitude and a desire for worldly enjoyments in next life in a person observing the vow of Sallekhana cause him greater pain than a tainted weapon, poison, devil, an evil-motivated amulet or an angry serpent, for in the presence of these salyas right understanding becomes impossible and involvement in an infinite transmigratory cycle becomes inevitable. (577 & 578)

साधु की अभिमानरहित, समूल नष्ट भव चाल ।
मिथ माया निदान शल्य, अंतरा देत निकाल ।।२.३३.१३.५७९।।

तो उद्धरंति गारवरहिया, मूलं पुणब्भवलयाणं।
मिच्छादंसणसल्लं, मायासल्लं नियाणं च ।।१३।।

तदुद्धरन्ति गौरवरहिता, मूलं पुनर्भवलतानाम् ।
मिथ्यादर्शनशल्यं, मायाशल्यं निदानं च ।।१३।।

अतः अभिमान रहित साधक पुनर्जन्मरूपी मिथ्यादर्शनशल्य, मायाशल्य व निदानशल्य को अन्तरंग से निकाल फेंकते हैं।

A monk who is free from pride cuts down the three roots of rebirth, i.e., the thorns of wrong faith, deceit and desire for worldly enjoyment in next life. (579)

मिथ्यादर्शन अनुरक्त रहे, कृष्ण लेश्या भार ।
मरण मिले जब इस तरह, दुर्लभ बोधि विचार ।।२.३३.१४.५८०।।

मिच्छा–दंसण रत्ता, सणिदाणा किण्ह–लेस–मोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा तेसिं पुण दुल्लहा बोही ।।१४।।

मिथ्यादर्शनरक्तः, सनिदानाः कृष्णलेश्यामवगाढाः ।
इतिये म्रियन्ते जीवा–स्तेषां दुर्लभा भवेद् बोधिः ।।१४।।

इस संसार में जो जीव मिथ्यादर्शन में अनुरक्त होकर निदानपूर्वक तथा कृष्णलेश्या की प्रगाढ़तासहित मरण को प्राप्त होते हैं उनके लिये बोधि लाभ दुर्लभ है ।

Hence those persons who die as attached to wrong faith, as full of desire for sensuous enjoyment in return for the good acts performed, as subject to krsna lesya (black- colouring) do not find it easy to attain right understanding. (580)

सम्यग्दर्शन अनुराग हो, शुक्ल लेश्य आचार।
सुलभ रहे उस जीव को, बोधि भाव विचार ।।२.३३.१५.५८१।।

सम्म-दंसण-रत्ता अणिदाणा सुक्क-लेस-मोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा तेसिं सुलहा हवे-बोही ।।१५।।

सम्यग्दर्शनरक्ताः, सनिदानाः कृष्णलेश्यामवगाढा ।
इतिये म्रियन्ते जीवा-स्तेषां दुर्लभा भवेद् बोधिः ।।१५।।

जो जीव सम्यग्दर्शन के अनुरागी होकर, निदानरहित तथा शुक्ल लेश्यापूर्वक मरण को प्राप्त होते हैं उनके लिए बोधि की प्राप्ति सुलभ होती है।

(On the other hand) those persons who die as attached to right faith, as devoid of desire for sensuous enjoyment in return for the good acts performed, as subject to sukla lesya (white colouring) find it easy to attain right understanding. (581)

रहे सतत आराधना, कर्तव्य निष्ठता भाव ।
सतत करे अभ्यास जो, पूजन सुखद प्रभाव ।।२.३३२.१६.५८२।।

आराहणाए कज्जे परियम्मं सव्वदा वि कायव्वं ।
परियम्म-भाविदस्स हु, सुह-सज्झा-राहणा होइ ।।१६।।

आराधनायाः कार्ये, परिकर्म सर्वदा अपि कर्त्तव्यम् ।
परिकर्मभावितस्य खलु, सुखसाध्या आराधना भवति ।।१६।।

मरणकाल में रत्नत्रय की सिद्धि अभिलाषी साधक को चाहिये कि व पहले से ही सम्यक्तवादी का अनुष्ठान करता रहे क्योंकि अभ्यास करने वाले की आराधना सुखपूर्वक होती है ।

Therefore, the saints, who are desirous to attain three jewels at the time of their death, should make it a point to practice the reverences and religious performances relating to Righteousness from before; because it is easier, for such saints, to practice reverences at the time of death. (582)

राजपुत्र जैसे करता, सतत शस्त्र अभ्यास।
युद्ध विजय निश्चित करें, हो समर्थ विश्वास ।।२.३३.१७.५८३।।
समभावी इस ही तरह, करे ध्यान अभ्यास।
मरण समय मन वश रहे, ध्यान योग्य विश्वास ।।२.३३.१८.५८४।।

जहरायकुल-पसूओ जोग्गं णिच्चमवि कुणइ परियम्म।
तो जिदकरणो जुद्धे कम्मसमत्थो भविस्सदि हि ।।१७।।
इय सामण्णं साधू वि कुणदि णिच्चमवि जोग-परियम्मं।
तो जिदकरणो मरणे झाणसमत्थो भविस्सहदि ।।१८।।

यथा राजकुलप्रसूत योग्यं नित्यमपिप करोति परिकर्म्म ।
ततः जितकरणो युद्धे, कर्मसमर्थो भविष्यति हि ।।१७।।
एवं श्रामण्यधुरपि, करोति नित्यमपि योगपरिकर्म्म ।
ततः जितकरणः मरणे, ध्यानसमर्थो भविष्यति हि ।।१८।।

राजकुल में उत्पन्न राजपुत्र निरन्तर शस्त्र अभ्यास करते हुए दक्षता हासिल कर युद्ध में विजयी होता है वैसे ही समभावी साधु नित्य ध्यानाभ्यास करते हुए चित्त वश में कर लेते हैं और मरणकाल में ध्यान करने में समर्थ हो जाते है।

One who is born in a royal family and performs his (military) exercises regularly will become competent to win all wars: similarly a monk who regularly engages himself in meditation and practise of the vows of monastic life, conquers his mind, and will become competent to practice meditation at his death.
(583 & 584)

मुक्ति मार्ग स्थापित करे, आत्मा में ही ध्यान।
हरपल आत्मा में रहे, अन्य द्रव्य नहीं भान ।।२.३३.१९.५८५।।

मोक्ख-पहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेव।
तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अण्णदव्वेसु ।।१९।।

मोक्षपथे आत्मनं, स्थापय त चैव ध्याय त चैव ।
तत्रैव विहर नित्यं, मा विहरस्व अन्यद्रव्येषु ।।१९।।

हे भव्य! तू मोक्ष मार्ग में ही आत्मा को स्थापित कर। उसी का ध्यान कर। उसी का अनुभव तथा उसी में विहार कर। अन्य द्रव्यों में विहार मत कर।

Fix (your) soul on the path of liberation and meditate on the soul only; always be engrossed in it and not in any other substance. (585)

चाह लोक सुख की नहीं, जन्म चक्र का त्याग ।
दृष्टि में रखे जगत को, सतत अशुभ परिणाम ।।२.३३.२०.५८६।।

इह-पर-लोगा-संस-प्पओग, तह जीव-मरण-भोगेसु ।
वज्जिज्जा भाविज्ज य, असुहं संसार-परिणामं ।।२०।।

इहपरलोकाशंसा-प्रयोगो तथा जीवितमरणभोगेषु।
वर्जयेद् भावयेत् च अशुभ संसारपरिणामम् ।।२०।।

संलेखनारत साधक को मरण काल में इस लोक और परलोक में सुखादि के प्राप्त करने की इच्छा का तथा जीने और मरने की इच्छा का तथा जीने और मरने की इच्छा का त्याग करके अन्तिम साँस तक संसार के अशुभ परिणाम का चिन्तन करना चाहिये।

One should give up desire for pleasures in this world as also in the next; should give up liking either for life or for death or for enjoyments, should engage thought in the evil consequences available in the world of transmigration. (586)

परद्रव्य भाव दुर्गति मिले, सुगति आत्म स्वभाव।
लीन रहे निज द्रव्य में, अलग न होय प्रभाव ।।२.३३.२१.५८७।।

पर-दव्वादो दुगई, सद्दव्वादो हु सुग्गई हवइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणइ रई विरइ इयरम्मि ।।२१।।

परद्रव्यात् दुर्गतिः, स्वद्रव्यात् खलु सुगतिः भवति ।
इति ज्ञात्वा स्वद्रव्ये, कुरुत रतिं विरतिम् इतरस्मिन् ।।२१।।

पर-द्रव्य अर्थात् धन-धान्य, परिवार व देहादि में अनुरक्त होने से दुर्गति होती है और स्व-द्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा में लीन होने से सुगति होती है।

One gets birth in a miserable state by being devoted to other substances, i.e., worldly things and birth in a good state by being devoted to contemplation of one's own soul; knowing this one should be absorbed in meditation of one's soul and desist from thinking of other substances. (587)

(इति खंड - २)

प्रकरण ३४ - तत्त्वसूत्र

Chapter 34 - Precepts On Fundamental Truths

अज्ञानी सब है दुखी, दुख उत्पादक मान।
मूढ़ विवेकी लुप्त हुये, जग अनन्त अज्ञान ।।३.३४.१.५८८।।

जावन्तऽविज्जा-पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख-संभवा ।
लुप्पन्ति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणन्तए ।।१।।

यावन्तोऽविद्यापुरुषाः, सर्वे ते दुःखसम्भवाः ।
लुप्यन्ते बहुशो मूढाः, संसारेऽनन्तके ।।१।।

समस्त अज्ञानी पुरुष दुःखी हैं। वे विवेकमूढ अनन्त संसार में बार-बार लुप्त होते हैं।

All who are ignorant suffer misery and they are the creators of unhappiness.; most of those who are foolish will remain confounded in this endless mundane of existence. (588)

पण्डित परख कर जाते, बन्धनरूप सम्बन्ध ।
खोजे स्वयं सत्य को, बाँधे मैत्री-बन्ध ।।३.३४.२.५८९।।

समिक्ख पंडिए तम्हा, पास-जाइ-पहे बहू ।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए ।।२।।

समीक्ष्य पण्डितस्तस्मात्, पाशजातिपथान, बहून् ।
आत्मना सत्यमेषयेत् मैत्रीं भूतेषु कल्पयेत् ।।२।।

इसलिए पंडित पुरुष अनेकविध बंधनरूप स्त्री-पुत्रादि के सम्बन्धों की, जो कि जन्म-मरण के कारण है, समीक्षा करके स्वयं सत्य की खोज करे और सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखे।

Hence, a wise person, considering that most of the ways of living result in entanglements of existence, should search for truth with his own soul and develop friendliness towards all living beings. (589)

तत्त्व वा द्रव्यस्वभाव, शुद्ध अथवा परमार्थ ।
परम व परापरध्येय, हैं नाम सब एकार्थ ।।३.३४.३.५९०।।

तच्चं तह परमट्ठं, दव्वसहावं तहेव परमपरं ।
धेयं सुद्धं परमं, एयट्ठा हुंति अभिहाणा ।।३।।

तत्त्वं तथा परमार्थः, द्रव्यस्वभावस्तथैव परमपरम् ।
ध्येयं शुद्धं परमम्, एकार्थानि भवन्त्यभिधानानि ।।३।।

तत्त्व, परमार्थ, द्रव्य–स्वभाव, पर–अपर ध्येय, शुद्ध, परम–ये सब शब्द एकार्थवाची है।

All these words Elements, subtle truth, Nature of substance, objects of contemplation of self and nonself , pure and supreme are synonymous. (590)

जीव–अजीव आस्रव, बन्ध पुण्य पाप अर्थ ।
संवर, निर्जरा व मोक्ष, कुल नौ कहे पदार्थ ।।३.३४.४.५९१।।

जीवाऽजीवा य बन्धो य, पुण्णं पावाऽऽसवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव।।४।।

जीवा अजीवाश्च बन्धश्च, पुण्यं पापास्रवः तथा ।
सवंरो निर्जरा मोक्षः, सन्त्येते तथ्या नव ।।४।।

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष–ये नौ तत्त्व या पदार्थ हैं।

The nine essential elements are : 1. Soul; 2. Non soul; 3. Karmic Bondage; 4. Merit; 5. Demerit; 6. Inflow of karmas; 7. Stoppage of the inflow of karmas; 8. Shedding of karmas; and 9. liberation. (591)

अनादिनिधन, चेतनमय, देह भिन्न है जीव।
कर्ता भोक्ता कर्म का, रूपादिरहित जीव ।।३.३४.५.५९२।।

उवओगलक्खणमणाइ-निहणमत्थंतरं सरीराओ ।
जीवमरूविं कारिं, भोयं च सयस्स कम्मस्स ।।५।।

उपयोगलक्षणमनाद्य-निधनमर्थान्तरं शरीरात् ।
जीवमरूपिणं कारिणं, भोगे च स्वकस्य कर्मणः ।।५।।

जीव का लक्षण उपयोग है। यह अनादि-निधन है। शरीर से भिन्न है। अरूपी है। अपने कर्म का कर्ता भोक्ता है।

The characteristics of soul is consciousness, eternal, different from the body, formless and is the doer and enjoyer of his karmas. (592)

सुख-दुख का ज्ञान नहीं, अचेतन है सदीव।
हि-अहित का भय नहीं, श्रमण कहे अजीव ।।३.३४.६.५९३।।

सुह-दुक्ख-जाणणा वा, हिद परियम्मं च अहिद भीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ।।६।।

सुखदुःख ज्ञानं वा, हितपरिकर्म चाहितभीरुत्वम् ।
यस्य न विद्यते नित्यं, तं श्रमणा ब्रुवते अजीवम् ।।६।।

श्रमण जन उसे अजीव कहते हैं जिसे सुख दुख का ज्ञान नही होता ।हित के प्रति उद्यम और अहित का भय नही होता।

The saints call them nonsouls, which are not conscious of pleasure and pain; does not know what is beneficial and what is not beneficial. Non-soul can't live eternal. (593)

पुद्गल, धर्म, अधर्म द्रव्य, अजीव नभ संग काल।
पुद्गल मूर्त रूप गुण, शेष अमूर्त विशाल ।।३.३४.७.५९४।।

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादि गुणो अमुत्ति सेसा हु ।।७।।

अजीवः पुनः ज्ञेयः पुद्गलः धर्मः अधर्मः आकाशः ।
कालः पुद्गलः मूर्तः रूपादिगुणः, अमूर्तयः शेषाः खलु ।।७।।

अजीव द्रव्य पाँच प्रकार का है – पुद्गल, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश और काल। इनमें से पुद्गल रूपादि गुण युक्त होने से मूर्तिक है। शेष चारों अमूर्तिक है।

The non souls are of five kinds: 1. Matter; 2. Medium of Rest; 3. Medium of motion. 4. Space; 5. Time; of them matter is corporal (formal), as it has the attributes of form etc. The rest four are noncorporeal. Ajiva should again be known (to be of five kinds): matter (pudgala), motion (dharma) rest (adharma), space (akasa) and time (kala): matter has form as it has the attributes of colour etc., the rest of them are verily formless. (594)

इन्द्रियाँ जाने नहीं, नित अमूर्त गुण सार।
बंधें आत्मा राग से, बंधन ही संसार ।।३.३४.८.५९५।।

नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।
अज्झत्थेहेउं निययऽस्स बन्धो, संसारहेउं च वयन्ति बन्धं ।।८।।

नो इन्द्रियग्राह्योऽमूर्तभावात्, अमूर्त्तभावादपि च भवति नित्यः ।
अध्यात्महेतुर्नियतः अस्य बन्धः, संसारहेतुं च वदन्ति बन्धम् ।।८।।

आत्मा अमूर्त है अतः वह इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नही है। तथा अमूर्त पदार्थ नित्य होता है। आत्मा के आन्तरिक रागादि भाव ही निश्चयतः बन्ध के कारण है और बन्ध को संसार का हेतु कहा गया है

The soul is not perceptible to the senses as it has no corporal form; it is external since it has no corporal form; due to internal activities like the passions, Karma binds the soul; and it is said that bondage is the cause of mundane existence. (595)

रागादिभाव बन्ध के कारण, संसार कारण बन्ध ।
निश्चयनय संक्षेप से, यही है जीवबन्ध ।।३.३४.९.५९६।।

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंच्चदि कम्मेहिं राग-रहिवप्पा ।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ।।९।।

रक्तो बध्नाति कर्म, मुच्यते कर्मभी रागरहितात्मा ।
एष बन्धसमासो, जीवानां जानीहि निश्चयतः ।।९।।

रागयुक्त ही कर्म बंधन करता है। रागरहित आत्मा कर्मों से मुक्त होती है । यह निश्चय नय से संक्षेप में जीवों के बन्ध का कथन है ।

Attachment binds the soul (with Karmas); a soul which is free from attachments becomes liberated from Karmas. Know that this surely is briefly (the nature of) the Karmic bondage of souls. (596)

अभिलाषी हो मोक्ष का, करे न किंचित राग ।
भवसागर को पार करे, जीव बने वीतराग ।।३.३४.१०.५९७।।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदि मा किंचि ।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि ।।१०।।

तस्मात् निर्वृत्तिकामो, रागंसर्वत्र करोतु मा किंचित् ।
स तेन वीतरागो, भव्यो भवसागरं तरति।।१०।।

इसलिये मोक्षअभिलाषी को तनिक भी राग नही करना चाहिये । ऐसा करने से वह वीतराग होकर भवसागर को तार जाता है ।

Therefore, it is desirable to renounce the attachments; do not do anything at any time that brings about an attachment even to the slightest degree; it is due to this that a soul conquers all attachments and crosses over the ocean of worldly existence. (597)

पाप पुण्य है कर्म दो, शुभम अशुभ हैं भाव ।
मंद-कषाय ये हैं शुभ, शुभ ना तीव्र स्वभाव ।।३.३४.११.५९८।।

कम्मं पुण्णं पावं, हेदउं तेसिं च होंति सच्छिदरा।
मंद-कसाया सच्छा, तिव्व-कसाया असच्छा हु ।।११।।

कर्म पुण्यं पापं, हेतवः तेषां च भवन्ति स्वेच्छेतराः।
मन्दकषायाः स्वच्छाः, तीव्रकषायाः अस्वच्छाः खलु ।।११।।

कर्म दो प्रकार के है। पुण्यरूप व पापरूप। पुण्यकर्म का हेतु शुभभाव है व पापकर्म का हेतु अशुभ भाव है। मन्दकषायी जीव स्वच्छभाव वाले होते हैं। तीव्रकषायी वाले जीव अस्वच्छ भाववाले होते हैं।

Karma is the cause of merit (punya) and demerit (papa); auspicious thoughts give rise to merit while inauspicious thoughts to demerit. Those who are possessed of subdued passions have clean (mental states); those with intense passions will have unclean (mental states). (598)

बोल वचन सर्वत्र प्रिय, क्षमा दुर्वचन पाय ।
ग्रहण करे गुण जगत के, लक्षण मन्द कषाय।।३.३४.१२.५९९।।

सव्वत्थ वि पिय-वचणं, दुव्वयणे दुज्जणे वि खम-करणं।
सव्वेसिं गुण-गहणं, मंद-कसायाण दिट्ठंता ।।१२।।

सर्वत्र अपि प्रियवचनं, दुर्वचने अपि क्षमाकरणम्।
सर्वेषां गुणग्रहणं, मन्दकषायाणां दृष्टान्ताः ।।१२।।

सर्वत्र ही प्रिय वचन बोलना, दुर्वचन वाले को भी क्षमाभाव तथा सबके गुणों को ग्रहण करना - ये मन्दकषायी जीवों के लक्षण है।

Always speak words which are dear (to others), even those wicked men who use harsh words ought to be forgiven; one must take the best from all people, these are illustrative of persons possessed of subdued passions. (599)

आत्म प्रशंसा लीन जो, पूज्य पुरुष में दोष ।
दीर्घ काल तक बैर हो, तीव्र पाप का कोष ।।३.३४.१३.६००।।

अप्प-पसंसण-करणं, पुज्जेसु वि दोस-गहण-सीलत्तं ।
वेर धरणं च सुइरं, तिव्व-कसायाण लिंगाणि।।१३।।

आत्मप्रशंसनकरणं, पूज्यषु अपि दोषग्रहणशीलत्वम् ।
वैरधारणं च सुचिरं, तीव्रकषायाणां लिङ्गानि ।।१३।।

अपनी प्रशंसा करना, पूज्य पुरुषों में भी दोष निकालने का स्वभाव होना, दीर्घकाल तक बैर की गाँठ बाँधे रखना – ये तीव्र कषाय वाले जीव के लक्षण है ।

Praising oneself, picking up faults even with those who are worthy of worship and maintaining inimical attitude for a pretty long time, these are the characteristics of persons possessed of intense passions. (600)

राग द्वेष हो इन्द्रियवश, कर्मों में मदहोश ।
खुले द्वार आस्रव रहे, कर्म निरन्तर जोश ।।३.३४.१४.६०१।।

रागद्दोसपमत्तो, इंदियवसओ करेइ कम्माइं ।
आसवदारेहिं अवि-गुहेहिं तिविहे करणेणं ।।१४।।

रागद्वेषप्रमत्तः, इन्द्रियवशगः करोति कर्माणि ।
आस्रवद्वारै रविगूहितैस्त्रिविधेन करणेन ।।१४।।

रागद्वेष से प्रमत्त जीव इन्द्रियाँधीन होकर मन-वचन-काय के द्वारा उसके आस्रव द्वार खुले रहने के कारण निरन्तर कर्म करता रहता है ।

A person, having lost his self-awareness due to attachment and aversion, remains enslaved by the senses. His doors of karmic influx being open, he commits Karmas continuously through three fold means, i. e., mind, body and speech. (601)

खुले आस्रव द्वार हों, होता सतत प्रवाह ।
छेद रहे जब नाव में, मिलती जल को राह ।।३.३४.१५.६०२।।

आसवदारेहिं सया, हिंसाई एहिं कम्ममासवइ ।
जह नावाइ विणासो, छिद्दहि जलं उयहिमज्झे ।।१५।।

आस्रवद्वारैः सदा, हिसादिकैः कर्मस्रवति ।
यथा नावो विनाश-श्छिद्रैः जलम् उदधिमध्ये ।।१५।।

हिंसा आदि कर्मों से निरन्तर आस्रव होता रहता है, जैसे कि जल के आने से सछिद्र नौका समुद्र में डूब जाती है ।

There is a continuous inflow of the Karmas through the doors of influx, i. e., violence etc., just as a boat with holes sinks in the sea due to the inflow of water, so does the soul. (602)

काय मन वचन साथ ही, जीव वीर्य परिणाम ।
प्रदेश-परिस्पन्दनस्वरूप, प्राणयोग के काम ।।३.३४.१६.६०३।।

मणसा वाया कायेण, का वि जुत्तरस विरि-परिणामो ।
जीवस्स-प्पणिओगे, जोगो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठो ।।१६।।

मनसा वाचा कायेन, वापि युक्तस्य वीर्यपरिणामः ।
जीवस्य प्रणियोगः, योग इति जिनै-र्निर्दिष्ट ।।१६।।

योग भी आस्रव द्वार है। मन वचन व काय से युक्त जीव का जो वीर्य परिणाम होता है उसे योग कहते है। प्रदेश-परिस्पन्दनस्वरूप को भी प्रणियोग कहते हैं ।

(Yogas are also the doors of Karmic influx). The vibrations in the soul through the activities of mind, body and the speech are known as Yoga. So say the Jinas. (603)

योग अल्पतर होत ज्यूँ, बंध अल्प हो जाय ।
योग निरोधक बंध रुके, बंद छिद्र जल नाय ।।३.३४.१७.६०४।।

जहा जहा अप्पतरो से जोगो, तहा तहा अप्पतरो से बंधो।
निरुद्धजोगिस्सव से ण होति, अछिद्द पोतस्स व अंबुणाथे ।।१७।।

यथा यथा अल्पतरः तस्य योगः, तथा तथा अल्पतरः तस्य बन्धः ।
निरुद्धयोगिनः वा सः न भवति, अछिद्रपोतस्येव अम्बुनाथे ।।१७।।

जैसे जैसे योग अल्पतर होता है वैसे वैसे बन्ध या आस्रव भी अल्पतर होता है। योग का निरोध हो जाने पर बन्ध नही होता । जैसे छेद रहित जहाज़ में जल प्रवेश नहीं करता ।

As soon as the Yogas, i.e., the soul vibrations lessen, the bondage or the Karmic influx also lessens. The moment the Yogas are stopped, the Karmic-influx does not take place; just as the water does not enter the boat which has no holes. (604)

आस्रव जिनका मूल है, अविरति कषाय योग ।
अयोग विराग संयम ये, दर्शन संवरही योग ।।३.३४.१८.६०५।।

मिचछत्ताविरदीविय, कसाय जोगाय आसवा होंति।
संजम-विराय-दंसण-जोगाभावो य संवरओ ।।१८।।

मिथ्यात्वाऽविरतिः अपि च कषाया योगाश्च आस्रवा भवन्ति ।
संयम-विराग-दर्शन-योगाभावश्च संवरकः ।।१८।।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग- ये आस्रव के कारण है । संयम, विराग, दर्शन और योग का अभाव- ये संवर के हेतु है ।

Wrong faith, nonrefrainment, passion and Yoga are the causes of Karmic influx. Selfrestraint, detachment, right-faith and the absence of Yoga are the causes of cessation. (605)

छेद बंद जलयान में, पानी घुस ना पाय ।
मिथ्यात्वादिक दूर हों, तब संवर हो जाय ।।३.३४.१९.६०६।।

रुंधिय-छिद्द-सहस्से, जलजाणे जह जलं तु णासवदि ।
मिच्छत्ताइ-अभावे, तह जीवे संवरो होई ।।१९।।

रुद्धछिद्रसहस्रे, जलयाने यथा जलं तु नास्रवति ।
मिथ्यात्वाद्यभावे, तथा जीवे संवरो भवति ।।१९।।

जैसे जलयान के हज़ारों छेद बंद कर देने पर उसमें पानी नही घुसता वैसे ही मिथ्यात्व आदि के दूर हो जाने पर जीव में संवर होता है ।

Just as there is no inflow of water in the boat after the thousands of its holes have been plugged, similarly, the wrong faiths being removed, there is the cessation of Karmic influx in the soul (Jiva). (606)

देखे आत्मा जीव में, बन्द कर्म के द्वार ।
पाप कर्म बंधन नहीं, संयमी आस्रव पार ।।३.३४.२०.६०७।।

सव्व-भूय-प्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ ।
पिहियावस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधई ।।२०।।

सर्वभूतात्मभूतस्य, सम्यक् भूतानि पश्यतः ।
पिहितास्रवस्य दान्तस्य, पापं कर्म न बध्यते ।।२०।।

जो समस्त प्राणियों को आत्मवत देखता है और जिसने कर्म आस्रव के सारे द्वार बन्द कर दिये हैं, उस संयमी को पाप करम का बंध नहीं होता ।

He who feels all beings to be like himself and who has stopped all the doors of the Karmic influx, such a self-restrained person does not suffer the bondage of sinful deeds. (607)

मिथ्या आस्रव द्वार रुके, सम्यक ठोस कपाट ।
हिंसा दृढ व्रत से रुके, मिले मोक्ष का ठाट ।।३.३४.२१.६०८।।

मिच्छत्ता-सव-दारं, रुंभइ समत्त-दिड-कवाडेण ।
हिंसादि दुवाराणि वि, दिढ-वय-फलिहहिं रुंभंति ।।२१।।

मिथ्यात्वस्रवद्वारं रुध्यते सम्यक्त्वदृढ़कपाटेन ।
हिंसादिद्वाराणि अपि दृढ़व्रतपरिघैः रुध्यन्ते ।।२१।।

सम्यक्त्वरूपी जीव दृढ़ कपाटों से मिथ्यात्वरूपी आस्रव द्वार को रोकता है तथा दृढ व्रतरूपी कपाटों में हिंसा आदि द्वारों को रोकता है ।

The soul aspiring after liberation blocks the doors of influx of wrong faith by the firm shutters of righteousness and those of violence etc. by the shutters of staunch vows. (608)

हो जैसे तालाब बड़ा, करे बंद जल द्वार ।
ताप सूर्य का ज्यूँ बढ़े, पानी का संहार ।।३.३४.२२.६०९।।

कर्म बंधन संयम से, बंद हो आस्रव द्वार ।
नष्ट हो संचित कर्म सभी, तप निर्जरा अपार ।।३.३४.२३.६१०।।

जहा महातलायस्स, सन्निरुद्धे जलागमे ।
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे ।।२२।।

एवं तु संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे ।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तक्सा निज्जरिज्जइ ।।२३।।

यथा महातडागस्य, सन्निरुद्धे जलागमे ।
उत्सिञ्चनया तपनया, क्रमेण शोषणा भवेत् ।।२२।।

एवं तु संयतस्यापि पापकर्मनिरास्रवे ।
भव कोटिसंचितं कर्म, तपसा निपर्जीर्यते ।।२३।।

जैसे किसी बड़े तालाब का जल, जल के मार्ग को बन्द करने से, पहले के जल को उलीचने से तथा सूर्य के ताप से क्रमशः सूख जाता है वैसे ही संयमी का करोड़ों भावों से संचित कर्म, पाप कर्म के प्रवेश मार्ग को रोकने से तथा तप से निर्जरा को प्राप्त होता है।

Just as the water of a large tank gradually evaporates (disappears) and the tank dried up by closing all the inlets thereafter by throwing of the remaining water; and by the scorching heat of sun; similarly, the past accumulated karmas (i.e. karmas earned during the past millions of lives) of an abstains person get destroyed (and eradicated) by closing the inlets of vicious karmas (papa-karmas) and by austerities that lead to the shedding of karmas. (609 & 610)

सिर्फ़ तप से मोक्ष नहीं, हो यदि संवरहीन ।
पानी जब आता रहे, ताल न नीर विहीन ।।३.३४.२४.६११।।

तवसा चेव ण मोक्खो, संवर-हीणस्स होइ जिण-वयणे ।
ण हु सोत्ते णविसंते, किसिणं परिसुस्सदि तलायं ।।२४।।

तपसा चैव न मोक्षः, संवरहीनस्य भवति जिनवचने ।
न हि स्रोतसि प्रविशति, कृत्स्नं परिशुष्यति तडागम् ।।२४।।

जिनवचन का कहना है कि संवरविहीन मुनि को केवल तप करने से ही मोक्ष नही मिलता; जैसे की पानी के आने का स्रोत खुला रहने पर तालाब का पूरा पानी नही सूखता।

A saint who does not stop the inflow of karmas to soul shall not attain salvation by performing austerities. Such a saint can be well compared to a tank, whose inlets of water is not closed and consequently which does not get fully dried up inspite of all the efforts, made to that effect. (611)

अज्ञानी क्षय कर्म का, तपे करोड़ों साल ।
ज्ञानी क्षय त्रिगुप्ति से, एक श्वास कर डाल ।।३.३४.५.६१२।।

जं अण्णानी कम्म खवेइ, बहुआहिं वासकोडीहिं ।
तं नाणी तह जुत्ता, अवेइ उस्सास मेत्तेण ।।२५।।

यद् अज्ञानी कर्म, क्षपयति बहुकाभिर्वर्षकोटीभिः ।
तद् ज्ञानी त्रिभिर्गुप्तः, क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण ।।२५।।

अज्ञानी व्यक्ति तप के द्वारा करोड़ों जन्म में जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने कर्मों का नाश ज्ञानी व्यक्ति त्रिगुप्ति के द्वारा एक साँस में सहज कर डालता है।

A wise man by properly observing (there) preservations disciplines easily, destroys as many karmas, in a breath as are destroyed by an ignorant person in millions (Crores) of years or lives by means of austerities (In absence of proper observation of Preservations). (612)

सेनापति हो कालवश, सेना होती नाश ।
मोहनीय यदि नष्ट हों, कर्मों का तब नाश ।।३.३४.२६.६१३।।

सेणावइम्मि णिहए, जहा सेणा पणस्सई ।
एवं कम्माणि णस्संति, मोहणिज्जे खयं गए ।।२६।।

सेनापती निहते, यथा सेना प्रणश्यति ।
एवं कर्माणि नश्यन्ति, मोहनीये क्षयं गते ।।२६।।

जैसे सेनापति के मारे जाने पर सेना नष्ट हो जाती है वैसे ही एक मोहनीय कर्म के क्षय होने पर समस्त कर्म सहज ही नष्ट हो जाते हैं।

Just as an army is, (easily) exterminated after the elimination of its commander; similarly, all the karmas are easily destroyed after the eradication (destruction) of the deluded. (613)

कर्म मलसे विमुक्त हो, गमन करे लोकान्त ।
सर्वदर्शी सर्वज्ञ लहें, आत्मिक सुखद अनन्त ।।३.३४.२७.६१४।।

कम्ममल-विप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता ।
सो सव्वणाण-दरिसी, लहदि सुह-मणिंदिय-मणंतं ।।२७।।

कर्ममलविप्रमुक्त, उर्ध्वं लोकस्यान्तमधिगम्य ।
स सर्वज्ञानदर्शी, लभते सुखमनिन्द्रियमनन्तम् ।।२७।।

कर्मफल से विमुक्त जीव ऊपर लोकान्त तक जाता है और वहाँ वह सर्वज्ञ व सर्वदर्शी के रूप में अतीन्द्रिय अनन्तसुख भोगता है ।

The soul, liberated from the Karmic pollution, ascends the top of the universe and there enjoys transcendental infinite bliss, possessing all knowledge and all perception (i. e., being omniscient). (614)

चक्री भोगभूमिजीव, फणीश या नाकेश ।
सुख पाए जितना उससे, अनंत सुख लोकेश ।।३.३४.२८.६१५।।

चक्कि-कुरु-फणि-सुरंदेसु, अहमिंदे जं सुहं तिकालभवं ।
तत्तो अणंतगुणिदं, सिद्धाणं खणसुहं होदि ।।२८।।

चक्रिकुरुफणिसुरेन्द्रेषु, अहमिन्द्रे यत् सुखं त्रिकालभवम् ।
तत् अनन्तगुणितं, सिद्धानां क्षणसुखं भवति ।।२८।।

चक्रवर्तियों को, उत्तरकुरु, दक्षिणकुरु आदि भोगभूमिवाले जीवों को तथा फणीन्द्र, सुरेन्द्र एवं अहमिन्द्रों को त्रिकाल में जितना सुख मिलता है उस सबसे भी अनन्तगुना सुख सिद्धों को एक क्षण में अनुभव होता है ।

The bliss attained by the Siddhas in a moment is infinite times more than the pleasure enjoyed by the emperors, by the Jivas residing in the regions of the Karmas, and by the Fanindras, Surendras and Ahamindrasin all the ages. (615)

वर्णन शब्द ना कर सके, नहीं तर्क का काम ।
मानस का व्यापार नहीं, खेद न होत मुक़ाम ।।३.३४.२९.६१६।।

सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का जत्थ ण विज्जइ ।
मई तथ ण गाहिया, ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेयण्णे ।।२९।।

सर्वे स्वराः निवर्त्तन्ते, तर्को यत्र न विद्यते ।
मतिस्तत्र न गाहिका, ओजः अप्रतिष्ठानस्य खेदज्ञः ।।२९।।

मोक्ष की अवस्था का शब्दों और तर्कों में वर्णन संभव नही है। मोक्ष अवस्था संकल्प–विकल्पातीत है, मलकलंक से रहित होने से वहाँ ओज भी नहीं है। रागातीत होने के कारण सातवें नर्क का ज्ञान होने पर भी किसी प्रकार का खेद नही है।

It is not possible to describe the state of liberation in words as they transcend any such verbal expression. Nor is there the possibility of argument as no mental business is possible. The state of liberation transcends all the determinations and alternatives. Side by side with it, there is no pride due to being devoid of all the blemishes of the mind. There is no melancholy even if there is knowledge of upto the seventh hell, due to it transcending the pleasure and pain. (616)

जहाँ नहीं सुख–दुख रहे, पीड़ा बाधा भान ।
मरण–जनम का चक्र नहीं, रहता केवल ज्ञान ।।३.३४.३०.६१७।।

णवि दुक्खं णवि सुक्खं, णवि पीडा णेव विज्जे बाहा ।
णवि मरणं णवि जण्णं, तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।।३०।।

नापि दुःखं नापि सौख्यं, नापि पीडा नैव विद्यते बाधा ।
नापि मरणं नापि जननं, तत्रैव च भवति निर्वाणम् ।।३०।।

जहाँ न दुख है न सुख, न पीड़ा है न बाधा, न मरण है न जन्म, वही निर्वाण है।

Where there is neither pain nor pleasure, neither suffering nor obstacle, neither birth nor death, there is emancipation. (617)

इन्द्रिय, उपसर्ग नहीं, नींद न विस्मय, मोह ।
भूख प्यास रहती नहीं, निर्वाणी आरोह ।।३.३४.३१.६१८।।

णवि इंदिय उवसग्गा, णवि मोहो विम्हियो ण णिद्दा य ।
ण य तिण्हा णेव छुहा, तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।।३१।।

नापि इन्द्रियाणि उपसर्गाः, नापि मोहो विस्मयो न निद्रा च ।
न च तृष्णा नैव क्षुधा, तत्रैव च भवति निर्वाणम् ।।३१।।

जहाँ न इन्द्रियाँ है न उपसर्ग, न मोह है न विस्मय, न निन्द्रा है न तृष्णा और न भूख, वहीं निर्वाण है।

Where there are neither sense organs, nor surprise, nor sleep, nor thirst, nor hunger, there is emancipation. (618)

नहीं कर्म, नोकर्म ना, चिंता नहीं दुर्ध्यान ।
धर्म, शुक्ल और ध्यान नहीं, वहीं होय निर्वाण ।।३.३४.३२.६१९।।

णवि कम्मं णोकम्म, णविं चिंता णेव अट्टरुद्दाणि ।
णवि धम्म-सुक्क-झाणे, तत्थेव य होइ णिव्वाणं ।।३२।।

नापि कर्म्म नोकर्म्म, नापि चिन्ता नैवार्तरौद्रे ।
नापि धर्म्मराक्लध्याने, तत्रैव च भवति निर्वाणम् ।।३२।।

जहाँ कर्म ना अकर्म है, न चिन्ता है न आर्तरौद्र ध्यान, न धर्म ध्यान है और न शुक्ल ध्यान, वही निर्वाण है ।

Where there is neither Karma, nor quasi-Karma nor the worry, nor any type of thinking which is technically called Artta, Raudra, Dharma and Sukla, there is Nirvana. (619)

केवल दर्शन ज्ञान रहे, सुख और वीर्य अनन्त ।
अरूप प्रदेशत्व गुण अस्तित्ववादि अनन्त ।।३.३४.३३.६२०।।

विज्जदि केवलणाणं, केवलसोक्खं च केवलं विरियं ।
केवलदिट्ठि अमुत्तं, अत्थित्तं सप्पदेसत्तं ।।३३।।

विद्यते केवलज्ञानं, केवलसौख्यं च केवलं वीर्यम् ।
केवलदृष्टिरमूर्तत्व–मस्तित्वं सप्रदेयत्वम् ।।३३।।

वहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख, केवलवीर्य, केवलदृष्टि, अरूपता, अस्तित्व और सप्रदेशत्व ये गुण होते हैं।

In the emancipated souls, there are attributes like absolute knowledge, absolute bliss, absolute potentiality, absolute vision, formlessness, existence and extension. (620)

महर्षि को निर्वाण हो, सिद्ध लोक अबाध ।
मंगल भी लोकाग्र है, शिव रहे अनाबाध ।।३.३४.३४.६२१।।

णिव्वाणं ति अबाधं ति, सिद्धी लोग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरन्ति महेसिणो ।।३४।।

निर्वाणमित्यबाधमिति, सिद्धीर्लोकाग्रमेव च ।
क्षेमं शिवमनाबाधं, यत् चरन्ति महर्षयः ।।३४।।

जिस स्थान को महर्षि ही प्राप्त करते हैं वह स्थान निर्वाण है, अबाध है, सिद्धि है, लोकाग्र है, क्षेम, शिव और अनाबाध है।

Emancipation which is realized only by the great is the state of unobstructedness, perfection, residing at the top of universe, wellbeing, goodness and freedom from the obstacles. (621)

तुम्बी, अगन एरण्ड हो, बाण चले आकाश ।
सिद्ध ऊपर को बढ़त, करलो यह विश्वास ।।३.३४.३५.६२२।।

लाउ य एरंड–फले, अग्गीधूमे उसु धणु–विमुक्के ।
गई पुव्वपओगेणं, एवं सिद्धाण वि गई तु ।।३५।।

अलाबु च एरण्डफल–मग्निधूम इषुर्धनुर्विप्रमुक्तः ।
गतिः पूर्वप्रयोगेणैव, सिद्धानामपि गतिस्तु ।।३५।।

जैसे मिट्टी से लिप्त तुम्बी डूब जाती है और मिट्टी का लेप दूर होते ही तैरने लग जाता है अथवा जैसे एरण्ड का फल धूप से सूखने पर फटता है तो उसके बीज ऊपर को ही जाते है, जैसे अग्नि की गति स्वभावतः ऊपर की ओर ही होती है अथवा जैसे धनुष से छूटा हुआ बाण पूर्व प्रयोग से मतिमान होता है, वैसे ही सिद्ध जीवों की गति भी स्वभावतः ऊपर की ओर होती है।

Just as there is an upward motion in gourd if freed inside the water, in caster-seed (when it is dried), in fire or smoke and in the arrow shot from the bow, in the sameway there is a natural upward motion of the emancipated souls. (622)

अव्याबाध अतीन्द्रिय, अनुपम पुण्य न पाप।
पुनर्जन्म का चक्र नहीं, नित्य अचल प्रताप ।।३.३४.३६.६२३।।

अव्वाबाह–मणिंत्थि–मणोवमं पुण्ण–पाव–णिम्मुक्कं ।
पुण–रागमण–वरहियं, णिच्चं अचलं अणालंबं ।।३६।।

अव्याबाधमनिन्द्रिय–मनुपमं पुण्यपापनिर्म्मुक्तम् ।
पुनरागमनविरहितं, नित्यमचलमनालम्बम् ।।३६।।

परमात्म–तत्व, अव्याबाध, अतीन्द्रिय, पुण्य–पापरहित, पुनरागमनरहित, नित्य, अचल और निरालम्ब होता है।

The state of emancipation is free from all obstacles and senseorgans, unique, devoid of merit and demerit, devoid of rebirth, eternal, immobile and independent. (623)

प्रकरण ३५ - द्रव्यसूत्र

Chapter 35 - Precepts On The Substance

धर्म अधर्म काल पुद्गल, जीव ज्ञप्त आकाश ।
छह द्रव्यात्मक लोक यह, जिनशासन विश्वास ।।३.३५.१.६२४।।

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गलजन्तवो ।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ।।१।।

धर्मोऽधर्म आकाशं, कालः पुद्गला जन्तवः ।
एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनैर्वरदर्शिभिः ।।१।।

जिनवर ने लोक को धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव इस प्रकार छह द्रव्यात्मक कहा है। चलायमान इस विश्व के उस एकमेव गुरु अनेकान्तवाद को प्रणाम करता हूँ।

The supreme visioned Jinas have described the universe to be constituted of six substances viz. Dharma (medium of motion), Adharma (medium of rest), Akasa (space), kala (time), Pudgala (matter) and Jiva (soul). (624)

धर्म अधर्म काल पुद्गल, गुण आकाश न जीव ।
चेतन में गुण जीव हों, बाकी रहे अजीव ।।३.३५.२.६२५।।

आगास-काल-पुग्गल-धम्मा-धम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं, भणिदं जीवस्स चेदणदा ।।२।।

आकाशकालजीवा, धर्माधर्मेषु न सन्ति जीवगुणाः ।
तेषामचेतनत्वं, भणितं जीवस्य चेतनता ।।२।।

धर्म अधर्म काल पुद्गल और आकाश द्रव्यों में जीव के गुण नही होते इसलिये उन्हें अजीव कहा गया है। जीव का गुण चेतनता है।

The substances, Akasa, kala, Pudgala, Dharma and Adharma, do not possess the attributes of the Jiva (i.e. devoid of life) and they therefore have been called Ajivas (non-living). The attribute of Jiva is conscious. (626)

धर्म अधर्म जीव नभ, द्रव्य अमूर्तिक काल।
पुद्गल मूर्तिक द्रव्य है, चेतन जीव कमाल ।।३.३५.३.६२६।।

आगास-काल-जीवा धम्मा-धम्मा य मुत्ति-परिहीणा ।
मुत्तं पुग्गल-दव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ।।३।।

आकाशकालजीवा, धर्माधर्मौ च मूर्तिपरिहीनाः ।
मूर्त्तं पुद्गलद्रव्यं, जीवः खलु चेतनस्तेष ।।३।।

आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्तिक है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है। इन सबने केवल जीव द्रव्य ही चेतन है।

Aksa, Kala, Jiva, Dharma and Adharma are incorporeal, where as Pudgala (matter) is corporeal. Ofthese, only the soulsubstance is conscious. (626)

क्रियाशील जीव पुद्गल, शेष द्रव्य ना चाल ।
पुद्गल चलते जीव से, पुद्गल साधन काल ।।३.३५.४.६२७।।

ण भवो भंगविहीणो, भंगो वा णत्थि संभव-विहीणो ।
उप्पादो वि य भंगो, ण विणा धोव्वेण अत्थेण ।।४।।

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण ये सेसा ।
पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ।।४।।

जीव और पुद्गलय ये दो द्रव्य सक्रिय है। शेष सब द्रव्य निष्क्रिय है। जीव के सक्रिय होने का बाह्य साधन कर्म नोकर्मरूप पुद्गल है और पुद्गल के सक्रिय होने का बाह्य साधन कालद्रव्य है।

The Jiva (soul), the Pudgala (matter), these two substances are active, while the rest are inactive. The external cause of the activity of soul is Karmic matter and of the activity of matter is the substance kala (time). (627)

धर्म अधर्म आकाश भी, इक-इक जगत विशाल।
अनंत काल जग में बसे, जीवन पुद्गल काल ।।३.३५.५.६२८।।

धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ।।५।।

धर्मोऽधर्म आकाशं, द्रव्यमेकैकमाख्यातम् ।
अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः (समयाः) पुद्गल जन्तवः ।।५।।

धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य संख्या में एक-एक हैं। काल, पुद्गल और जीव अनंत-अनंत है।

Dharma, Adharma and Akasa are singular in number, Kala, Pudgala and Jiva-these three are infinite in number. (628)

धर्म अधर्म ही लोक में, नभ है लोक अलोक।
जीव लोक में काल बसे, काल रहे जन लोक।।३.३५.६.६२९।।

धम्माधम्मे य दोऽवेए, लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे च आगासे, समए समयखेत्तिए ।।६।।

धर्माऽधर्मौ च द्वायेतौ, लोकमात्रौ व्याख्यातौ ।
लोकेऽलोके चाकाशः, समयः समयक्षेत्रिकः ।।६।।

धर्म और अधर्म ये दोनों ही द्रव्य लोक प्रमाण है। आकाश लोक और अलोक में व्याप्त है। काल केवल समयक्षेत्र और मनुष्यक्षेत्र में ही है।

Dharma and Adharmaboth these substances have their extension throughout the universe, while Akasa (space) pervades the universe and beyond the universe. Kala pervades only the time region. (629)

द्रव्य सभी अवकाश दे, इक दूजे में जाय ।
रहे परस्पर नित्य ही, गुण छोड़ नहीं पाय ।।३.३५.७.६३०।।

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगास-मण्णमण्णस्स ।
मेलंता विय णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ।।७।।

अन्योऽन्यं प्रविशन्तः, ददत्यवकाशमन्येऽन्यस्य ।
मिलन्तोऽपि च नित्यं, स्वकं स्वभावं न विजहति ।।७।।

ये सब द्रव्य परस्पर में प्रविष्ट है। एक द्रव्य दूसरे को अवकाश देते हुए स्थित है। ये इसी प्रकार अनादिकाल से मिले हुए हैं किन्तु अपना अपना स्वभाव नही छोड़ते।

These six substances (dravyas) are coextensive in the same space and accommodate one-another, they are mixed up with one another from the time infinite. However, they maintain their identity without loosing their respective nature. (630)

स्पर्श रूप रस गंध नहीं, शब्द न धर्म स्वभाव ।
असंख्यप्रदेशी लोक में, खण्ड न व्याप्त प्रभाव ।।३.३५.८.६३१।।

धम्मत्थिाय-मरसं अवण्ण-गंधं असद्द-मप्फासं ।
लोगोगाढं पुट्ठं, पिहुल-मसंखादिय-पदेसं ।।८।।

धर्मास्तिकायोऽरसो-ऽवर्णगन्धोऽशब्दोऽस्पर्शः ।
लोकावगाढः स्पृष्टः, पृथुलरोऽसंख्यातिक प्रदेशः ।।८।।

धर्मास्तिकाय रस, रूप, स्पर्श, गन्ध और शब्दरहित है। समस्त लोकाकाश में व्याप्त है, अखण्ड विशाल और असंख्यातप्रदेशी है।

Dharmastikaya is devoid of the attributes like taste, colour, smell, sound and touch. It pervades universe, it is independent, huge and has innumerable pradesas, i.e., spacepoints. (631)

गमन करे मछली जहाँ, होती जल की बात ।
धर्म द्रव्य में तैरते, जीव पुद्गल दिन रात ।।३.३५.९.६३२।।

उदयं जह मच्छाणं गमणा–णुग्गहयरं हवदि लोए ।
तह जीव–पुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ।।९।।

उदकं यथा मत्स्यानां, गमनानुग्रहकरां भवति लोके ।
तथा जीवपुद्गलानां, धर्म द्रव्यं विजानीहि।।९।।

जैसे इस लोक में जल मछलियों के गमन में सहायक होता है वैसे ही धर्मद्रव्य जीवों तथा पुद्गल के गमन में सहायक सा निर्मित होता है ।

Just as water is helpful in the movement of fishes so is the Dharma in the movement of souls and matter. (632)

धर्म होता स्थिर सदा, उदासीन हर हाल ।
जीव पुद्गल चले फिरे, नहीं धर्म की चाल ।।३.३५.१०.६३३।।

ण य गच्छादि धम्मत्थी, गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स ।
हवदि गती स प्पसरो, जीवाणं पुग्गलाणं च ।।१०।।

न च गच्छति धर्मास्तिकायः, गमनं न करोत्यन्यद्रव्येस्य ।
भवति गतेः स प्रसरो, जीवानां पुद्गलानां च ।।१०।।

धर्मस्तिकाय न तो गमन करता है न अन्य द्रव्यों को गमन कराता है । वह तो जीवों और पुद्गल की गति में उदासीन कारण है । यही धर्मास्तिकाय का लक्षण है ।

Dharmastikaya does not move itself nor cause other things to move; but it is an all pervading medium of motion for the living and non-living bodies. (633)

जैसे होता धर्म द्रव्य, द्रव्य अधर्म भी जान ।
क्रियावान की जो स्थिति, स्थित करें ज्यू स्थान ।।३.३५.११.६३४।।

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदि-किरिया-जुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ।।११।।

यथा भवति धर्मद्रव्यं, तथा तद् जानीहि द्रव्यमधर्माख्यम् ।
स्थितिक्रियायुक्तानां, कारणभूतं तु पृथिवीव ।।११।।

धर्मद्रव्य की तरह ही अधर्मद्रव्य है । परन्तु यह है कि यह स्थितिरूप क्रिया से युक्त जीवों और पुद्गलों की स्थिति में पृथ्वी की तरह निमित्त बनता है।

Know that just as Dharma is substance, so is the Adharma. It is helpful in bringing about the rest of the Jivas and Pudgalas capable of being static. (634)

अमूर्त व्यापक चित्त नहीं, द्रव्य गगन अवगाह ।
भेद लोक अलोक रहे, जिनदृष्टि नभ राह ।।३.३५.१२.६३५।।

चेयणरहियममुत्तं, अवगाहणलक्खणं च सव्वगयं ।
लोयालोयविभेयं, तं णहदव्वं जिणुद्दिट्ठं।।१२।।

चेतनारहितममूर्तं, अवगाहनलक्षणं च सर्वगतम् ।
लोकालोकद्विभेदं, तद् नभोद्रव्यं जिनोद्दिष्टम्।१२।।

जिनेन्द्र देव ने आकाशद्रव्य को अचेतन, अमूर्त, व्यापक और अवगाह लक्षणवाला कहा है । लोक और अलोक के भेद से आकाश दो प्रकार का है ।

The substance space is devoid of consciousness, is incorporeal, accommodating and allpervading. It is of two types one is lokakasa i.e., (space within the universe) and Alokakasa i.e., space beyond the universe. (635)

जीव अजीव बसे जहाँ, होता है वो लोक ।
नभ है मात्र अजीव यहाँ, कहते उसे अलोक ।।३.३५.१३.६३६।।

जीवा जीव चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए।
अजीव-देस-मागासे, अलोए से वियाहिए।।१३।।

जीवाश्चैवाजीवाश्च, एष लोको व्याख्यातः।
अजीवेश आकाशः, अलोकः स व्याख्यातः ।।१३।।

यह लोक जीव और अजीवमय कहा गया है। जहाँ अजीव का भाग केवल एक आकाश पाया जाता है उसे अलोक कहते हैं।

It is explained that the loka, i.e., universe consists of living and non-living substances, whereas Aloka consista of only a part of one non-living substance i.e., (space) (636)

स्पर्शरूप रस गन्ध नहीं, अलघु गुण अगुरु स्वभाव ।
वर्तना लक्षण सदा, काल द्रव्य का भाव ।।३.३५.१४.६३७।।

पास-रस-गंध-वण्ण-व्वदिरित्तो अगुरुलहुग-संजुत्तो ।
वट्ट-लक्खण-कलियं, काल-सरवं इमं होदि ।।१४।।

स्पर्शरसगन्धवर्णव्यतिरिक्तम् अगुरुलघुकसंयुक्तम् ।
वर्तनलक्षणकलितं कालस्वरूपम् इदं भवति ।।१४।।

स्पर्श, गन्ध, रस और रूप से रहित, अगुरु-लघु गुण से युक्त तथा वर्तना लक्षणवाला काल द्रव्य कहा गया है।

The substance time is devoid of attributes like touch, taste, smell and colour and properties like heaviness and lightness. It is characterized by mutation. (637)

सतत परिमणशील हो, जीव व पुद्गल द्रव्य ।
परिणमन का आधारभूत, निश्चय काल द्रव्य ।।३.३५.१५.६३८।।

जीवाण पुग्गलाणं हुवंति परियट्टणाइ विविहाइं।
एदाणं पज्जाया, वट्टंते, मुक्ख–काल–आधारे ।।१५।।

जीवानां पुद्गलानां भवन्ति परिवर्तनानि विविधानि ।
एतेषां पर्याया वर्तन्ते मुख्यकालआधारे ।।१५।।

जीवों और पुद्गलो में नित्य होनेवाले अनेक प्रकार के परिवर्तन या पर्याय मुख्यतः कालद्रव्य के आधार से होते हैं। अर्थात उसके परिणमन में कालद्रव्य निमित्त होता है। इसी को आगम में निश्चयकाल कहा गया है।

The multiple mutations and various modes of the soul and matter are mainly due to time substance. (638)

समय आवलि प्राण कहो, साँस स्तोक है भेद ।
सभी काल व्यवहार यह, वीतराग का वेद ।।३.३५.१६.६३९।।

समयावलि–उस्सासा, पाणा थोवा य आदिया मेदा ।
ववहार–काल–णामा, णिद्दिट्ठा वीयराएहिं ।।१६।।

समयआवलिउच्छ्वासाः प्राणाः स्तोकाश्च आदिका भेदाः ।
व्यवहारकालनामानः निर्दिष्टा वीतरागैः ।।१६।।

वीतराग ने बताया है कि व्यवहारकाल समय, आवलि, उच्छवास, प्राण स्तोक आदि रूपात्मक है।

From practical view-point the time is meansured by diverse units like avali (closing and opening of eye-lids) Ucchvasa (time taken in an exhalation), Prana (taken in one respiration) and stoka (second). It is asserted by the Jinas. (639)

अणु स्कन्ध है दो यही, पुद्गल के परकार ।
परमाणु के दो विकल्प, स्कन्ध षष्ठ आकार ।।३.३५.१७.६४०।।

अणुखंधवियप्पेण दु, पोग्गलवण्णं हवेइ दुवियप्पं ।
खंधा हु छप्पयारा, परमाणु चेव दुवियप्पो ।।१७।।

अणुस्कन्ध विकल्पेन तु, पुद्गलद्रव्यं भवति द्विविकल्पम् ।
स्कन्धाः खलु षट्प्रकाराः, परमाणुश्चैव द्विविकल्पः ।।१७।।

अणु और स्कन्ध के रूप में पुद्गल द्रव्य दो प्रकार का है । स्कन्ध छह प्रकार का है और परमाणु दो प्रकार का है। कारण परमाणु और कार्य परमाणु ।

The substance matter is of two kinds-in the form of an atom (paramanu) and in the form of molecules. Molecules are of six kinds, while the atoms are of two kinds. (640)

अति-सूक्ष्म, विशाल अति, सूक्ष्म-बड़ा प्रकार ।
सूक्ष्म व अतिसूक्ष्म भी, स्कन्ध है छह विचार ।।३.३५.१८.६४१।।

अइथूलथूल थूलं थूलसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं अइसुहुमं इदि, धरादियं होदि छब्भेयं ।।१८।।

अतिस्थूलस्थूलाः स्थूलाः, स्थलसूक्ष्माश्च सूक्ष्मस्थूलाश्च ।
सूक्ष्मा अतिसूक्ष्मा इति, धरादयो भवन्ति षड्भेदाः ।।१८।।

स्कन्ध पुद्गल के छह प्रकार-अतिस्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म । पृथ्वी आदि इसके छह उदाहरण हैं ।

Gross-gross, gross, gross-fine, fine-gross, fine and fine-fine, these are the six kinds of the aggregate matter (skandha Pudgal). The earth etc. are its six examples. (641)

पृथ्वी, जल, छाया, इंद्रिय, परमाणु कर्म प्रकार ।
छह विकल्प जिनवर कहे, स्कन्ध द्रव्य विचार ।।३.३५.१९.६४२।।

पुढवी जलं च छाया, चउ-रिंदिय-विसय-कम्म-परमाणु ।
छव्विह- भेयं भणियं, पोग्गल-दव्वं जिणवरेहिं ।।१९।।

पृथिवी जलं च छाया, चतुरिन्द्रियविषय-कर्मपरमाणवः ।
षड्विधभेदं भणितं, पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ।।१९।।

पृथ्वी-अतिस्थूल, जल-स्थूल, छाया प्रकाश आदि नेत्र इन्द्रिय विषय-स्थूलसूक्ष्म, रस गंध स्पर्श आदि शेष इन्द्रिय विषय सूक्ष्मस्थूल, कार्मण स्कन्ध-सूक्ष्म तथा परमाणु-अतिसूक्ष्म का उदाहरण है ।

The earth, the water, the shadow, the objects of four senses, (except sight), the Karmic matter and the atoms, these are the six different forms of matter. (642)

आदि मध्य औ अन्त रहित, इक प्रदेश अविभाग ।
ग्रहण इन्द्रियाँ करें नहीं, ना परमाणु ।।३.३५.२०.६४३।।

अंतादि-मज्झ-हीणं, अपदेसं इंदिएहिं ण हु गेज्झ ।
जं तव्व अविभत्तं, तं परमाणुं कहंति जिणा ।।२०।।

अन्त्यादिमध्यहीनम् अप्रदेशम् इन्द्रियैर्न खलु ग्रह्यम् ।
यद् द्रव्यम् अविभक्तम् तं परमाणु कथयन्ति जिनाः ।।२०।।

जो आदि, मध्य और अन्त से रहित है, जो केवल एक प्रदेश है, जिसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता वह विभागविहीन द्रव्य परमाणु है ।

The substance of the particle of matter (paramanu dravya) is without beginning, without middle and without end; it has hot only one space unit (pradesh) neither their space units nor more than two. It is not perceivable by sense organs. It is indivisible. (643)

रस स्पर्श गंध पूरण गलन, होते रहते काल ।
स्कंध सहित परमाणु भी, पुद्गल है हर हाल ।।३.३५.२१.६४४।।

वण्ण-रस-गंध-फासे, पूरण-गलणाइ सव्व-कालम्हि ।
खंदं पि व कुणमाणा, परमाणु पुग्गला तम्हा ।।२१।।

वर्णरसगन्धस्पर्शे पूरणगलनानि सर्वकाले ।
स्कन्धा इव कुर्वन्तः परमाणवः पुद्गलाः तस्मात् ।।२१।।

जिसमें पूरण गलन की क्रिया होती है अर्थात जो टूटता जुड़ता रहता है वह पुद्गल है। स्कन्ध की भाँति परमाणु के भी स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुणों में सदा पूरण-गलन क्रिया होती रहती है इसलिये परमाणु भी पुद्गल है।

The particles of matter unite and disunite like molecules of matter, the particles of matter have touch, taste, smell and colour. Hence are also matter. (644)

जीयेगा, जीता, जिया, चार प्राण है पास ।
बल, इन्द्रिय आयु रहे, जीव द्रव्य उच्छवास ।।३.३५.२२.६४५।।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हुए जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण बल-मिंदिय-माउ-उस्सासो ।।२२।।

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति, जीविष्यति यः खलु जीवितः पूर्वं ।
स जीवः, प्राणाः, पुनर्बलमिन्द्रियमायु रुच्छ्वासः ।।२२।।

जो चार प्राणों में वर्तमान में जीता है, भविष्य में जीयेगा और अतीत में जिया है वह जीवद्रव्य है। प्राण चार है। बल, इन्द्रिय, आयु और उच्छ्वास

That which has lived in past, is living at present; and shall live in future, with four vitalities is the substance of soul the vitalities are of four kinds; 1. Power of body; 2. Sense organs; 3. Age; and 4. Respiration (645)

देह सा आकार धरे, बड़ा व छोटा वेश ।
व्यवहार नय असम रखे, निश्चय असंख्य प्रदेश ।।३.३५.२३.६४६।।

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असुगुहदो ववहारा, णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ।।२३।।

अणुगुरुदेहप्रमाणः, उपसंहारप्रसर्प्पतः चेतयिता ।
असमवहतः व्यवहारात्, निश्चयनयतः असंख्यदेशो वा ।।२३।।

व्यवहारनय के हिसाब से जीव अपने शरीर के बराबर आकार का होता है लेकिन निश्चयनय अनुसार जीव असंख्यात प्रदेशी है ।

From practical point of view, the (impure) soul is coextensive of its body excepting the cases when it is in the state of "samudghata", when it utilises its capacity to enlarge or shorten from Real point of view the soul has innumerable space points. (646)

पद्मरागमणि की प्रभा, प्रभासिव बात ।
बसे जीव बस देह में, बाहर नहीं बिसात।।३.३५.२४.६४७।।

जह पउम–राय–रयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो, सदेह–मत्तं पभासयदि ।।२४।।

यथा पद्मरागरत्नं, क्षिप्तं क्षीरे प्रभासयति क्षीरम् ।
तथा देही देहस्थः, स्वदेहमात्रं प्रभासयति ।।२४।।

जैसे पद्मरागमणि दूध में डाल देने पर अपनी प्रभा से दूध को प्रभासित करती है– दुग्धपात्र के बाहर किसी को नही, वैसे ही जीव शरीर में रहकर अपने शरीरमात्र को प्रभासित करता है अन्य किसी बाह्य पदार्थ को नही।

Just as a ruby thrown into milk illuminates the whole milk only, so also an embodied soul illuminates its own body only. (647)

आत्मा ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण ।
ज्ञेय लोकालोक है, सर्वव्यापि यह ज्ञान ।।३.३५.२५.६४८।।

आदा णाणपमाणं, णाणं णेयप्पमाण–मुद्दिट्ठं ।
णेयं लोयालोयं तम्हा णाणं तु सव्वगयं ।।२५।।

आत्मा ज्ञानप्रमाणः, ज्ञानं ज्ञेयप्रमाणमुद्दिष्टम् ।
ज्ञेयं लोकालोकं, तस्माज्ज्ञानं तु सर्वगतम् ।।२५।।

व्यवहारनय से जीव शरीरव्यापी है लेकिन वह ज्ञान–प्रमाण है, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है तथा ज्ञेय लोक–अलोक है अतः ज्ञान सर्वव्यापी है । ज्ञान प्रमाण आत्मा होने से आत्मा भी सर्वव्यापी है।

(Thus from practical stand point, the (impure) soul is coextensive of the body; (but) the soul is coextensive of knowledge Jnan; Jnan/knowledge being coextensive of the knowable (Jneya); and the knowable (jneya) being coextensive of the universe (Lok) and nonuniverse (Alok) knowledge becomes (is proved to be) all pervasive (Sarva-vyapi) the soul being coextensive of knowledge is all pervasive (Sarvavyapi). (648)

जीव है संसारी विमुक्त, दोनों चेतन भाव ।
देह नहीं या देह हो, पर उपयोग स्वभाव ।।३.३५.२६.६४९।।

जीवा संसारत्था, णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ।
उवओग–लक्खणा वि य, देहादेह–प्पवीचारा ।।२६।।

जीवाः संसारस्था, निर्वाताः, चेतनात्मका द्विविधाः ।
उपयोगलक्षणा अपि च, देहादेहप्रवीचाराः ।।२६।।

जीव दो प्रकार के है– संसारी और मुक्त । दोनों ही चेतना स्वभाव वाले है और उपयोग लक्षणवाले है । संसारी जीव शरीरी होते हैं और मुक्तजीव अशरीरी ।

The souls are of two kinds: 1. Mundane (or impure) souls; and 2. Pure and perfect (Liberated) souls. Consciousness constitutes the nature of both kinds of souls both have the characteristic of attentiveness/attention (upayog). The mundane (impure) souls are embodied and pure souls are bodiless. (649)

जल अग्नि वायु वनस्पति भू, एक इन्द्रिय जीव ।
द्वि त्रि चतु पंचेन्द्रिय, त्रस शंखादि सजीव ।।३.३५.२७.६५०।।

पुढवि–जल–तेय–वाऊ–वणप्फदी विविह–थावरेइंदी ।
बिगि–तिग–चदु–पंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ।।२७।।

पृथिवीजलतेजोवायु–वनस्पतयः विविधस्थावरैकेन्द्रियाः ।
द्विकत्रिकचतुपञ्चाक्षाः, त्रसजीवाः भवन्ति शङ्खादयः ।।२७।।

संसारी जीव भी त्रस और स्थावर दो प्रकार के है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये सब एकेन्द्रिय और स्थावर जीव है। शंख, पिपीलिका (चीटी), भ्रमर तथा मनुष्य–पशु आदि क्रमशः द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरन्द्रिय व पंचेन्द्रिय त्रस जीव हैं।

The mundane souls are of two kinds: 1. One sensed immobile animate beings (Sthavar); and 2. Many sensed animate beings (tris). The earth bodied (Prithvi kayek), water bodied (Jalkayik) fire bodied (Tejkayik) air bodied (Vanaspati-kayik) are all one sensed immobile impure souls (Sthavar-Jiva) conch shell (Shankh), ant/termite (pripilika) black bee (Bhramar) and animals or men (manusya/pashu) etc. are respectively two sensed three sensed four sensed and five sensed (i.e. many sensed) impure souls (trisa-jiva). (650)

प्रकरण ३६ - सृष्टिसूत्र

Chapter 36 - Precepts On Universe

अकृत्रिम अनादिनिधन, स्वभाव निर्मित भाव ।
जीव अजीव व्याप्त रहे, नभ का एक प्रभाव ।।३.३६.१.६५१।।

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइ-णिहणो सहाव-णिव्वत्तो ।
जीवा-जीवहि फुडो, सव्वा-गासा-वयवो पीच्चो ।।१।।

लोकः अकृत्रिमः खलु, अनादिनिधनः स्वभावनिर्वृत्तः ।
जीवाजीवैः स्पृष्टः, सर्वाकाशावयवः नित्यः ।।१।।

यह लोक अकृत्रिम है, अनादिनिधन है, स्वभाव से ही निर्मित है, जीव व अजीव द्रव्यों से व्याप्त है, सम्पूर्ण आकाश का ही एक भाग है तथा नित्य है।

Actually, the universe is natural (Akritrim/uncreated); beginning less and endless(Anadinidhan); generated of its own nature; full of souls and non souls and everlasting (Nitya). It forms/constitutes only a part of the wholespace. (651)

एक प्रदेशी परम अणु, शब्द रूप ना भाव ।
स्निग्ध और गुण रुक्ष से, स्कन्ध रूप प्रभाव ।।३.३६.२.६५२।।

अपदेसो परमाणु, पदेसमेत्तो य सय-मसद्दो जो ।
णिद्धो वा लुक्खो वा, दुपदेसादित्त-मणुहवदि ।।२।।

अप्रदेशः परमाणुः, प्रदेशमात्रश्च स्वयमशब्दो यः ।
स्निग्धो वा रूक्षो वा, द्विप्रदेशादित्वमनुभवति ।।२।।

पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है व शब्दरूप नही है। परमाणु में स्निग्ध व रुक्ष स्पर्श का ऐसा गुण है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु से बँधने या जुड़ने पर दो प्रदेशों आदि स्कन्ध का रूप धारण कर लेता है।

An atom is unextended. Due to its being unextended, it is devoid of sound, and it is either smooth or rough, i.e., with positive or negative charges. When the atoms are conjoined. they become subject to experience. (652)

द्विप्रदेशी सूक्ष्म सभी, स्थूल स्कंध आकार ।
भूजल वायु अग्नि रूप, बदले कई प्रकार ।।३.३६.३.६५३।।

दुपदेसादी खंधा, सुहुमा वा बादरा ससंठाणा ।
पढवि-जल-तेऊ-वाऊ, सगपरिणामेहिं जायंते ।।३।।

द्विप्रदेशादय: स्कन्धा:, सूक्ष्मा वा बादरा: ससंस्थाना: ।
पृथिवीजलतेजोवायव:, स्वकपरिणामैजयिन्ते ।।३।।

द्विप्रदेशी आदि सारे सूक्ष्म और स्थूल स्कन्ध अपने परिणमन के द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के रूप में अनेक आकारवाले बन जाते है।

The molecules constituted by two or more atoms (and having two or more spacepoints) one either subtle or gross, one possessed of specific configuration, and in accordance with the transformation undergone by them, they assume the form of earth, water, fire or air. (653)

भरता प्रचुर प्रमाण में, पुद्गल से यह लोक ।
कुछ परिवर्तन योग्य कर्म, कुछ परिवर्तन रोक ।।३.३६.४.६५४।।

ओणाढ-गाढ-णिचिदो, पुग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहिं बादरेहिं य अप्पाउग्गेहिं जोग्गेहिं ।।४।।

अवगाढगाढनिचित:, पुद्गलकायै: सर्वतो लोक: ।
सूक्ष्मैबदिरैश्चा-प्रायोग्यैर्योग्यै: ।।४।।

यह लोक सब ओर से इन सूक्ष्म स्थूल पुद्गलों से ठसाठस भरा हुआ है। उनमें से कुछ पुद्गल कर्मरूप से परिणमन के योग्य होते है और कुछ अयोग्य होते है।

The universe is fully occupied by these subtle as well as gross molecules. Some of them are capable of being transformed into the karmic particles while others are not. (654)

योग्य पुद्गल कर्म में, बदले पाकर जीव।
जीव न परिवर्तन करे, कर्म अधीन अजीव ।।२.३६.५.६५५।।

कम्मत्तण-पाओग्गा, खंधा जीवस्स परिणई पप्पा ।
गच्छंति कम्मभावं, ण हि ते जीवेण परिणमिदा ।।५।।

कर्मत्वप्रायोग्याः, स्कन्धा जीवस्य परिणतिं प्राप्य ।
गच्छन्ति कर्मभावं, न हि ते जीवेन परिणमिताः ।।५।।

कर्मरूप से परिणमित होने के योग्य पुद्गल, जीव के रागादि भावों का निमित्त पाकर स्वयं ही करम को प्राप्त हो जाते हैं। जीव स्वयं उन्हें कर्म के रुप में परिणमित नही करता।

The molecules are capable of being transformed into Karma as a result of the thought activity of the Jiva, yet this transformation is not caused by Jiva itself. (655)

देखे जाने विषय को, जिस भाव से जीव।
रागद्वेष उनमें करें, बांध कर्म सदीव ।।३.३६.६.६५६।।

भावेण जेण जीवो, पेच्छदि जाणादि आगदं विसये ।
रज्जदि तेणेव पुणो, बज्झदि कम्म त्ति उवदेसो ।।६।।

भावेन येन जीवः, प्रेक्षते जानात्यागतं विषये ।
रज्यति तनैव पुन-र्बध्यते कर्मेत्युपदेशः ।।६।।

जीव अपने राग या द्वेषरूप जिस भाव से संपृक्त होकर इन्द्रियों के विषयों के रूप में ग्रहण किये गये पदार्थों को जानता-देखता है, उन्हीं से उपरक्त होता है और उसी उपरागवश नवीन कर्मों का बंधन करता है।

The (impure) soul perceives and knows the objects, received by him in the form of sense subjects, with the thought action of certain attachment and aversion. The said soul is attached/ associated with such thought actions; and as a consequence thereof, it (Soul) is bound with fresh karmas. (656)

जीव संग्रहित कर्म सब, छहों दिशा में स्थान।
व्याप्त सभी प्रदेश में, जीव बद्ध है जान ।।३.३६.७.६५७।।

सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं ।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं ।।७।।

सर्वजीवानां कर्म तु, संग्रहे षड्दिशागतम् ।
सर्वेष्वपि प्रदेशेषु, सर्वं सर्वेण बद्धकम् ।।७।।

सभी जीवों के लिये संग्रह (बद्ध) करने के योग्य कर्म–पुद्गल छहों दिशाओं में सभी आकाशप्रदेशों में विद्यमान है। वे सभी कर्म–पुद्गल आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ बद्ध होते हैं।

The particles of karmic matter (karma pudgala), which are capable of binding all souls, exist in all the space units of all the six directions. All those particles of karmic matter, get associated/bound with all the space units of the soul. (657)

जीव के जैसे कर्म हो, सुख दुख वैसे पाय।
कर्म संग ही भ्रमण करे, परभव वैसा जाय ।।३.३६.८.६५८।।

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छई उ परं भवं ।।८।।

तेनापि यत् कृतं कर्म, सुखं वा यदि वा दुःखम् ।
कर्मणा तेन संयुक्तः, गच्छति तु परं भवम् ।।८।।

व्यक्ति सुख–दुख रूप या भाशुभरुप जो भी कर्म करता है वह अपने उन कर्मों के साथ ही पराभव में जाता है।

An (impure) soul incarnates along with all the karmas, that one is bound with whether they be good of bad and pleasure bearing or pain bearing. (658)

कर्मों के अनुसार ही, जीव देह को पाय ।
नया देह बंधन नये, भ्रमण निरन्तर जाय ।।३.३६.९.६५९।।

ते ते कम्मत्तगदा, पोग्गलकाया पुणो वि जीवस्स ।
संजायंते देहा, देहंतर-संकमं पप्पा ।।९।।

ते ते कर्मत्वगताः, पुद्गलकायाः पुनरपि जीवस्य ।
संजायन्ते देहाः देहान्तरसंक्रमं प्राप्य ।।९।।

इस प्रकार कर्मों के रुप में परिणत वे पुद्गल-पिण्ड देह से देहान्तर को प्राप्त होते रहते हैं । अर्थात पूर्वबद्ध कर्मानुसार नया शरीर बनता है और नया शरीर पाकर नवीन कर्म का बंध होता है । इस तरह जीव निरन्तर विविध योनियों में परिभ्रमण करता रहता है ।

In this manner those material formations (Pudgala-pindas), converted into karmas, are transferred from one body to another (In other words the new body is formed as a consequence of past earned karmas and fresh (new) karmas are further associated/bound with new body. This is how an (impure) soul continues to roam about in various "yonis"). (659)

(इति खंड - ३)

प्रकरण ३७ - अनेकान्तसूत्र

Chapter 37 - Precepts On Non Absolutism

जिसके बिना न चल सके, यहाँ लोक व्यवहार ।
नमन विश्व गुरु को करे, अनेकान्त विचार ।।४.३७.१.६६०।।

जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा ण णिव्वउइ ।
तस्स भुवणेक्कागुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स।।१।।

येन विना लोकस्य अपि व्यवहारः सर्वथा न निर्वहति ।
तस्मै भुवनैकगुरवे नमः अनेकान्तवादाय ।।१।।

जिसके बिना लोक का व्यवहार बिलकुल नही चल सकता विश्व के उस एकमेव गुरु अनेकान्तवाद को प्रणाम करता हूँ।

Without whom, even the worldly affairs can not be carried out, I bow to that Anekantavada (nonabsolutism), the only preceptor of the world. (660)

एक द्रव्य गुण आश्रय, द्रव्य ही गुण आधार ।
पर्यायी लक्षण समझ, द्रव्य गुणों का सार ।।४.३७.२.६६१।।

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ।।२।।

गुणानामाश्रयो द्रव्यं, एकद्रव्यांश्रिता गुणाः ।
लक्षणं पर्यवाणां तु, उभयोराश्रिता भवन्ति ।।२।।

द्रव्य गुणों का आधार है। जो एक द्रव्य के आश्रय रहते हैं वे गुण हैं। पर्यायों का लक्षण द्रव्य या गुण दोनों के आश्रित रहना है।

The substance (Dravya) is the resort or abode (Asraya) or base (Adhar) of attributes (Guna) those which take shelter in a substance are attributes. The characteristic of mode (Paryaya) is its dependence upon substance and attributes. (661)

द्रव्य नहीं पर्याय बिन, बिना द्रव्य पर्याय।
उत्पन्न स्थित नाश हो, द्रव्य है ये समझाय ।।४.३७.३.६६२।।

दव्वं पज्जवविउयं, दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि ।
उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा, हंदि दवियलक्खणं एयं ।।३।।

द्रव्यं पर्यवावियुतं, द्रव्यवियुक्ताश्च पर्यवाः न सन्ति ।
उत्पादस्थितिभङ्गाः, हन्त द्रव्यलक्षणमेतत् ।।३।।

पर्याय के बिना गुण नहीं और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं। उत्पाद, स्थिति और व्यय द्रव्य का लक्षण है। अर्थात द्रव्य उसे कहते हैं जिसमें ये तीनों घटित होते रहते हैं।

There is no substance without the modes, nor are the modes without are the modes without substance. The characteristics of substance are origination, permanence and destruction. (662)

व्यय बिना उत्पाद नहीं, उत्पाद बिन व्यय सार ।
व्यय हो या उत्पाद रहे, बिना स्थिति-आधार ।।४.३७.४.६६३।।

ण भवो भंगविहीणो, भंगो वा णत्थि संभव-विहीणो ।
उप्पादो वि य भंगो, ण विणा धोव्वेण अत्थेण ।।४।।

जीवाः पुद्गलकायाः, सह सक्रिया भवन्ति न च शेषाः।
पुद्गलकरणाः जीवाः, स्कन्धाः खलु कालकरणास्तु ।।४।।

उत्पाद व्यय के बिना नही होता और व्यय उत्पाद के बिना नही होता। इसी प्रकार उत्पाद और व्यय दोनों स्थायी ध्रौव्य अर्थ के बिना नही होते।

There is no origination without destruction, no destruction without origination, while neither origination nor destruction is possible without a permanent substance. (663)

पर्यायों में होता है उत्पाद व्यय ध्रौव्य।
पर्याय–समूह द्रव्य वहीं, उत्पाद–व्यय ध्रौव्य ।।४.३७.५.६६४।।

उप्पाद–ट्ठिदि–भंगा, विज्जंते पज्जएसु पज्जाया ।
दव्वं हि संति णियंद, तमहा दव्वं हवदि सव्वं ।।५।।

उत्पादस्थितिभङ्गा, विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः ।
द्रव्यं हि सन्ति नियतं, तस्माद् द्रव्यं भवति सर्वम् ।।५।।

उत्पाद, व्यय और स्थिति ये तीनों द्रव्य में नहीं होते अपितु द्रव्य की नित्य परिवर्तनशील पर्यायों में होते है। परन्तु पर्यायों का समूह द्रव्य है। अतः सब द्रव्य ही है।

The origination, permanence and destruction belong to the modes (and not to the substance, but since modes are definitely of the form of a substance, everything whatsoever is the form of a substance. (664)

एक समय ही द्रव्य में, सभी रहे समवेत।
उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, द्रव्य सो तीन समेत ।।४.३७.६.६६५।।

समवेदं खलु दव्वं, संभव–ठिदि–णास–सण्णिदट्ठेहिं ।
एकम्मि चेव समये, तमहा दव्वं खु तत्तिदयं ।।६।।

समवेतं खलु द्रव्यं, सम्भवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः।
एकस्मिन् चैव समये, तस्माद्द्रव्यं खलु तत् त्रितयम् ।।६।।

द्रव्य एक ही समय में उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य नामक अर्थों के साथ समवेत एकमेक है। इसलिये तीनों वास्तव में द्रव्य है।

Since at one and the same moment the substance is subject to three states, viz. origination, permanence and destruction-these three states verily constitute a substance. (665)

नव पर्याय उत्पन्न हो, पूर्व पर्याय नष्ट ।
द्रव्य फिर भी द्रव्य है, न उत्पन्न न नष्ट ।।४.३७.७.६६६।।

पाडुब्भवदि य अण्णो, पज्जाआ पज्जआ वयदि अण्णो ।
दव्वस्सं तं पि दव्वं, णेवट्ठं णेव उपपण्णं ।।७।।

प्रादुर्भवति चान्यः, पर्यायः पर्यायो व्ययते अन्यः ।
द्रव्यस्य तदपि द्रव्यं, नैव प्रनष्टं नैव उत्पन्नम् ।।७।।

द्रव्य की अन्य पर्याय उत्पन्न होती है और कोई अन्य पर्याय नष्ट हो जाती है फिर भी द्रव्य न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। द्रव्य के रुप में सदा नित्य रहता है।

The mode of a substance which emerges is one and that which vanishes is other than it, while the substance neither emerges, not vanishes. (666)

रहे जन्म से मरण तक, एक पुरुष पर्याय, ।
उसी में उपजे विनशे, शिशु आदिक पर्याय ।।४.३७.८.६६७।।

पुरिसम्मि पुरिसिसद्दो, जम्माई-मरणकाल-पज्जंतो ।
तस्स उ बालाईया, पज्जवयोगा बहुवियप्पा ।।८।।

पुरुषे पुरुषशब्दो, जन्मादि-मरणकालपर्यन्तः ।
तस्य तु बालादिकाः, पयायोग्या बहुविकल्पाः ।।८।।

पुरुष में पुरुष शब्द का व्यवहार जन्म से लेकर मरण तक होता है परन्तु इसी बीच बचपन बुढ़ापा आदि अनेक प्रकार की पर्याय उत्पन्न होकर नष्ट होती जाती हैं।

The individual remains the same person from his birth till the time of death, though he assumes the various states of childhood etc. (667)

सदृश्य पर्याय समान है, वह सामान्य कहाय ।
विसदृश पर्याय विशेष, वस्तु से अभिन्न कहाय ।।४.३७.९.६६८।।

तम्हा वत्थूणं चिय, जो सरिसो पज्जवो स सामन्नं ।
जो विसरिसो विसेसो, स मओऽणत्थंतरं तत्तो ।।९।।

तस्मद् वस्तूनामेव, यः सदृशः पर्यवः स सामान्यम् ।
यो विसदृशो विशेषः, स मतोऽनर्थान्तरं ततः ।।९।।

वस्तुओं की सदृश पर्याय है दीर्घकाल तक बनी रहने वाली समान पर्याय है वही सामान्य है और उनकी जो विसदृश पर्याय है वह विशेष है। ये दोनों सामान्य तथा विशेष उस वस्तु से अभिन्न है ।

All the modes of the things which are common to all of them are universal, while those which are not, are particular but both belong to the same. (668)

सामान्य विशेष सदा, सहित द्रव्य का ज्ञान ।
सम्यकत्व साधक का, नहीं विरोधी ज्ञान ।।४.३७.१०.६६९।।

सामण्णं अह विसेसे, दव्वे णाणं हवेइ अविरोहो।
सहइ तं सम्मत्त, तं तस्स विवरीयं।।१०।।

सामान्यमथ विशेषः, द्रव्ये ज्ञानं भवत्यविरोधः ।
साधयति तत्सम्यक्त्वं, नहि पुनस्तत्तस्य विपरीतम् ।।१०।।

सामान्य तथा विशेष इन दोनों धर्मों से युक्त द्रव्य में होने वाला विरोधरहित ज्ञान ही सम्यकत्व का साधक होता है । उसमें विपरीत अर्थात् विरोधयुक्त ज्ञान साधक नही होता ।

The cognitions of a substance are universal and particular and are uncontradicted. This is the right cognition whereas the contrary to it is not. (669)

पुत्र पौत्र भाई पिता, नाते पुरुष हजार ।
हो जब वह इक का पिता, सबका पिता न यार ।।४.३७.११.६७०।।

पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय-भाऊणं, एग-पुरिस-संबंधो।
ण य सो एगस्स पिय त्ति सेसयाणं पिया होइ ।।११।।

पितृ-पुत्र-नातृ-भव्यक-भ्रातृणाम् एक पुरुषसम्बन्धः ।
न च स एकस्य पिता इति शेषकाणां पिता भवति ।।११।।

एक ही पुरुष में पिता, पुत्र, भांजे, भाई आदि अनेक सम्बन्ध होते हैं। एक का पिता होने से सबका पिता नही होता । यही स्थिति सब वस्तुओं की है ।

One and the same person assumes the relationship of father, son, grandson, nephew and brother, but he is the father of one whose he is and not of the rest (so is the case with all the things). (670)

निर्विकल्प-सविकल्प में, है ना कोई भेद ।
इक जाने दूजा नहीं, मति स्थिर होत न वेद ।।४.३७.१२.६७१।।

सवियप्प-णिव्वियप्पं इय पुरिसं जो भणेज्ज अवियप्पं ।
सवियप्पमेव वाव णिच्छएणस णिच्छिओ समए ।।१२।।

सविकल्प-निर्विकल्पम् इति पुरुषं यो भणेद् अविकल्पम् ।
सविकल्पमेव वा निश्चयेन न स निश्चितः समये ।१२।।

निर्विकल्प सविकल्प उभयरूप पुरुष को जो केवल निर्विकल्प अथवा सविकल्प (एक ही) कहता है उसकी मति निश्चय ही शास्त्र में स्थित नही है।

A person is certainly possessed of alternative relationships and also assumes single relationship. But one exclusively ascribes to this person either the former or the latter relationship, is certainly not well versed in the scriptures. (671)

द्रव्य में एकमेक हो रहे, परस्पर विरोधी धर्म ।
दूधपानी ज्यों मिले, विभक्त न होय धर्म ।।४.३७.१३.६७२।।

अन्नोन्नाणुगयाणं, 'इमं व तंव' त्ति विभयणमजुत्तं ।
जह दुद्ध–पाणियाणं, जावंत विससपज्जाया।।१३।।

अन्योन्यानुगतयोः 'इदं वा तद् वा' इति विभजनमयुक्तम् ।
यथा दुग्ध–पानीययोः यावन्तः विशेषपर्यायाः ।।१३।।

दूध और पानी की तरह अनेक विरोधी धर्मों द्वारा परस्पर घुलेमिले पदार्थ में यह धर्म और वह धर्म का विभाग करना उचित नही । जितनी विशेष पर्याय हो उतना ही अविभाग समझना चाहिये ।

The particular qualities (of a substance) are mixed together just like milk and water, so it is not justifiable "to exclusively distinguish them as 'this' or 'that' quality. (672)

शंकित साधु या रहित, स्याद् वाद व्यवहार ।
समभाव ना भेद रहे, ज्ञान करे प्रचार।।४.३७.१४.६७३।।

संकेज्ज याऽसंकितभाव भिक्खू, विभज्जवायं च वियागरेज्जा ।
भासादुगं धम्म–समुट्ठितेहिं, वियागरेज्जा समया सुपण्णे ।।१४।।

शङ्कितःचाऽशङ्कितभावो भिक्षुः विभज्यवादं च व्यागुणीवान् ।
भाषाद्विकं च सम्यक् समुत्थितैःव्यागृणीयात् समतया सुप्रज्ञः ।।१४।।

सूत्र और अर्थ के विषय में शंकारहित साधु गर्वरहित होकर स्याद्वादमय वचन का व्यवहार करे । धर्माचरण में प्रवृत्त साधुओं के साथ विचरण करते हुए सत्यभाषा तथा अनुभय (जो न सत्य है और न असत्य) भाषा का व्यवहार करे । धनी या निर्धन का भेद न करके समभावपूर्वक धर्म कथा कहे ।

A monk, who ii doubtful about the meaning of a verse, should adopt without any pride the relative point of view in his interpretation. A wise monk, while dealing with other monks following the right path in their practice of religion, should preach with equanimity in a truthful and unequivocal language. (673)

प्रकरण ३८ - प्रमाणसूत्र

Chapter 38 - Precepts On Valid Knowledge

विमोह विभ्रम संशयरहित, स्व-पर रूप का ज्ञान ।
भेद अनेक विकल्प है, ग्रहण हो सम्यग्ज्ञान ।।४.३८.१.६७४।।

संसय-विमोह-विब्भय-विविज्जियं, अप्प-पर-सरूवस्स ।
गहणं सम्मं णाणं, साया-मणेय-भेयं तु ।।१।।

संशयविमोह-विभ्रमविवर्जितमात्म-परस्वरूपस्य ।
ग्रहणं सम्यग्ज्ञानं, साकारमनेकभेदं ।।१।।

संशय, विमोह और विभ्रम इन तीन मिथ्याज्ञानों सें रहित अपने और पर के स्वरूप को ग्रहण करना सम्यगज्ञान है। यह वस्तुस्वरूप का यथार्थ निश्चय कराता है। इसलिये इसे साकार अर्थात् सावकल उपक (निश्चयात्मक) कहा गया है।

Such a grasping of the nature of self and that of other things, as is free from doubt, mistake and uncertainty is called the right knowledge; it is of a determinate form and is of various types. (674)

ज्ञान पाँच प्रकार है, मति और श्रुत का ज्ञान ।
ज्ञान अवधि व मनः पर्यय भी, उत्तम केवल ज्ञान ।।४.३८.२.६७५।।

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं ।
ओहीनाणं तइंय, मणनाणं च केवलं ।।२।।

तत्र पञ्चविधं ज्ञानं, श्रुतमाभिनिबोधिकम् ।
अवधिज्ञानं तु तृतीयं, मनोज्ञानं च केवलम् ।।२।।

वह ज्ञान पाँच प्रकार का है। आभिनिबोधिक या मतिज्ञश्रान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

Knowledge is of five kinds: 1. Sensory; 2. Scriptural (Srit-Jnan); 3. Clairvoyance; 4. Telepathic and 5. Perfect knowledge (Keval jnan). (675)

केवल, अवधि, श्रुत मति, मनो ज्ञान प्रकार।
ज्ञान अपूरन चार रहे, "केवल" पूर्ण विचार ।।४.३८.३.६७६।।

पंचेव होंति णाणा, मदि-सुद-ओही-मणं च केवलयं ।
खयउवसमिया चउरो, केवलणाणं हवे खइयं ।।३।।

नश्चैव भवन्ति ज्ञानानि, मतिश्रुतावधिमनश्च केवलम् ।
क्षायोपशमिकानि चत्वारि, केवलज्ञानं भवेत् ।।३।।

एकदेश क्षय व उपशम से उत्पन्न होने के कारण प्रथम चार ज्ञान अपूर्ण (क्षायोपशमिक) है। समस्त कर्मों के क्षय होने के कारण पाचवाँ केवलज्ञान परिपूर्ण (क्षायिक) है।

Knowledge is thus of five kinds: sensory knowledge, scriptural knowledge, clairvoyance, telepathy and perfect (omniscience). The first four are part knowledge and result from substance cum annihilation of the relevant Karmas, while omniscience result after total annihilation of Karmas. (676)

सोच विचार, तर्क समझ, निर्णय और अनुमान ।
अभिनिबोधिक इसे कहे, या कहिये मतिज्ञान ।।४.३८.४.६७७।।

ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सण्णा सत्ती मती पण्णा, सव्वं आभिणिबोहियं ।।४।।

ईहा अपोहः विमर्शः मार्गणा च गवेषणा।
संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा सर्वम् आभिनिबकम् ।।४।।

ईहा (सोच), अपोह (समझ), मीमांसा (विचार), गवेषणा (तर्क), संज्ञा, शक्ति, स्मृति और प्रज्ञा ये सब अभिनिबोधिक या मतिज्ञान है।

Reflection on what has been perceived, reasoning, questioning, examining, searching, understanding and judging these are the varieties of sensory knowledge. (677)

अर्थान्तर को ग्रहण करे, कहलाता श्रुतज्ञान ।
मतिज्ञान पूर्वक रहे, शब्द मुख्य पहचान ।।८७.५.६७८।।

अत्थादो अत्थंतर–मुवलंभो, तं भणंति सुदणाणं ।
आभिणिबोहिय–पुव्वं, णियमेणिह सद्दजं पमुहं ।।५।।

अर्थादिथन्तिर–मुपलम्भः तं भणन्ति श्रुतज्ञानम्।
आभिनिबोधिकपूर्वं, नियमेन च शब्दजं मूलम् ।।५।।

शब्द जो जानकर उस पर से अर्थान्तर को ग्रहण करना श्रुतज्ञान है । यह ज्ञान नियमतः आभिनिबोधिक ज्ञानपूर्वक होता है । इसके दो भेद है । लिंगजन्य और शब्दजन्य । धुँआ देखकर होने वाला अग्नि का ज्ञान लिंगज है और वाचक शब्द सुन या पढ़ कर होने वाला ज्ञान शब्दज है । आगम में शब्दज श्रुतज्ञान का प्राधान्य है ।

(Like Reasoning by inference/Anuman/lingajnan), the scriptural knowledge consists of knowing or grasping the clear meaning expressed in words (Vacyartha) on the basis of the knowledge of words of "Arhat's" (Sabda/Arhta). This knowledge is as a rule the result of sensory knowledge (Abhinibodhak/Matijnan). The scriptural knowledge is of two kinds: 1. Verbal (Sadba-janya) and 2. Non-verbal (to know about fire by seeing smoke in the sky is nonverbal scriptural knowledge and the knowledge derived from works read or spoken is verbal scriptural knowledge). Again there is predominance of verbal scriptural knowledge.

इन्द्रिय व मन से निमित्त, ज्ञान शब्द अनुसार ।
शब्द श्रुत कहना समर्थ, शेष है बुद्धि विचार ।।४.३८.६.६७९।।

इंदियमणोनिमित्तं, जं विण्णाणं सुयाणुसारेणं ।
नियवतत्थुत्तिसमत्थं, तं भावसुयं मई सेसं ।।६।।

प्रादुर्भवति चान्यः, पर्यायः पर्यायो व्ययते अन्यः ।
द्रव्यस्य तदपि द्रव्यं, नैव प्रनष्टं नैव उत्पन्नम् ।।६।।

इन्द्रिय और मन के निमित्त से सुनकर पढ़कर होने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है। वह अपने विषयभूत अर्थ को दूसरे से कहने में समर्थ होता है। शेष इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने अश्रुतानुसारी अवग्रहादि ज्ञान मतिज्ञान है। इसको स्वयं तो जाना जा सकता है लेकिन दूसरे को नही समझाया जा सकता है।

The scriptural knowledge has been so denominated as it follows the scriptures with the help (support) of senses and mind. It is capable of communicating the significance (purpose) of its subject (visaya bhuta Artha). The rest (i.e. the tendency towards an object (Avagrega) and the like knowledge which is not in accordance with scriptures, though it caused by senses and mind, is sensory knowledge (Mati-jnan). (679)

मतिपूर्वक आगम कहे, होत सदा श्रुतज्ञान ।
श्रुतपूर्वक मतिज्ञान ना, प्रमुख अन्तर जान ।।४.३८.७.६८०।।

मइ-पुव्वं सुय-मुत्तं, न मई सुय-पुव्विया विसेसोऽयं ।
पुव्वं पूरण-पालण-भावाओ जं मई तस्त ।।७।।

मतिपूर्वं श्रुतमुक्तं, न मतिःश्रुतपूर्विका विशेषोऽयम् ।
पूर्वं पूरणपालन-भाववाद्यद् मतिस्तस्य ।।७।।

आगम में कहा गया है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। मतिज्ञान श्रुतज्ञानपूर्वक नहीं होता है। यही दोनों ज्ञानों में अन्तर है।

The sensory knowledge includes (Precedes and assists) the scriptural knowledge; not vice versa. This is the main difference in between these two kind of knowledge. The word "Purva" has been derived from the root (dhatu) "pri" which means fastening up/complying with/palan and completing/filling/purana. As the sensory knowledge completes and complies with scriptural knowledge it (sensitive-knowledge) precedes it (scriptural) (knowledge). Hence, scriptural knowledge has been said to be mingles with sensory knowledge. (680)

अवधिज्ञान सीमित रहे, भाव क्षेत्र द्रव्यकाल ।
भव गुणों का भेद कहे, सीमा है हर हाल ।।४.३८.८.६८१।।

अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणे त्ति वण्णिदं समए ।
भव-गुण-पच्चय-विहियं, तमोहिणाणं त्ति णं बंति ।।८।।

अवधीयत इत्यवधिः, सीमाज्ञानमिति वर्णितं समये।
भवगुणप्रत्ययविधिकं, तदवधिज्ञानमिति ब्रुवन्ति ।।८।।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक पदार्थों को एकदेश जाननेवाला ज्ञान अवधि ज्ञान कहते है। इसे आगम में सीमाज्ञान भी कहा गया है। इसके दो भेद है। भवप्रत्यय और गुण प्रत्यय।

"Avadhiyati" its avadhih (i.e. the knowledge, which partly know the objects having limitations of subjects matter (Dravya), area/space (kshetra), time (kala) and quality of the objects known (Bhava) is called clairvoyance knowledge (Avadhi-Jnan). Agama describes it as the knowledge limitation. It is of two kinds: 1. The clairvoyance knowledge since birth (Bhava-pratyaya) and 2. The clairvoyance knowledge derived from merit (Guna pratyaya). (681)

अचिंत चिंतित, अर्धचिंतित, भेद अनेक प्रकार ।
मन प्रत्यक्ष ही जानता, मनुष्यलोक विचार ।।४.३८.९.६८२।।

चिंतिय-मचिंतियंऽवा अद्धं चिंतिय-मणेय-भेय-गयं ।
मण-पज्जवत्ति णाणं, जंजाणइ तं तु णर-लोए ।।९।।

चिन्तितमचिन्तितं वा, अर्द्ध चिन्तितमनेकभेदगतम् ।
मनःपर्यायः ति ज्ञानं, यज्जानाति तत्तु नरलोके ।।९।।

जो ज्ञान मनुष्यलोक में स्थित जीव के चिन्तित, अचिंतित,अर्धचिंतित आदि अनेक प्रकार के अर्थ से मन को प्रत्यक्ष जानता है वह मनः पर्याय ज्ञान है ।

The knowledge which directly knows the thoughtful (chintiata), unthoughtful (Achintita) and semi thoughtful (Ardha-chintita) minds of embodied souls of the human universe (Maunsya-lok) is called telepathic knowledge (Manah-parayaya) (Jnan). (682)

एकमात्र है शुद्ध सकल, अनंत अद्भुत ज्ञान ।
ज्ञान एक है शब्द कई, कोई न एक समान ।।४.३८.१०.६८३।।

केवल-मेगे सुद्धं, सगल-मसाहारणं अणंतं च ।
पायं च नाण-सद्दो, नाम-समाणा-हिगरणोऽयं ।।१०।।

सविकल्प-निर्विकल्पम् इति पुरुषं यो भणेद् अविकल्पम् ।
सविकल्पमेव वा निश्चयेन न स निश्चितः समये ।।१०।।

केवल शब्द के एक, शुद्ध, सकल, असाधारण और अनन्त आदि अर्थ हैं । केवल ज्ञान एक है क्योंकि उसके होने से अन्य ज्ञान निवृत्त हो जाते है इसलिये एकाकी है । मलकलंक से रहित होने से शुद्ध है । सम्पूर्ण ज्ञेयों का ग्राहक होने से सकल है । इसके समान और कोई ज्ञान नहीं इसलिये असाधारण है । इसका कभी अन्त नही होता इसलिये अनन्त है ।

The word "Keval" signifies one (Eka) pure (Shuddha) Gross (sakal) extra ordinary (Asadharana) and infinite (Ananta). Hence perfect knowledge (keval-Jnan) one it is not assisted (or supported) by senses etc.; and all the other kinds of knowledge disappear (retire) the moment it manifests. Therefore perfect knowledge is alone (E'ka ki/singular) and is pure by virtue of that being (absolutely) free of all the spots/flaws of the filth (of karmas). It is gross, as it knows (understands) all the knowables. It is extraordinary; because there is no parallel or comparison to it (none other forms of knowledge is a match of/equal to it). It is infinite because it never ends. (683)

ज्ञान है केवल जानता, पूर्ण लोक अलोक ।
आज भूत भविष्य भी, छुपता नहीं त्रिलोक ।।४.३८.११.६८४।।

संभिन्नं पासंतो, लोक-मलोगं च सव्वओ सव्वं ।
तं नत्थि जं ना पासइ, भूयं भव्वं भविस्सं च ।।११।।

संभिन्नं पश्यन् लोकमलोकं च सर्वतः सर्वम् ।
तन्नास्ति यत्र पश्यति, भूतं भव्यं भविष्यच्च ।।११।।

केवल ज्ञान और अलोक को सर्वतः परिपूर्ण रुप से जानता है । भूत भविष्य और वर्तमान में ऐसा कुछ भी नही है जिसे केवल ज्ञान नही जानता ।

Perfect knowledge knows universe and non universe in all its totality. There was nothing in past and noting at present and shall be nothing in future, which perfect knowledge does not know. (684)

ज्ञात स्वभाव सम्यक् सदा, उसको ही सच मान ।
भेद है उसके दो कहे, प्रत्यक्ष परोक्षप्रमाण ।।४.३८.१२.६८५।।

गेहइ वत्थुसहावं अविरुद्धं सम्मुरूवं जं णाणं।
भणियं खु तं पमाणं पच्चक्ख–परोक्ख–भेएहिं ।।१२।।

गुह्णाति वस्तुस्वभावम्, अविरुद्धं सम्यग्रूपं यज्ज्ञानम् ।
भणिते खलु तत् प्रमाणं, प्रत्यक्षपरे क्षभेदाभ्याम् ।।१२।।

जो ज्ञान वस्तु स्वभाव को – यथार्थस्वरुप को–सम्यक् रुप से जानता है, उसे प्रमाण कहते हैं । इसके दो भेद है । प्रत्यक्ष प्रमाण और परोक्ष प्रमाण ।

Pramana is the knowledge which rightly knows the nature of soul (Vastu-svabhava). It is of two kinds : 1. Direct and 2. Indirect (685)

जीव 'अक्ष' भी हम कहे, भोगे तीनों लोक ।
मन–अवधि का अंतर बस, साक्षात हर लोक ।।४.३८.१३.६८६।।

जीवो अक्खो अत्थव्वण–भोयण–गुणन्निओ जेणं ।
तं पई वट्ट नाणं जे एच्चक्खं तय तिविहं।।१३।।

तहव: अक्ष: अर्थव्यापन–भोजनगणान्वितो येन ।
तं प्रति वर्तते ज्ञानं, यत् प्रत्यक्षं तत् त्रिविम् ।।१३।।

जीव को अक्ष कहते हैं । जो ज्ञानरुप में समस्त पदार्थों में व्याप्त है वह अक्ष अर्थात जीव है । उस अक्ष से होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है । इसके तीन भेद है । अवधि, मन:पर्यय व केवल ज्ञान ।

The soul (jiva) is called "Akasha" this word has been derived from the root (Dhata) "Ashuvyapn". "Akasha" (Jiva) is that which is prevailing (vyapta) in all the beings in the form of knowledge the derivation of the work "Akasha" can also be effected for the root "Ash" that means food. He who enjoys the prosperity of all the three worlds is "Aksha" (Jiva). In this way the interpretation of Juva as Aksha is done from both roots, The knowledge obtained through "Akasha" is direct (Pratyaksha) is if three kinds : 1. Clairvoyance, 2. Telepathic and 3. Perfect. (686)

भिन्न मन द्रव्येन्द्रियाँ, जीव अलग पहचान ।
कहे ज्ञान परोक्ष उसे, 'पर' करता अनुमान ।।४.३८.१४.६८७।।

अक्खस्स पोग्गलकया, जं दव्विन्दिय-मणा-परा तेणं ।
तेहिं तो जं नाणं, परोक्खमिह तम-णुमाणं व ।।१४।।

अक्षस्य पुद्गलकृतानि यत्, द्रव्येन्द्रियमनांसि पराणितेन ।
तैस्तस्माद् यज्ज्ञानं, परोक्षमिह तदनुमानमिव ।।१४।।

पौद्गलिक होने के कारण द्रव्येन्द्रियों और मन जीव (अक्ष) से पर है। अतः उससे होने वाला ज्ञान परोक्ष है। जैसे अनुमान में धुएँ से अग्नि का ज्ञान होना।

The objective senses (Dravyendriya□s) and the mind (mana) are different from "Aksha" (Jiva). Hence the knowledge acquired thorough them is called indirect (paroksa). Just as in inference (Anuman) the smoke gives the knowledge of fire in the same way the indirect knowledge is caused by non self (par/other). (687)

मति व शब्द परोक्ष है, 'पर' निमित्त है ज्ञान ।
पूर्व है और याद से, पर निमित्त अनुमान ।।३.३८.१५.६८८।।

होंति परोक्खाइं मइ-सुयाइं जीवस्स पर-निमित्ताओ ।
पुव्वो-वलद्ध-संबंध-सरणाओ, वाणुमाणं व ।।१५।।

भवतः परोक्षे मति-श्रुते जीवस्य परनिमित्तात् ।
पूर्वोपलब्धसम्बन्ध-स्मरणाद् वाऽनुमानमिव ।।१५।।

जीव के मति और श्रुतज्ञान परनिमित्तक होने के कारण परोक्ष है। अथवा अनुमान की तरह पहले से उपलब्ध अर्थ के स्मरण द्वारा होने के कारण भी वे परनिमित्तक है।

The sensory and scriptural knowledge of the soul (jiva) are indirect (Apratyaksha) by virtue of being dependent upon others because they are caused by the remembrance of an object known before (but which is now out of sight), as in inference. (688)

अवधि मन बस सामने, परोक्ष लिंग से ज्ञान ।
इन्द्रिय इस मन ज्ञान को, लोक सत्य ही मान ।।४.३८.१६.६८९।।

एगंतेण परोक्खं, लिंगिय-मोहाइयं च पच्चक्खं ।
इंदिय-मणो-भवंजं, तं संववहार-पच्चक्खं ।।१६।।

एकान्तेन परोक्षं, लैङ्गिकमव्ध्यादिकं च प्रत्यक्षम् ।
इन्द्रियमनोभवं यत्, तत् संव्यहारप्रत्यक्षम् ।।१६।।

लिंग से होने वाला श्रुतज्ञान तो अकाम्तरूप से परोक्ष ही है। अवधि, मनःपर्यय और केवल ये तीनों ज्ञान एकान्तरूप से प्रत्यक्ष ही है। किन्तु इन्द्रिय और मन से होने वाला ज्ञान मतिज्ञान लोक व्यवहार में प्रत्यक्ष माना जाता है। इसलिये वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहलाता है।

In a real sense, the cognition acquired through the other sources is paroksa i.e. indirect while cognition acquired directly by the soul is pratyaksa. But the cognition, born of a sense-organ is `pratyaksa' practically so called. (689)

प्रकरण ३९ - नयसूत्र

Chapter 39 - Precepts On View Point

श्रुतज्ञान अनुसार कई, वस्तु अंश यही ज्ञान ।
'नय' है नाम विकल्प का, ज्ञानी इसको जान ।।४.३९.१.६९०।।

जं णाणीय वियप्पं, सुयमेयं वत्थु-अंस-संगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं, णाणी पुण तेण णाणेण ।।१।।

यो ज्ञानिनां विकल्पः, श्रुतभेदो वस्त्वंशसंग्रहणम् ।
स इह नयः प्रयुक्तः, ज्ञानी पुनस्तेन ज्ञानेन ।।१।।

श्रुतज्ञान के आश्रय से युक्त वस्तु के अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञानी के विकल्प को 'नय' कहते है । उस ज्ञान से जो युक्त है वही ज्ञानी है ।

"Naya" is the standpoint (vikalpa/alternation/option) of a wise man to understand or conceive a part of the soul (or object/vastu) which is protected /corborated by scriptural knowledge. He who has got (or commands) such knowledge, is wise (Naya is a stand point which gives partial knowledge of a thing in same particular aspect of it). The thought activity which grasps only one aspect of an object with the aid of scriptures, is called Naya. He who possesses such knowledge is wise. (690)

नय बिन नर जाने नही, स्याद्वाद का ज्ञान ।
आवश्यक नय बोध है, अंत एक मत जान ।।४.३९.२.६९१।।

जम्हा ण णएण विणा, होइ णरस्स सिय-वाय-पडिवत्ती।
तम्हा सो बोहव्वो, एयंतं हंतुकामेण ।।२।।

यस्मान्न नयेनविना, भवति नरस्य स्याद्वादप्रतिपत्तिः ।
तस्मात्स बोद्धव्यः, एकान्तं हन्तुकामेन ।।२।।

नय के बिना मनुष्य को स्याद्वाद का बोध नही होता । अतः जो एकमत का या एकमत आग्रह का परिहार करना चाहता है उसे नय को अवश्य जानना चाहिये ।

A man can not understand "syadavada" without "Naya". Hence, he who wants to give up or do away with (parihar/ remove) one sidedness (E'kanta) or insistence on one sidedness (E'kanta agraha) must know "Naya".
Since without a (knowledge of) naya a man cannot have a knowledge of syadvada (the doctrine of conditional statement).
A knowledge of naya can be had by one who is desirous of destroying all the extremes. (691)

सुख ज्यूँ धर्मविहीन नहीं, जल बिन मुझे न प्यास ।
नय बिन ज्ञान है मूर्खता, द्रव्य स्वरूप न पास ।।४.३९.३.६९२।।

धम्मविहीणो सोक्खं, तणहाछेयं जलेण जह रहिदो ।
तह इह वंछइ मूढो, णयरहिओ दव्वणिच्छिती ।।३।।

धर्म्महवहीनः सोख्यं, तृष्णाच्छेदं जलेन यथा रहितः ।
तथेह वाञ्छति मूढो, नयरहितो द्रव्यनिश्चिती ।।३।।

जैसे धर्मविहीन मनुष्य सुख चाहता है या कोई जल के बिना अपनी प्यासस बुझाना चाहता है, वैसे ही मूढजन नय के बिना द्रव्य के स्वरूप का निश्चय करना चाहता है ।

Only fools endeavour to determine the nature of soul without taking recourse to "Naya". Their endeavours resemble to those of persons of bad character and conduct who try to seek 'Acquire' pleasures or those of thirsty men to quench their thirst without (procuring) water. Just as an irreligious person desired to attain bliss without practising religion or a thirsty person desires to quench his thirst without using water, similarly the fool desires to determine the nature of a substance without taking recourse to naya. (692)

सामान्य-विशेष रहे तीर्थंकर दो वेद ।
द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक, शेष है इनके भेद ।।४.३९.४.६९३।।

तित्थयर-वयण-संगह-विसेस-पत्थार-मूल-वागरणी ।
दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ, य सेसा वियप्पा सिं ।।४।।

तीर्थकरवचनसंग्रहविशेषप्रस्तार - मूलव्याकरणी।
द्रव्यार्थिकश्च पर्यवनयश्च, शेषा: विकल्पा: एतेषाम् ।।४।।

तीर्थंकरों के वचन दो प्रकार के हैं। सामान्य और विशेष। दोनों प्रकार के वचनों की राशियों के नय भी दो हैं। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। शेष सब नय इन दोनों के ही अवान्तर भेद है।

The preaching of tirthankaras are of two kinds : 1. General (Samanya), 2. Particular (Visesa). The basic Nayas which propound (or advocate) these two types of preachings are also two named. 1. Substantial (Dravyarthic/Real) and 2. Modal (Paryayarthic/practical). The rest of the Nayas are the sub divisions (off shoots) of these two. (The substantial/Real mode of discourse propounds the general nature of soul and the modal mode of discourse (paryayarthic Naya) propounds particular aspect or aspects thereof. The entire body of the teachings of Tirthankara taken in its entirely and taken in its particular details is to be explained with the help of two basic standpoints (nayas)- viz that substantial point of view (dravyarthikanaya) and that modificational point of view (paryayarthikanaya). The rest of them are the offshoots of these two. (693)

पर्यायर्थिक भान नहीं, द्रव्यार्थिक नय ज्ञान ।
द्रव्यार्थिक का भान नहीं, पर्यार्थिक पहचान ।।४.३९.५.६९४।।

दव्वट्ठिय-वत्तव्वं, अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स ।
तह पज्जववत्थु, अवत्थमेव दव्वट्ठियणयस्स ।।५।।

द्रव्यार्थिकवक्तव्य-मवस्तु नियमेन पर्यवनयस्य ।
तथा पर्यवस्तु, अवस्तु एव द्रव्यार्थिकनयस्य ।।५।।

द्रव्यार्थिक नय का वक्तव्य पर्यायार्थिक नय के लिये नियमतः अवस्तु है और पर्यायार्थिक नय की विषयभूत वस्तु द्रव्यार्थिक नय के लिये अवस्तु है।

The statement from substantial stand point (about Generality) is as a rule non existent (Avastu/non entity) to those who adopt modal stand point and the statement from modal stand point (i.e. statement regarding particular mode or aspect of the soul) is as a rule non existen (Avastu/nonentity) to those who adopt substantial stand point. What is said from the substantial view-point appears, as a rule, unreal from the modal view-point. Similarly what is said from the modal view-point appears unreal from the substantial view-point. (694)

पर्याय दृष्टि से वे, होतीं उत्पन्न नष्ट ।
द्रव्यदृष्टि से द्रव्य सदा, अनुत्पन्न अविनष्ट ।।४.३९.६.६९५।।

उप्पज्जंति वियंति य, भावा णियमेण पज्जवणयस्स ।
दव्वट्ठियस्स सव्वं, सया अणुप्पण्णमविणट्ठं ।।६।।

उत्पद्यन्ते व्यन्ति च, भावा नियमेन पर्यवनयस्य ।
द्रव्यार्थिकस्य सर्व, सदानुत्पन्नमविनष्टम् ।।६।।

पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से पदार्थ नियमतः उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। और द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से सकल पदार्थ सदैव अनुत्पन्न और अविनाशी होते हैं।

From modal stand point (Paryayarthic naya) souls are as a rule born/reborn and decayed (or destroyed); from substantial stand point (Dravyarthic naya) souls are unborn (Anutpanna) and indestructible (Avinashi). From the modal viewpoint, things necessarily originate and perish. But from the substantial view-point, there is neither origination nor destruction. (695)

सब द्रव्य द्रव्यार्थिक से, देय भिन्न पर्याय ।
साथ समय के वस्तु दिखे, बनता रूप सहाय ।।४.३९.७.६९६।।

दव्वट्ठिएण सव्वं, दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो ।
हवदि य अण्णमण्णं, तक्काले तम्मयत्तादो ।।७।।

द्रव्यार्थिकेन सर्वं, द्रव्यं तत्पर्यायार्थिकेन पुनः ।
भवति चान्यद् अनन्यत्–तत्काले तन्मयत्वात् ।।७।।

द्रव्यार्थिक नय से सभी द्रव्य है और पर्यायर्थिक नय से वह अन्य है क्योंकि जिस समय में जिस नय से वस्तु को देखते हैं उस समय वह वस्तु उसी रूप में दृष्टिगोचर होती है।

From substantial point of view (stand point) all souls are substance (and are therefore a like); (whereas) from modal point of view (stand point) every souls is different (and is therefore unlike others) (it is so) because an object appears to be that and that alone which it appears at a particular time from a particular stand point (Naya). From substantial point of view, everything is of the form of substance (always remaining the same), but from modal view-point every thing differs from time to time. From each particular stand-point, a thing appears to its corresponding form. (696)

गौण जब पर्याय करे, द्रव्यार्थिक कहलाय ।
द्रव्य को जो गौण करे, पर्याय अर्थ समझाय ।।४.३९.८.६९७।

पज्जय गउणं किच्चा, दव्वं पि य जो हुगिण्हइ लोए ।
सो दव्वत्थिय भणिओ विवरीओ पज्ज्यत्थिणओ ।।८।।

पर्ययं गौणं कृत्वा, र्दव्यामपि च यो हि गृह्णाति लोके ।
स द्रव्यार्थिको भणितो, विपरीतः पर्यायार्थिनयः ।।८।।

जो ज्ञान पर्याय को गौण करके लोक में द्रव्य को ही ग्रहण करता है उसे द्रव्यार्थिक नय कहा गया है। और जो द्रव्य को गौण करके पर्याय को ही ग्रहण करता है उसे पर्यायर्थिक नय कहा गया है।

The substantial stand point (Dravyarthic Naya) is knowledge. That primarily explains the substance (Dravya/reality/ contents), it gives secondary importance to mode. On the contrary, knowledge which primarily explains mode (paryaya/ a particular state of soul) is called modal stand point (paryayarthic naya); it gives secondary importance to substance. The stand-point which gives secondary status to the modes and only grasps the substance, is called substantial viewpoint, while the opposite to it is called modal viewpoint. (697)

नैगम, व्यवहार, संग्रह, नय ऋजुसूत्र विचार ।
भूत शब्द समभिरूढ, मूल सात प्रकार ।।४.३९.९.६९८।।

नेगम-संगह-ववहार-उज्जुसुए चेव होइ बोधव्वो ।
सद्देय समभिरूढे एवंभूए य मूलनया ।।९।।

नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रश्च भवति बोद्धव्यः ।
शब्दश्च समभिरूढः, एवंभूतश्च मूलनयाः ।।९।।

मूल नय सात प्रकार के हैं। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवं भूत।

(As sub divisions of substantial and Modal stand points) the basic (original) nayas (stand-points) are seven: 1. Figurative/ not literal (Naigam); 2. General/common (Samgraha); 3. Distributive (Vyavhar); 4. Actual condition at a particular instant and for a long time (Rju-sutra); 5. Descriptive (Shabda); 6. Specific (Samabhirurha); and 7. Active (Evambhuta). Naigam, samgraha, vyavahara, rjusutra, sabda, samabhirudha and evambhuta-these are the seven basic stand-points. (698)

प्रथम तीन द्रव्यार्थिक नय, पर्यायार्थिक चार ।
प्रथम चार नय अर्थ है, तीन है शब्द विचार ।।४.३९.१०.६९९।।

पढमतिया दव्वत्थी, पज्ज्यगाही य इयर जे भणिया ।
ते चदु अत्थपहा, सद्दपहाणा हु तिण्णि णया ।।१०।।

प्रथमपत्रिकाः द्रव्यार्थिकाः, पर्यायग्राहिणश्चतरे ये भणिताः ।
ते चत्वारोऽर्थप्रधानाः, शब्दप्रधानाः हि त्रयो नयाः ।।१०।।

प्रथम तीन नय (नैगम, संग्रह, व्यवहार) द्रव्यार्थिक है शेष पर्यायार्थिक है । पहले चार नय अर्थ प्रधान है और अन्तिम तीन नय शब्दप्रधान है ।

Of them the first three substantial (Dravyarthic) and the last four modal (Paryayarthic) of all the seven stand points (nayas), the first four deal primarily with significance (Artha/object) and the last three deal primarily with words (Shabda). The first three fall under the category of substantial view-point, while the remaining four come under the modal viewpoint. Among these seven, the first four give eminence to meaning, while the remaining three to the word. (699)

सामान्य, विशेष, उभय हो, नैगम नय का ज्ञान ।
विविध रुप जाने उसे, 'नैकमान' भी जान ।।४.३९.११.७००।।

णेगाइं माणाइं सामन्नो-भय-विसेस-नाणाइं ।
जं तेहिं मिणइ तो णेगमो णओ णेगमाणो त्ति ।।११।।

नैकानि मानानि, सामान्योमय-विशेषज्ञानानि् ।
यत्तैर्मिनोति ततो, नैगमो नयो नान इति ।।११।।

सामान्य ज्ञान, विशेष ज्ञान तथा उभयज्ञान रूप से जो नेक मान लोक में प्रचलित है उन्हें जिसके द्वारा जाना जाता है वह नैगम नय है । इसलिये उसे नैकमान अथवा विविधरूप से जानना कहा गया है ।

The figurative stand point (Naigmaa-naya) is that, which explains the various standards of General Knowledge (Samanya-jnan) particular knowledge (visesa-Jnan) and common knowledge (ubhaya-jnan) as are prevalent (current) in universe. That is why, it is also called 'Nayikman' (i.e. knowing in various ways). Naigam Naya deals with both the aspects of a thing, that is, generic as well as specific aspects, as the case might be, in order to know this, it knows the thing in its various forms. (700)

सम्पन्न द्रव्य क्रिया का, आज पर आरोप ।
भूत वीर निर्वाण का, उस दिन पर आरोप ।।४.३९.१२.७०१।।

णिव्वित्त दव्वकिरिया, वट्टणकाले दु जं समाचरणं ।
तं भूयणइगमणयं, जह अज्जदिणं निव्वुओ वीरो ।।१२।।

निर्वृत्ता द्रव्याक्रिया, वर्तने काले तु यत् समाचरणम् ।
स भूतर्नमनयो, यथा अद्य दिनंनिर्वृतो वीरः ।।१२।।

(भूत, वर्तमान व भविष्य के भेद से नैगमनय तीन प्रकार का है) जो द्रव्य सा कार्य भूतकाल में समाप्त हो चुका हो उसका वर्तमानकाल में आरोपण करना भूत नैगमनय है। जैसे हज़ारों साल पहले भगवान महावीर के निर्वाण के लिये निर्वाण अवस्था के दिन कहना कि आज वीर भगवान का निर्वाण हुआ है ।

(The figurative stand point (Naigam-naya) is of three kinds; relating to past, present and future. The Bhuta-Naigam naya (past, figurative stand point) speaks of a past even as a present one as for example, saying on Nirvaha-Amavasya (Deepavali) "Lord Mahavir attained liberation today" though Lord Mahavir attained Nirvana thousand of years ago. Naigam Naya is of three kinds, according to the three tenses. The past, the present and the future. (701)

पकना भोजन का शुरु, कहे बनाया भात ।
वर्तमान नैगम नय है, समझो अर्थ से बात ।।४.३९.१३.७०२।।

पारद्धा जा किरिया, पचणविहाणादि कहइ जो सिद्धा ।
लोएसु पुच्छमाणो, भण्णइ तं वट्टमाण-णयं ।।१३।।

प्रारब्धा या क्रिया, पचनविधानादि कथयकति यः सिद्धाम् ।
लोकेच्च पृच्छयमाने, स भण्यते वर्तमाननयः ।।१३।।

जिस कार्य को अभी प्रारम्भ ही किया है उसके बारे में लोगों के पूछने पर 'पूरा हुआ' कहना जैसे भोजन बनाना प्रारम्भ करने पर ही यह कहना कि आज भात बनाया है यह वर्तमान नैगमनय है ।

The present figurative stand point (vartaman-Naigam-naya) is that which speaks of a thing in hands as a completed fact. For example, to say at the very out set of the process of cooking "Today, I have prepared rice". To describe the work as "has been done" when asked, the moment it has been started, is known as the Vartamana Naigam Naya, for, example the food is said to have been cooked when the coooking has just been started. (702)

भविष्य में जो करना है, बाक़ी सारा काम ।
गया ना, पर कहा गया, भावी नैगम नाम ।।४.३९.१४.७०३।।

णिप्पण्णमिव पनयंपदि भावि–पदत्थं खु जो अणिप्पण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णइ सो भावि–णइगमुत्ति णओ ।।१४।।

निष्पन्नमिव प्रजल्पति, भाविपदार्थं नरोऽनिष्पन्नम् ।
अप्रस्थे यथा प्रस्थः, भण्यते स भाविनैगम इति नयः ।।१४।।

जो कार्य भविष्य में हाने वाला है उसके निष्पन्न न होने पर भी निष्पन्न हुआ कहना भावी नैगमनय है । जैसे जो अभी गया नही है उसके लिये कहना की वह गया ।

The future figurative stand point (Bhavi-Nigam-naya) is that which speaks of a future event not happened so far as a present one (i.e. an event which has happened) for example, to say about one, who has not gone so far. "He has gone". To say that an act, which is to be performed in future has been completed, though incomplete is an example of Bhavisya Naigam Naya e.e. when a person is about to start,we say "he has gone".(703)

आपस में अविरुद्ध हो, संग्रह नय पहचान ।
ग्रहण आंशिक ही करे, अशुद्ध संग्रहनय जान ।।४.३९.१५.७०४।।

अवरो–प्पर–मविरोहि, सव्वं अत्थि त्ति सुद्ध संगहणे ।
होइ तमेव असुद्धं, इगि–जाइ–विसेस–गहणेण ।।१५।।

परस्परमविरोधे, सर्वमस्तीति शुद्धसङ्गट्टणम् ।
भवति स एवाशुद्धः, एकजातिविशेषग्रहणेन ।।१५।।

संग्रहनय के दो भेद हैं । शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध संग्रहनय में परस्पर का विरोध न करके सत् रूप से सबका ग्रहण होता है। उसमें से एक जातिविशेष को ग्रहण करने से वही अशुद्धसंग्रहनय होता है ।

The General stand point (samgratanaya) is of two kinds: 1. Pure General and 2. Impure General. In the former (i.e. pure general) every object is explained by way of existence (isness/satrupi) irrespective of contradictions (and differences) of them. When a particular specie is taken up the impure-General stand-point is re'sorted to.
There are two kinds of samgrahanaya-suddhasam-grahanaya and asuddhasamgrahanaya. In suddhasamgraha-naya, we accept only one common characteristic of things existence, ignoring all the mutual conflicting characteristics, while in Asuddhasamgrahanaya, we accept the generic class characteristic of things. (704)

संग्रह नय से हो गृहीत, अर्थ में करे भेद।
शुद्ध अशुद्ध के भेदक से, नय व्यवहार दो भेद ।।४.३९.१६.७०५।।

जं संगहेण गहियं, भेयइ अत्थं असुद्ध सुद्धं वा।
सो वहारो दुविहो, असुद्धसुद्धत्थभेयकरो ।।१६।।

यः संग्रहेण गृहीतं, भिनत्ति अर्थं अशुद्धं शुद्धं वा।
स व्यवहारो द्विविधोऽशुद्धशुद्धार्थभेदकरः ।। १६ ।।

जो संग्रहनय के द्वारा गृहीत शुद्ध अथवा अशुद्ध अर्थ का भेद करता है वह व्यवहारनय है। यह भी दो प्रकार का है। अशुद्धार्थक भेदक और शुद्धार्थक भेदक।

The Distributive stand point (vyavaharnaya) is that which differentiates pure implications from impure ones according to General stand point. This is also of two kinds: 1. That seperates impureimplications (Ashuddhartha-bhedak) and 2. That separate pure implications (Shuddhartha-bheda) That which distinguishes between the pure synthetic approach and impure synthetic approach about the thing is called Vyavaharanaya. This Vyavaharanaya is further of two gypes complete distinguishing and incomplete distinguishing. (705)

वर्तमान ही ग्रहण करे, हर पल होता नाश ।
सूक्ष्मऋजुसूत्र नय यही, क्षण ही सबका वास ।।४.३९.१७.७०६।।

जो एयसमयवट्टी, गिह्णइ दव्वे धुवत्तपज्जायं ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो, सव्वं पि सद्दं जहा खणियं ।।१७।।

यः एकसमयवर्तिनं, गृह्णाति द्रव्ये ध्रु वत्वपर्यायम् ।
स ऋजुसूत्रः सूक्ष्मः, सर्वोऽपि शब्दः यथा क्षणिकः ।।१७।।

जो द्रव्य में एकसमयवर्ती (वर्तमान) अध्रुव पर्याय को ग्रहण करता है उसे सूक्ष्मऋजुसूत्रनय कहते हैं। जैसे सब सत्क्षणिक है ।

The fine-Riju-sutranaya (Sukshma - Rijasutra - naya) explains the actual unstable (Adhurva) condition of a substance at a particular instant for example all the words are transient (Kshanik/momentary/fleeting).
The naya which grasps the evanescent modes of an enternal substance, is called Rjusutra naya, for example `to say that' all the sound is momentary'. (706)

मनुष्यादि पर्याय समय, वर्तमान का भान ।
ग्रहण काल को ही करे, सूत्र स्थूलऋजु मान।।४.३९.२८.७०७।।

मणुवाइ–पज्जाओ, मणुसो त्ति सभाट्ठिदीसु वट्टंतो ।
जो भणइ तावकालं, सो थूलो हाइ रिउसुत्तो ।।१८।।

मनुजादिकपर्यायो, मनुष्य इति स्वकस्तित्तषफ वर्तमानः ।
यः भणति तावत्कालं, स स्थूलो भवति ऋजुसूत्रः ।।१८।।

और जो अपनी स्थितिपर्यन्त रहने वाली मनुष्यादि पर्याय को उतने समय तक एक मनुष्यरूप से ग्रहण करता है वह स्थूल–ऋजुसूत्रनय है ।

The Gross Riju sutra naya deals with the actual condition of a substance for a long time such as a man in human mode (Manushya-paryaya). On the other hand that naya which attritubes a mode like man-ness etc. to a being, throughout the course of that period during which this being continues to exhibit that mode is the sub-type of Rjusutranaya, called Sthularjusutranaya. (707)

शब्दों से ही जब करे, आप वस्तु पहचान ।
शब्द अर्थ ही ग्रहण करे, शाब्दिक नय सम्मान ।।४.३९.१९.७०८।।

सवणं सपइ स तेणं व सप्पए वत्थु जं तओ सद्दो ।
तस्सत्थ-परिग्गहओ नओ वि सद्दो त्ति हेउ व्व ।।१९।।

शपनं शपति स तेन, वा शप्यते वस्तु यत् ततः शब्दः ।
तस्यार्थपरिग्रहतो, नयोऽपि शब्द इति हेतुरिव ।।१९।।

जिसके द्वारा वस्तु को कहा जाता है या पहचाना जाता है वह शब्दनय है।

Word is "calling" or "summoning" (Ahvan) (in other words) a word is that which "calls" or "summons". Further, a word is called that whereby a thing is described. Naya has also been termed as word because it explains the significance of that word. Sapana, i.e. "calling", is a word, or that which calls is word, or through which an object is reffered to is also a word. It is called "Sabdanaya" because it graspes the meaning of the word. (708)

भेद जो शब्दों से करे, करते ज्यूँ लिंग-भेद ।
पुष्य पुष्या अर्थ अलग, नय शब्द यही वेद ।।४.३९.२०.७०९।।

जो वट्टणं ण मण्णइ, एयत्थे भिण्ण-लिंग-आईण ।
सो सद्दणओ-भणिओ, णेओ पुस्साइ आण जहा ।।२०।।

यो वर्तनं च मन्यते, एकार्थे भिन्नलिङ्गादीनाम् ।
स शब्दनयो भणितः, ज्ञेयः पुष्यादीनां यथा ।।२०।।

जो एकार्थवाची शब्दों में लिंग आदि के भेद से अर्थभेद मानता है उसे शब्दनय कहा गया है। जैसे पुष्य शब्द पुल्लिंग में नक्षत्र का वाचक है और पुष्या स्त्रीलिंग तारिका का बोध कराती है।

The Descriptive stand point (Shabdanaya) explains the difference in the meaning and significance of synonymous words. (Ekartha vachi shabda) due to gender etc. As for e.g. the word "pusya" signifies a planet in masculine gender and "pusya" signifies star, in feminine gender. The naya that differentiates the meaning of the words according to their use, as gender etc., in a sentence is called sabda naya, for example, the word `pusya' denotes a particular Naksatra, while the word `Pusya' denotes a particular `Tarika'. (709)

सिद्ध शब्द जो है करता, अर्थ ग्रहण व्यवहार ।
शब्ददेव से देव समझ, नय ये शब्द विचार ।।४.३९.२१.७१०।।

अहवा सिद्धे सद्दे, कीरइ जं किं पि अत्थववहारं ।
तं खलु सद्दे विसयं देवो सद्देण जहा देवो ।।२१।।

अथवा सिद्धः शब्दः, करोति यत् किमपि अर्थव्यवहरणम् ।
तत् खलु शब्दस्य विषयः, 'देवः' शब्देन यथा देवः ।।२१।।

अथवा व्याकरण से सिद्ध शब्द में अर्थ का जो व्यवहार किया जाता है, उसी अर्थ को उस शब्द के द्वारा ग्रहण करना शब्दनय है । जैसे देव शब्द के द्वारा इसका सुग्रहीत अर्थ देव ही ग्रहण करना ।

The descriptive stand point (Shabdanaya) includes grammatical accuracy (correctness) and propriety of expression. It accepts the implications (or, connotations) which
are given to a word, constructed (or accomplished/siddha) grammatically and used likewise e.g. the word "Dev" should be taken as signifying the well accepted implication of "The celestial being". The naya which grasps the meaning of the word according to its etymology, is also clled `Sabdanaya', for example, the word `deva' generally means God. (710)

अर्थ जुड़ा है शब्द से, शब्द अर्थ पहचान ।
इन्द्र पुरन्दर हो शके, समभिरूढनय जान ।।४.३९.२२.७११।।

सद्दारूढो अत्थो, अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो।
भणइ इह समभिरूढो जह इंद पुरंदरो सक्को ।।२२।।

शब्दारूढोऽर्थोऽर्थारूढस्तथैव पुनः -- ।
भणति इह समभिरूढो, यथा इन्द्रः पुरन्दरः --- ।।२२।।

जिस प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने वाचक अर्थ में आरूढ है वैसे ही प्रत्येक शब्द भी अपने-अपने अर्थ में आरूढ है। अर्थात शब्दभेद के साथ अर्थभेद होता ही है। शब्द भेदानुसार अर्थभेद करने वाला समभिरूढ है। जैसे इन्द्र, पुरन्दर और शके तीनों शब्द देवों के राजा बोधक है पर अलग अलग अर्थ का बोध कराते हैं।

Just as every object signifies some specific thing; in the same way every word stands for a specific object (or meaning). There is difference in meaning with difference in words e.g. indra puranadar and sakra all the three signify the king of god but "Indra" connotes the prosperity of the king of gods purandar; connote that who destroys the localities of his enemies thus "Samabhirurhanaya" difference with difference in words (This stand point established closer relationship in words and their connoations).
Every word is followed by a specific meaning and vice-versa. The different synonymous words have their respective connotations even if the same object is referred to by them. For example, the word, Indra, Purandar and Sakra connote the same object, yet they have their respective meaning to. This is known as Samabhirudhanaya. (711)

रूप वही शब्दार्थ जो, भूत न अविद्यमान ।
एवंभूत–नय कहे उसे, शब्द–अर्थ पहचान ।।४.३९.२३.७१२।।

एवं जह सद्दत्थो संतो भूओ तह–ऩ्हा–भूओ ।
तेणेवंभूय–नओ सद्दत्थपरो विसेसेणं ।।२३।।

एवं यथा शब्दार्थः, सन् भूतस्तदन्य––।
तेनैवंभूतनयः, शब्दार्थपरो विशेषेण ।।२३।।

एवं अर्थात जैसा शब्दार्थ हो उसी क्रिया द्वारा जो काम करता है उस प्रत्येक कर्म का बोधक अलग–अलग शब्द है और उसी का उस समय प्रयोग करने वाला एवं भूतनय है। जैसे मनुष्य को पूजा करते समय पुजारी और युद्ध करते समय योद्धा कहना।

"Evainbhuta-Naya" restricts a name to the very activity which is connoted by the term even (i.e. As it is and "Bhuta" (i.e. which exists) combine to make "Evambhuta" it propounds : it exists as it is; and it dies not exist as it is not. In this stand point the words and the objects tally with each other. This Naya is comparatively move related with the meanings of words than shabda naya and samabhiruhanaya. A word only applies to an object in case it behaves in the manner suggested by the (etymological) meaning of the word, denoting it and not in case it does not behave in that "Evambhutanaya". Hence this particular naya cling to the particular meaning of the word. (712)

जीव जो भी क्रिया करे, मन वचन और काय ।
वो ही शब्द प्रयोग करे, एवं भूत कहलाय ।।४.३९.२४.७१३।।

जंजं करेइ कम्मं, देही मण-वयण-काय-चेट्ठादो ।
तं तं खु णामजुत्तो, एंवभूदो हवे स णओ ।।२४।।

यद् यद् कुरुते कर्म, देही मनोवचनकायचेष्टातः ।
तत् तत् खलु नामयुक्तः, एवंभूतो भवेत् सः नयः।।२४।।

जीव अपने मन वचन काय के रुप में जो भूत या विद्यमान है और दो शब्दार्थ से अन्यथा है वह अभूत या अविद्यमान है । जो ऐसा मानता है वह एवंभूतनय है। इसिलिये शब्दनय और समभिरूढनय की अपेक्षा एवंभूतनय विशेषरूप से शब्दार्थ तत्परनय है ।

There are different words for different activities of mind, speech and body of an (impure) soul Evanibhula-naya uses that specific word on that specific moment. For example it calls a worshipper by the term only when one is engaged in worshipping; it call a warrior, warrior, only means that the man
is engaged in warfare. Whatever an act a person is now performing, through the instrumentality of his mind, speech or body, a name corresponding to that act is to be applied to this person, this is what is maintained by the naya called Evambhutanaya (e.g. A person is called teacher only while he is ------ (713)

प्रकरण ४० - स्याद्वाद व सप्तभंगी-सूत्र

Chapter 40 - Precepts On Valid Knowledge

परस्पर सापेक्ष हो, नय या रहे प्रमाण ।
संबंधित सापेक्ष रहे, शेष निरपेक्ष जाण ।।४.४०.१.७१४।।

अवरो-प्परसावेक्खं, णय-विसयं अह पमाणविस्यं वा ।
तं सावेक्खं भणियं, णिरवेक्खं ताण विवरीयं ।।१।।

परस्परसापेक्षो, नयविषयोऽथ प्रमाणविषयो वा ।
तत् सापेक्षं भणितं, निरपेक्षं तयोर्विपरीतम् ।।१।।

नय का विषय हो या प्रमाण का, परस्पर सापेक्ष विषय को ही सापेक्ष कहा जाता है और इससे विपरीत को निरपेक्ष कहा जाता है।

Whether the subject be that of stand point (naya) or that of pramana (Authority/knowledge) mutually unrealted subjects alone called "Related" (Sapeksha) and mutually unrelated subject is called unrelated (Nirpeksha) the subject of pramamana (of Naya (stand point) is in necessity of pramans (Authority) and other opposite Authority knowledge) is in necessity of all the stand points (Nayas) and the subject stand points (Naya). That is why it is called related (Sapeksha). The object of naya or pramana; if it is conditional, is called relative, and if not, absolute. The object whether of naya or pramana, is called relative, if it is conditional, and absolute, if it is unconditional. (714)

सर्वथा का निषेध करे, स्यात् निपात से सिद्ध।
स्यात् अर्थ सापेक्ष, होती यही वस्तु ये सिद्ध ।।४.४०.२.७१५।।

णियम-णिसेध-सीलो, णिपाद्णादो य जो हु खलु सिद्दो ।
सो सियसद्दो भणिओ, जो सावेक्खं पसाहेदि ।।२।।

नियमनिषेधनशीलो, निपातानाच्च यःखलु सिद्धः ।
स स्याच्छब्दो भणितः' यः सापेक्षं प्रसाधयति ।।२।।

जो सदा नियम का निषेध करता है उस शब्द को स्यात् कहा गया है। यह वस्तु को सापेक्ष सिद्ध करती है।

The word "syat" always negates (denies) the rule and us accomplished (siddha) in the shape of a full (Nipata). This word proves and object to be related one (Sapeksha). The word 'Syat' is said to be one that negates all unconditionally, one that is of the grammatical form called nipata (an underived particle) and one that demonstrates all things as conditional. (715)

सात अंग है स्यात् के, नय, दुर्नय, प्रमाण ।
नय, प्रमाण सापेक्ष है, विरुद्ध दुर्नय जान ।।४.४०.३.७१६।।

सत्तेव हंति भंगा, पमाण-णय-दुणय-भेद-जुत्ता वि ।
सि सावेक्खं पमाणं, णएण णय दुणय णिरवेक्ख ।।३।।

सप्तैव भवन्ति भङ्गाः, प्रमाणनयदुर्नयभेदयुक्ताः अपि।
स्यात् सापेक्षं प्रमाणं, नयेन नया दुर्नया निरपेक्षाः ।।३।।

स्यात् लगाकर कथन करना स्याद्वाद का लक्षण है। इसके ७ भंग है। स्यात् सापेक्ष भंगों को प्रमाण कहते हैं। नय युक्त भंगों के नय कहते हैं और निरपेक्ष भंगों को दुर्नय।

(The characteristic of syadavada is the use of the word of 'syat' (i.e. related to/in relation of) after every sentence (or pharse) in support of the relativity of many facet object (Anika-Dharmavastu/soul having many attributes). In this (nyaya) there are seven view points of speech due to the classification (division) of pramana (Authority/knowledge) naya (stand-points) and Durnaya (Bad stand point). The relative stand points (view points) are called pramanas (Authority). The view points associated with nayas and unrelated view points are called Durnayas (bad stand points).
The predications are seven - be they of the form of pramana or a naya proper or a naya improper. The statement characterized by syat (in same respect) is pramana, that which does not rule out the other probabilities is naya proper, and that which absolutely negates the other probabilities is naya proper, and that which absolutely negates the other probabilities is naya improper. (716)

दोनों है और है नहीं, स्यात् जुड़ता साथ।
अस्ति नास्ति, वक्तव्य नहीं, भंग प्रमाण है सात ।।४.४०.४.७१७।।

अत्थि त्ति णत्थि दो विय, अव्वत्तव्वं सिएण संजुत्तं ।
अव्वत्तव्वा ते तह, पमाणभंगी सुणायव्वा ।।४।।

अस्तीति नास्ति द्वापपि, च अवक्तव्यं स्याता संयुक्तम् ।
अवक्तव्यास्ते तथा, प्रमाणभङ्गी सुज्ञातव्या ।।४।।

स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य, इन्हें प्रमाण सप्तभंगी जानना चाहिये।

The authority of the point of view of speech of seven kinds (The pramana saptabhangi) consists of the point of view of seven kinds: 1. Relatively is; 2. Relatively is not; 3. Relatively is and is not; 4. Relatively is unpredicable; 5. Relatively is and is unpredictable; 6. Relatively is not and is unpredictable; and 7. Relatively is, and is not and is unpredicable.
`Is', `is not', `is and is not', `is indescribable', `is and is indescribable', `is not and indescribable', and `is, is not and is indescribable' -these seven predications, each containing the word `syat' constitute predications of the form of Pramana. (717)

अस्तित्व स्वरुप द्रव्य रहे, क्षेत्र, काल गुण भाव।
द्रव्य, क्षेत्र पर काल हो, नास्ति रहे स्वभाव ।।४.४०.५.७१८।।

अत्थि–सहावं दव्वं, सद्दव्वादीसु गाहियणएण ।
तं पि य णत्थि–सहावं, परदव्वादीहि गहिएण ।।५।।

अस्तिस्वभावं द्रव्यं, स्वद्रव्यादिषु ग्रहकनयन ।
तदपि च नास्तिस्वभावं, पदद्रव्यादिभिर्गृ हीतेन ।।५।।

स्व–द्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य अस्तित्व स्वरूप है। वही पर–द्रव्य, पर–क्षेत्र, पर–काल और पर–भाव की अपेक्षा नास्तिस्वरूप है।

The substance exists as entity from the view point of its own subject matter, place, time and nature. The same (substance) is not entity (Non-substance/adravya from the entity point of view of the subjects matter place, time and nature of non substance (pardravya).
Each substance grasped in the form of `this substance' etc. is of the nature of something existent, the same grasped in the form of' a substance other than this one' etc. is of the nature of something nonexistent. (718)

'स्व' से है 'पर' से नहीं, इक ना शब्द बताय ।
दो धर्म इक साथ हो, वक्तव्य नहीं कहलाय ।।४.४०.६.७१९।।

उहयं उहयणएण, अव्वत उत्तव्वं च तेण समुदाए ।
ते तिय अव्वत्तव्वा, णिय–णिय–णिय–णय–अत्थ–संजोए ।।६।।

उभयमुभयनयेना–वक्तव्यं च तेन समुदाये ।
ते त्रिका अवक्तव्या, निजनिजनयार्थसंयोगे ।।६।।

स्व–द्रव्यादि चतुष्टय और पर–द्रव्यादि चतुष्टय दोनों की अपेक्षा लगाने पर एक ही वस्तु स्यात्–अस्ति और स्यात्–नास्ति स्वरूप होती है। दोनों धर्मों को एक साथ कहने की अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य है । इसी प्रकार अपने–अपने नय के साथ अर्थ की योजना करने पर अस्ति–अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य और अस्ति–नास्ति अवक्तव्य है ।

The same object 'relatively is' and relatively is not in relation to the quarternary of its own substance etc., and the quaternary of non substance etc. The object is unpredicable in relation to the statement of both natures to be made simultaneously. (if statements under syat asti nasti are attempted to be made at once it can not be done). Hence the (unpredictability) in the same manner if the statements are attempted to be made from other strand point the consequences are the statements of "Relatively" is and is unpredictable" and "Relatively is not and is unpredicable" and "Relatively and is not and is unpredicable". When grasped in both the above forms it is of the nature of something existent as well as non-existent, when simultaneously grasped in both the above forms, it is something indescribable in three additional forms, in as much as, it is at the same time also treated as something existent, something non-existent, or something both existent and not-existent. (719)

है, नहीं, और उभय है, ज़ोर एक पर जाय।
स्यात पद निरपेक्ष–नय, दुर्नय भंग कहाय ।।४.४०.७.७२०।।

अत्थि त्ति णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं तहेव पुण तिदयं ।
तह सिय णयणिरवेक्खं, जाणसु दव्वे दुणयभंगी ।।७।।

एकनिरुद्धे इतरः, प्रतिपक्षो अपरश्च स्वभावः।
सर्वेषां स स्वभावे, कर्तव्या भवन्तितथा भङ्गाः ।।७।।

स्यात् पद कथा नय–निरपेक्ष होने पर यही सातों भंग दुर्नय भंगी कहलाते है। जैसे वस्तु अस्ति ही है, नास्ति ही है, उभयरूप ही है, अवक्तव्य ही है, अस्ति अवक्तव्य ही है, नास्ति अवक्तव्य ही है या अस्ति–नास्ति अवक्तव्य ही है। (किसी एक ही दृष्टिकोण पर ज़ोर देना तथा दूसरे की सर्वथा उपेक्षा करना दुर्नय है।)

These seven points of view become bad-naya (Durnaya) points of view, when they are not unrelated syand points, for example statements "The substance "is", "is not", "is and is not", "is unpredicable" or "is and is not and is unpredicable" alone. (The purpose being; insistence on one aspect or on one point of view regardless of other aspects or points of view give rise to bad naya/Durnaya).
'Is', 'Is not', 'is and is not', 'is indescribable', 'is and is indescribable' 'is not and is indescribable', and 'is, not and is indescribable' - these very seven predications, pertaining to a substance, when characterized by 'syat' (in some respect are called improper nayas). (720)

धर्म ग्रहण कर एक का, प्रतिपक्षी संग आय ।
धर्म दोनों साथ चले, स्यात् भंग ही भाय ।।४.४०.८.७२१।।

एक–णिरुद्धेइयरो, पडिवक्खो अवरे या सब्भाओ ।
सव्वेसिं स सहावे, कायव्वा होई तह भंगा ।।८।।

एकनिरुद्धे इतर, प्रतिपक्षो अपरश्च स्वभावः ।
सर्वेषां स स्वभावे, कर्तव्या भवन्ति तथा भङ्गाः ।।८।।

वस्तु के एक धर्म को ग्रहण करने पर उसके प्रतिपक्षी दूसरे धर्म का भी ग्रहण अपने आप हो जाता है क्योंकि दोनों ही धर्म वस्तु के स्वभाव है। अतः सभी वस्तु धर्मों में सप्तभंगी की योजना करनी चाहिये।

When we accept (understand) one nature (attribute) of the object (or soul), automatically we accept its counterpart because both natures (attributes) are inherent in the nature of the objects (soul). Hence the scheme of seven points of view should be applied to all the attributes of the object (soul).
When one property of a thing is grasped, the property opposed to it is also grasped automatically because both these properties constitute the nature of this thing. Thus in respect of nature of all things, the aforesaid predications are to be made. (721)

प्रकरण ४१ - समन्वयसूत्र

Chapter 41 - Precepts On Reconciliation

परोक्षरूप दर्शन करे, अनेकान्त पहचान ।
संशय बाक़ी रहे नहीं, कहलाये श्रुतज्ञान ।।४.४१.१.७२२।।

सव्वं पि अणेयंतं, परोक्ख-रूवेण जं पयासेदि ।
तं सुय-णाणं भण्णादि, संसय-पहुदीहि परिचत्तं ।।१।।

सर्वमपि अनेकान्तं, परोक्षरूपेण यत् प्रकाशयति ।
तत् श्रुतज्ञानं भण्यते, संशयप्रभृतिभिः परित्यक्तम् ।।१।।

जो परोक्षरूप से समस्त वस्तुओं को अनेकान्तरूप दर्शाता है और संशय आदि रहित है, वह श्रुतज्ञान है।

That (knowledge) which reveals the multiple aspects of the things in an indirect form and is free from any doubt etc. is designated as scriptural knowledge. (722)

लोकव्यवहार साधता, एक धर्म पहचान ।
श्रुतज्ञान का भेद ये, नय चिन्ह का ज्ञान ।।४.४१.२.७२३।।

लोयाण ववहारं, धम्म-विवक्खाइ जो पसाहेदि ।
सुय-णाणस्स वियप्पो सो वि णओ लिंग-संभूदो ।।२।।

लोकांना व्यवारं, धर्मविवक्षया यः प्रसाधयति ।
श्रुतज्ञानस्य विकल्पः, सः अपि नयः लिङ्गसम्भूतः ।।२।।

जो वस्तु के किसी एक धर्म की विवक्षा या अपेक्षा से लोक व्यवहार को साधता है, वह नय है। नय श्रुतज्ञान का भेद है और लिंग से उत्पन्न होता है।

The stand point (Naya) accomplishes people's behavioure (lokvyavhar) in relation to some particular attribute (Dharma/ nature/aspect) of the object (soul). Naya is a kind of scriptural knowledge and arises out of linga (sign/ mark/ symptom). (723)

वस्तु संग कई धर्म है, नय लेता बस एक।
महत्त्व है उस धर्म का, शेष है धर्म अनेक ।।४.४१.३.७२४।।

णाणा-धम्म-जुदं-पि-य, एयं धम्म पि वच्चदे अत्थं ।
तस्सेय-विवक्खादो, णत्थि विवक्खा हु सेसाणं ।।३।।

नानाधर्मयुतः अपि च, एकः धर्मः अपि उच्यते अर्थः।
तस्य एकविवक्षातः, नास्ति विवक्षा खलु शेषाणाम् ।।३।।

अनेक धर्मों से युक्त वस्तु के किसी एक धर्म के ग्रहण करना नय का लक्षण है। क्योंकि उस समय उसी धर्म की विवक्षा है, शेष धर्मों की विवक्षा नही है।

Although a thing is possessed of so many properties, yet it is referred to by only one of these properties, because at that time exposition of only that property is required and not the remaining others. (724)

हो सापेक्ष कहे सुनय, निरपेक्ष दुर्नय मान ।
व्यवहार सारे सिद्ध हो, सुनय नियम पहचान ।।४.४१.४.७२५।।

ते सावेक्खा सुणया, णिरवेक्खा ते वि दुण्णया होंति ।
सयल-ववहार-सिद्धी, सु-णयादो होदि णियमेण ।।४।।

ते सापेक्षाः सुनयाः, निरपेक्षाः ते अपि दुर्नया भवन्ति।
सकलव्यवहारसिद्धिः, सुनयाद् भवति नियमेन ।।४।।

वे नय विरोधी होने पर भी सापेक्ष हो तो सुनय कहलाते हैं और निरपेक्ष हो तो दुर्नय है। सुनय से ही नियमपूर्वक समस्त व्यवहारों की सिद्धि होती है।

The stand points (Nayas) are, inspite of being contradictory to each other are good stand points (Sunayas), as they are related with each other. Others are bad stand points (Durnayas) as they are not so related. It is only with the business of the works is accomplished in accordance with rules (Niyampurvak).(725)

वचन जितने नय उतने, सब नय अर्थ प्रधान।
हठग्राही ये मिथक नय, स्यात् सम्यक् मान ।।४.४१.५.७२६।।

जावंतो वयणपहा, तावंतो वा नया 'वि' सद्दाओ ।
ते चेव, य पर-समया, सम्मत्तं समुदिया सव्वे ।।५।।

यावन्तो वचनपथा-स्तावन्तो वा नयाः 'अपि' शब्दात् ।
तव एव च परसमयाः, सम्यक्त्वं समुदिताः सर्वे ।।५।।

वास्तव में देख जाय तो लोक में जितने वचन पन्थ है उतने ही नय है, क्योंकि सभी वचन वक्ता के किसी न किसी अभिप्राय या अर्थ को सूचित करते हैं और ऐसे वचनों में वस्तु के किसी एक धर्म की ही मुख्यतया होती है। अतः जितने नय सावधारण (हठग्राही) है, वे सब पर-समय है, मिथ्या है और अवधारणरहित (सापेक्षसत्यग्राही) तथा स्यात् शब्द से युक्त समुदित सभी नय सम्यक् होते हैं।

(In reality) there are as many stand points (Nayas) (In the world) as there are speech sects (vachan-panth/ways of speech); because all the words indicate some purpose or significance of the speaker; and in such words, there is the predominance of some particular attribute (Dharma) of the object. Hence the stand points which are obstinate (Hathagrahi/savadharana/ inflexible) are relatively truthful (Sapeksha satyagrahi) and conjuncted with the word 'syat' (In relation to) are Right (Samyak). (726)

ज्ञान नय विधि का जिसे, मत प्रचलित परिहार।
करे निवारण दुर्बुद्धि, जिन सिद्धान्त विचार ।।४.४१.७.७२७।।

पर-समएग-नय-मयं, तप्पडिवक्खनयओ निवत्तेज्जा ।
समए व परिग्गहियं, परेण जं दोस-बुद्धीए ।।६।।

परसमयैकनयमतं, तत्प्रतिपक्षनयतो निवर्तयेत् ।
समये वा परिगृहीतं, परेण यदा् दोषबुद्धया ।।६।।

नय-विधि के ज्ञाता को पर-समयरूप (एकान्त या आग्रहपूर्ण) अनित्यत्व आदि के प्रतिपादक ऋजुसूत्र आदि नयों के अनुसार लोक में प्रचलित मतों का निवर्तन या परिहार नित्यादि का कथन करनेवाले द्रव्यार्थिक नय से करना चाहिए। तथा समयस्वरूप जिन-सिद्धान्त में भी अज्ञान या द्वेष आदि दोषों से युक्त किसी व्यक्ति ने दोषबुद्धि से कोई निरपेक्ष पक्ष अपना लिया हो तो उसका भी निवर्तन (निवारण) करना चाहिए।

He who is the master of the laws of stand points (Naya vidhi ke jnanta) should refute obstinate and one sided (E'kant) cults/sects prevalent in the world, which propound transitoriness etc. according to Riju Sutra naya and the like with the help of substantial point of view, which propounds permanence etc. They should also correct the flows of such person who have inserted absolutism (Nirpeksha/paksha/any unrelated aspect) in the doctrines, preached by jinas, either out of ignorance or out or malice. (727)

अपने-अपने नय सच्चे, पर नय का सम्मान ।
सत्य झूठ ना आकलन, अनेकान्त का ज्ञान ।।४.४१.७.७२८।।

णिययवयणिज्जसच्चा, सव्वणयापरवियालणे मोहा ।
ते पुण ण दिट्ठसमयो, विभयइ सच्चे व अलिए वा ।।७।।

निजकवचनीयसत्याः, सर्वनयाः परविचारणे मोघाः ।
तान् पुनः न दृष्टसमयो, विभजति सत्यान् वा अलीकान् वा ।।७।।

सभी नय अपने-अपने वक्तव्य में सच्चे हैं, किन्तु यदि दूसरे नयों के वक्तव्य का निराकरण करते हैं तो मिथ्या है। अनेकान्त-दृष्टि का या शास्त्र का ज्ञाता उन नयों का ऐसा विभाजन नही करता कि 'ये सच्चे हैं' और 'वे झूठे हैं'।

All the stand points (nayas) are true in their own (individual) statements; (but) they become false in case they destroy/ overrule the statements of other stand points the man with the vision of many sidedness or the man conversant with scriptures does not divide stand points (Nayas) by declaring (some) "These are true" and (others) "these are false). (728)

नय सम्यक् निरपेक्ष नहीं, हो चाहे समुदाय ।
पृथक विरोधि साथ नहीं, चाहे वो मिल जाय ।।४.४१.८.७२९।।

न समेन्तिन य समेया सम्मत्तं नेव वत्थुणो गमगा ।
वत्थु-विद्यायाय नया, विरोहओ वेरिणो चेव।।८।।

निजकवचनीयसत्याः, सर्वनयाः परविचारणे मोघाः ।
तान् पुनः न दृष्टसमयो, विभजति सत्यान् वा अलीकान् वा ।।८।।

निरपेक्ष नय न तो सामुदायिकता को प्राप्त होते है और न वे समुदायरूप कर देने पर सम्यक् होते है। क्योंकि प्रत्येक नय मिथ्या होने से उनका समुदाय तो महामिथ्यारूप होगा। समुदायरूप होने से भी वे वस्तु के गमक नही होते, क्योंकि पृथक-पृथक् अवस्था में भी वे गमक नही है। इसका कारण यह है कि निरपेक्ष होने के कारण बैरी की भाँति परस्पर विरोधी हैं।

The absolute stand points (Nayas) neither attains collectivity/ communality (Samudayikata); nor they become right by being grouped (clubbed) together (Because) every such stand point being wrong, there well be extremely wrong (Mahamithyarupa) they do not become significant by being in groups; as they are not so, when they are separate. The reason thereof is; they are opposed (Contradictory) to each other like enemies by virtue of being absolute (Nirpeksha/unrelated). (729)

स्यात् शरण सम्यक् मिले, चाहे दुश्मन आप ।
व्यवहारी जन मित्र बने, राजन दास मिलाप ।।४.४१.९.७३०।।

सव्वे समयंति सम्मं, चेग-वसाओ नया विरुद्धा वि ।
भिच्च-वहारिणो इव, राओ-दसाण-वसवत्ती ।।९।।

सर्वे समयन्ति सम्यक्त्वं, चैकवशाद् नया विरुद्धा अपि।
भृत्यव्यवहारिण इव, राजोदासीन-वशवर्तिः ।।९।।

जैसे नाना अभिप्रायवाले अनेक सेवक एक राजा, स्वामी या अधिकारी के वश में रहते हैं, या आपस में लड़ने-झगड़नेवाले व्यवहारी-जन किसी उदासीन (तटस्थ) व्यक्ति के वशवर्ती होकर मित्रता को प्राप्त हो जाते हैं, वैसे ही ये सभी परस्पर विरोधी नय स्याद्वाद की शरण में जाकर सम्यक्भाव को प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् स्याद्वाद की छत्रछाया में परस्पर विरोध का कारण सावधारणता दूर हो जाती है और वे सब सापेक्षतापूर्वक एकत्र हो जाते है।

Just as many servants, serving with (for) different purposes, work under the control of one king or master or officer; or as many people quarreling with each other, come to terms (and establish friendship among themselves) by the efforts of some neutral intermediary; similarly all these contradictory stand points come to terms (and settle amicably by taking shelter under syadavada. In other words all the satnd points join hands with each other in a relative manner; and the willfulness (Savadharanata/obstinacy/determinateness) which is the cause of mutual antagonism disappears under the shade of the umbrella of Syadavad. (730)

अंश जान सब जान लिया, वस्तु धर्म अनेक ।
हाथी अंधा जानता, मिथ्या समझ विवेक ।।४.४१.१०.७३१।।

जगणेग-धम्मणो-वत्थुणो, तदंसे च सव्व-पडिवत्ती ।
अंध व्व गयावयवे तो, मिच्छादिट्ठिणो वीसु ।।१०।।

यदनेकधर्मणो वस्तुन-स्तदंशे च सर्वप्रतिपत्तिः ।
अन्धा इव गजावयवे, ततो मिथ्यादृष्टयो विष्वक् ।।१०।।

जैसे हाथी के पूँछ, पैर, सूंड आदि टटोलकर एक-एक अवयव को ही हाथी माननेवाले जन्मान्ध लोगों का अभिप्राय मिथ्या होता है, वैसे ही अनेक धर्मात्मक वस्तु के एक-एक अंश को ग्रहण करके 'हमने पूरी वस्तु जान ली है,' ऐसी प्रतिपत्ति करनेवालों का उस वस्तुविषयक ज्ञान मिथ्या होता है ।।

Just as the opinions (ideas) of (some) born blind persons about the shape of the body of an elephant (who filt various limbs of the elephant e.g. tail, leg, trunk etc. with their hands) and deemed the body the elephant to be of that shape were mistaken; similarly those who know only one of the parts attributes/facet/aspect of an object (which consist of many parts/attributes/facets/aspects) and who proclaim "We know the object fully". (731)

सकल समझ पर्याय ले, पूर्ण वस्तु गुणगान ।
जाने गज चहुँ ओर से, होता सम्यक् ज्ञान ।।४.४१.११.७३२।।

जंपुण समत्त-पज्जाय-वत्थुगमग त्ति समुदिया तेणं ।
सम्मत्तं चक्खुमओ, सव्वगया-वयव गहणे व्व ।।११।।

यत्पुनः समस्तपर्याय-वस्तुगमका इति समदितास्तेन ।
सम्यक्त्वं चक्षुष्मन्तः, सर्वगजावयवग्रहण इव ।।११।।

तथा जैसे हाथी के समस्त अवयवों के समुदाय को हाथी जाननेवाले चक्षुष्मान् (दृष्टिसम्पन्न) का ज्ञान सम्यक् होता है, वैसे ही समस्त नयों के समुदाय द्वारा वस्तु की समस्त पर्यायों को या उसके धर्मों को जाननेवाले का ज्ञान सम्यक् होता है ।

Just as the knowledge of a man with proper eye sight who knows about the body of the elephant as the aggregate of all its limbs is correct similarly the knowledge of a man who is conversant with all the attributes or modes of soul with the help of the community of (all) stand points, is correct (samyak). (732)

कई पदार्थ संसार में, वर्णन कर नही पाय।
वर्णनात्मक का अंश ही, शास्त्र मध्य समाय ।।४.४१.१२.७३३।।

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं ।
पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुदणिबद्धो ।।१२।।

प्रज्ञापनीया:भावा:, अनन्तभाग: तु अनभिलाप्यानाम् ।
प्रज्ञापनीयानां पुन:, अनन्तभाग: श्रुतनिबद्ध: ।।१२।।

संसार में ऐसे बहुत–से पदार्थ है जो अनभिलाप्य है। शब्दों द्वारा उनका वर्णन नही किया जा सकता। ऐसे पदार्थों का अनन्तवाँ भाग ही प्रज्ञापनीय (कहने योग्य) होता है। इन प्रज्ञापनीय पदार्थों का भी अनन्तवाँ भाग ही शास्त्रों में निबद्ध है। (ऐसी स्थिति में कैसे कहा जा सकता है कि अमुक शास्त्र में लिखी बात या अमुक ज्ञानी की बात ही निरपेक्ष सत्य है।)

There are many such objects in the world which are indescribable (Anabhilapya/inexpressionable) words cannot describe them. The infinite part of such objects is alone describable (Prajnapaniya). The scripture contain the infinite part of such describable objects (The idea underlying is under such circumstances, how can be established that the preposition of some particular scripture of some particular philosopher is absolutely true. (733)

प्रशंसनीय स्व कथन हो, पर ना दिखता सार ।
जो पंडित ऐसा करे, जकड़ रहा संसार ।।४.४१.१३.७३४।।

सयं सयं पसंसंता, गरहंता परं वयं।
जे उ तत्थ विउस्संति संसारं ते विउस्सिया ।।१३।।

स्वकं स्वकं प्रशंसन्तः, गर्हयन्तः, परं वचः ।
ये तु तत्र विद्वस्यन्ते, संसारं ते व्युच्छिता ।।१३।।

इसलिए जो पुरुष केवल अपने मत की प्रशंसा करते हैं तथा दूसरे के वचनों की निन्दा करते हैं और इस तरह अपना पांडित्य-प्रदर्शन करते हैं, वे संसार में मजबूती से जकड़े हुए है --- दृढ़रूप में आबद्ध हैं।

Therefore those who admire their own views and condemn the views of others and in this way who show their scholarship in a connected manner (and are pedantic) are strongly bound with their mundane existence. (734)

सकल समझ पर्याय ले, पूर्ण वस्तु गुणगान ।
जाने गज चहुँओर से, होता सम्यक् ज्ञान ।।४.४१.११.७३२।।

णाणा-जीवा णाणा-कम्मं, णाणा-विहं हवे लद्धी ।
तम्हा वयण-विवादं सग-पर-समएहिं वज्जिज्जो ।।१४।।

नानाजीवा नानाकर्म्म, नानाविधा भवेल्लब्धिः ।
तस्माद् वचनविवादं, स्वपरसमयैर्वर्जयेत् ।।१४।।

इस संसार में नाना प्रकार के जीव हैं, नाना प्रकार के कर्म हैं, नाना प्रकार की लब्धियाँ है, इसलिए कोई स्वधर्मी हो या परधर्मी, किसी के भी साथ वचन-विवाद करना उचित नही ।

As there are various kinds of (mundane) souls various kinds of karmas and various kind of attainments hence one should not indulge in the disputes of speech (Vachan-vivada/wordy warfare) with any body whosoever he be whether he be a co-reglionist or one belonging to a different religion. (735)

मिथ्या दर्शन संग भी, अमृत रस बरसाय।
जिन वाणी भगवान की, मंगल सब कर पाय ।।४.४१.१५.७३६।।

भद्दं मिच्छादंसण-समूहमहयस्य अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगममस्स ।।१५।।

भद्रं मिथ्यादर्शनसमूहमयस्य अमृतसारस्य् ।
जिनवचनस्य भगवतः संविग्नसुखाधगम्यस्य ।।१५।।

मिथ्यादर्शनों के समूहरूप, अमृतरस- प्रदायी और अनायास ही मुमुक्षुओं की समझ में आनेवाले वन्दनीय जिनवचन का कल्याण हो।

May the preachings of Jina (Jina vachan) which are as venerabal as Jina himself. Likely to easily understood by those who aspire salvation and which are the embodiments of the group of wrong beliefs converted into Right belief by th application of polyism and Relativisim (Ani kant avada and syadavada) live long. (736)

प्रकरण ४२ - निक्षेप-सूत्र

Chapter 42 - Precepts On Installation

युक्तिपूर्वक उपयुक्त कहा, स्थापना और भाव ।
नाम द्रव्य यह चार है, निक्षेप सूत्र प्रभाव ।।४.४२.१.७३७।।

जुत्तीस-जुत्तमगे जं चउभेएण होइ खलु ठवणं ।
कज्जे सदि णामादिसु तं णिक्खेवं हवे समए ।।१।।

युक्तिसुयुक्तमार्गे, यत् चतुर्भेदेन भवति खलु स्थापनम् ।
कार्ये सति नामादिषु, स निक्षेपो भवेत् समये ।।१।।

युक्तिपूर्वक, उपयुक्तमार्ग में प्रयोजनवश नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव में पदार्थ की स्थापना को आगम में निक्षेप कहा गया है।

According to "Agam", "Nikshepa" is the rational and purposeful representation of and object in proper way, in name (or negative aspect), represented on (Sthapana/Installed by), Substance (Dravya) and present natural attribute (Bhava). (737)

द्रव्य विविध स्वभाव का, जिससे भी हो ज्ञान ।
निमित्त उसके ही किये, चार अंग द्रव्य समान ।।४.४२.२.७३८।।

दव्वं विविह-सहावं, जेण सहावेण होइ तं झेयं ।
तस्स णिमित्तं कीरइ एक्कं पि य दव्व चउभेयं।।२।।

द्रव्यं विविधस्वभावं, येन स्वभावेन भवति तद्ध्येयम् ।
तस्य निमित्त क्रियते, एकमपि च द्रव्यं चतुर्भेदम् ।।२।।

द्रव्य विविध स्वभाववाला है। उनमें से जिस स्वभाव के द्वारा वह ध्येय या ज्ञेय (ध्यान या ज्ञान) का विषय होता है उस स्वभाव के निमित्त एक द्रव्य के ये चार भेद किये गये हैं ।।

नाव, भाव, स्थापन द्रव्य निक्षेप चार प्रकार।
द्रव्य नाम संज्ञा सदा, इसके भी दो तार ।।४.४२.३.७३९।।

णाम ट्ठाणा दव्वं, भावं तह जाण होइ णिक्खेवं ।
दव्वे सण्णा णामं दुविहं पि य तं पि विक्खायं ।।३।।

नाम स्थापनां द्रव्यं, भावं तथा जानीहि भवति निक्षेपः।
द्रव्ये संज्ञा नाम, द्विविधमपि च तदपि विख्यातम् ।।३।।

और (इसीलिए) निक्षेप चार प्रकार का माना गया है– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। द्रव्य की संज्ञा को नाम कहते है। उसके भी दो भेद प्रसिद्ध है।

And (therefor); "Nikshepa" is of four kinds : Name, Representation/Installation, Substance and Present Natural attribute. Natural attribute.Name is the noun of substance. It is of two main kinds. (739)

स्थापना साकार करे, कृत्रिम बिम्ब बनाय ।
इधर उधर अर्हन्त दिखे, निराकार कहलाय ।।४.४२.४.७४०।।

सायार इयर ठवणा, कित्तिम इयरा हु 'बिंबजा पढमा।
इयरा खाइय भणिया, ठवणा अरिहो य णायव्वो।।४।।

साकारोत्तरा स्थापना, कृत्रिमेतरा हि विम्बजा प्रथमा।
इतरा इतरा भणिता, स्थापनाऽर्हश्चं ज्ञातव्य ।।४।।

जहाँ एक वस्तु का किसी अन्य वस्तु में आरोप किया जाता है वहाँ स्थापना निक्षेप होता है। यह दो प्रकार का है– साकार और निराकार। कृत्रिम और अकृत्रिम अर्हन्त की प्रतिभा साकार स्थापना है तथा किसी अन्य पदार्थ में अर्हन्त की स्थापना करना निराकार स्थापना है।

("Sthapananikshepa" is representation or Installation of one thing by another; this is of two kinds: Sakar (Formal) and Nirakar (Formless/Informal). The natural and artificial image of arhat is (an example of) Sakarasthapana (Formal/Figurative); and the representation of Arhat in some other objects is (an example of) Nirkarsthapana(Informal/Unfigurative). (740)

नोआगम आगम कहे, द्रव्यनिक्षेप दू जात।
शास्त्र ज्ञान अर्हन्त का, कर उपयोग न पात ।।४.४२.५.७४१।।
ज्ञायतन, भावी, करम, नोआगम के भाग।
च्युत, त्यक्त, च्यावित रहे ज्ञानी तन त्री राग ।।४.४२.६.७४२।।

दव्वं खु होइ दुविहं, आगम–णोआगमेण जह भणियं ।
अरहंत–सत्थ–जाणो, णोजुत्तो दव्व–अरिहंतो ।।५।।
णोआगमं पि तिविहं, णाणिसरीरं भावि कम्मं च ।
णाणिसरीरं तिविहं, चुद चत्तं चाविदं चेति ।।६।।

द्रव्यं शखलु भवति द्विविधं, आगममनोआगमाभ्याम् यथा भणितम् ।
अर्हत् शास्त्रज्ञायकः अनुपयुक्तो द्रव्यार्हन् ।।५।।
नोआगमः अपि त्रिविधः, देहो ज्ञानिनो भावकिर्म च ।
ज्ञानिशरीरं त्रिविधं, च्युतं त्यक्तं च्यावितम् च इति ।।६।।

जब वस्तु की वर्तमान अवस्था का उल्लंघन कर उसका भूतकालीन या भावी स्वरूपानुसार व्यवहार किया जाता है, तब उसे द्रव्यनिक्षेप कहते हैं। उसके दो भेद है– आगम और नोआगम। अर्हन्तकथित शास्त्र का जानकार जिस समय उस शास्त्र में अपना उपयोग नहीं लगाता उस समय वह आगम द्रव्यनिक्षेपे अर्हन्त है। नोआगम द्रव्यनिक्षेप के तीन भेद हैं– ज्ञायकशरीर, भावी और कर्म। जहाँ वस्तु के ज्ञाता के शरीर को उस वस्तुरूप माना जाय वहाँ ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्यनिक्षेप है। जैसे राजनीतिज्ञ के मृत शरीर को देखकर कहना कि राजनीति मर गयी। ज्ञायकशरीर भी भूत, वर्तमान और भविष्य की अपेक्षा तीन प्रकार का तथा भूतज्ञायक शरीर च्युत, त्यक्त और च्यावित रूप से पुनः तीन प्रकार का होता है। वस्तु को जो स्वरूप

भविष्य में प्राप्त होगा उसे वर्तमान में ही वैसा मानना भावी नोआगम द्रव्यनिक्षेप है ।जैसे युवराज को राजा मानना तथा किसी व्यक्ति का कर्म जैसा हो अथवा वस्तु के विषय में लौकिक मान्यता जैसी हो गयी हो उसके अनुसार ग्रहण करना कर्म या तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यनिक्षेप है । जैसे जिस व्यक्ति में दर्शन विशुद्धि, विनय आदि तीर्थकर नामकर्म का बन्ध करानेवाले लक्षण दिखाई दे उसे तीर्थकर ही कहना अथवा पूर्वकलश, दर्पण आदि पदार्थो को लोक–मान्यतानुसार मांगलिक कहना ।

"Dravyanikshepa" (Taking the potential for the actual) is there, where there is a transaction in accordance with the past or future shape of an object, disregardful of its present state. It is of two kinds: 1. Agam-Dravya-Nikshepa (Attention-Substance-Aspect); and 2. No-Agam-Dravyanikshepa (Quasi attention-Substanceaspect). For example when the knower of the scripture of arhat does not attend that scripture it is called Arhat, according to Agam-Dravya-Nikshepa (attention-substanceaspect). No Agam Dravya Nikshepa (Quasi attention substance aspect) is of three kinds:- 1. Jnayaka-sarir (body of the knower); 2. Bhavi (Attributing to the body in the present a conduction of some future existence after death); and 3. Karma (Tadvyatirikta) (attributing to the body the karma matter by which it will acquire only particular condition. The Jnayak sarir No Agam Dravya nikshepa is there; where the body of the knower of that object is considered to be equal to that thing for example, "to say that politics is dead by just seeing the dead body of a politician. The body of the knower (Jnayak) (sarir) is of three kinds: 1. Past 2. Present and 3. Future The past body of the knower (Bhuta-Jnayaksarir) is again of three kinds : 1. Fallen (cyst); 2. Deserted (Tyakta) and 3. Dripped (Chyavita). Bhavi no agam-Dravya nikshepa is that according to which an object is at present considered of the shape it is to acquire in future. For example; to consider a prince designates as the king.The karma (Tadvyatirikta) no Agam Dravya nikshepa is attributing the karmic matter of one's deeds to his body or under standing a thing in accordance with the general recognition about it for example to call a man equipped with the attributes of Darshan visuddhi, vinaya and other characteristics of a would be tirthankar as tirthankar; or to call the filled up pitcher, looking glass etc. as auspicious, in view of general recognition thereof. (741 & 742)

भाव–आगम निक्षेप है, नोआगम भी भाव ।
शास्त्र ज्ञायक आगम हो, अरिहंत आगमभाव ।।४.४२.७.७४३।।
अरिहंत गुण को प्रकट, नोआगम के भाव ।
ज्ञानी केवल कहे उसे, नोआगम स्वभाव ।।४.४२.८.७४४।।

आगम–णोआगमदो तहेव भावो वि होदि दव्वं वा ।
अरहंत–सत्थ–जाणो आगमभावो हु अरहंतो ।।७।।
तग्गुणराय–परिणदो णो–आगमभाव होइ अरहंतो।
तग्गुणराई झादा केवलणाणी हु परिणदो भणिओ ।।८।।

आगमनोआगमतस्तथैव भावोऽपि भवति द्रव्यमिव ।
अर्हंत् शास्त्रायकः, आगमभावो हि अर्हन् ।।७।।
तद्गुणैश्च परिणतो, नोआगमभावो भवति अर्हन् ।
तद्गुणैर्ध्याता, केवलज्ञानी हि परिणतो भणितः ।।८।।

तत्कालीन पर्याय के अनुसार ही वस्तु को सम्बोधित करना या मानना भावनिक्षेप है। इसके भी दो भेद है– आगम भावनिक्षेप और नोआगम भावनिक्षेप । जैसे अर्हन्त–शास्त्र का उसी समय अर्हन्त है; यह आगम भावनिक्षेप है। जिस समय उसमें अर्हन्त के समस्त गुण प्रकट हो गये हैं उस समय उसे अर्हन्त कहना तथा उन गुणों से युक्त होकर ध्यान करनेवाले को केवलज्ञानी कहना नोआगमभावनिक्षेप है।

"Bhavanikshepa" (positive aspect or present natural attribute) consists of giving a thing a name, counting the attributes of its present condition only. It is of two kinds: 1. Agam-Bhava-nikshepa (When the soul knows and is actually attentive); and 2. No Agam bhavnikshepa (When the actual present condition of a material thing is referred to). To illustrate again Bhavnikshepa; when the knower of Arhat shastra (The scripture of Arhat) as paying his attention to that knowledge, he is Arhat. No-Agam-Bhav-nikshepa calls a man Arhat when he attains all the attributes of Arhat and call a man omniscient (one with perfect knowledge/keval Jnani) when he (Arhat) meditates manifested with those attributes. (743 & 744)

प्रकरण ४३ - समापन-सूत्र
Chapter 43 - Towards End

अनुत्तरज्ञानी व दर्शी, ज्ञान देय भगवान ।
ज्ञातपुत्र महावीर ने, वैशाली व्याख्यान ।।४.४३.१.७४५।।

एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी, अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाण दंसणधरे ।
अरहा नायपुत्ते भगवं, वेसालिए वियाहिए त्ति बेमि ।।१।।

एवं स उदाहृतवान्-अनुत्तरज्ञा-न्यनुत्तरदर्शी अनुत्तरज्ञानदर्शनधरः ।
अर्हन्ज्ञातपुत्रो भगवान, वैशालिको व्याख्यातवानिति ब्रवीमि ।।१।।

इस प्रकार यह हितोपदेश अनुत्तरज्ञानी, अनुत्तरदर्शी तथा अनुत्तरज्ञानदर्शन के धारी ज्ञातपुत्र भगवान, महावीर ने विशाला नगरी में दिया था।

This benedictory sermon (Hetopadesha) was delivered by lord Mahavir the son of jnat the silent knower (Anutter-darshi) and the silent embodiment of knowledge and perception (Anuttar-jnan darshan-dhari) in the city of (Vaishali). (745)

नही सुना ना ही गुना, महावीर का ज्ञान ।
सामायिक उपदेश थे, नहीं आचरण जान ।।४.४३.२.७४६।।

ण हि णूण पुरा अणुस्सयं, अदुवा तं तह णो अणुट्ठियं ।
मुणिणा सामाइ आहियं, णाएण जग-सव्व-दंसिणा।।२।।

नहि नूनं पुराऽ नुश्रुतम-थवा तत्तथा नो समुत्थितम् ।
मुनिना सामायिकाद्याख्यातं, ज्ञातेन जगत्सर्वदर्शिना ।।२।।

सर्वदर्शी ज्ञातपुत्र भगवान, महावीर ने सामायिक आदि का उपदेश दिया था, किन्तु जीव ने उसे सुना नही अथवा सुनकर उसका सम्यक् आचरण नहीं किया ।

The omni percept son of jnat, lord Mahavir had preached about equanimity (Samauik) etc. but the mundane souls either did not listen to it or having listened to it did not follows it same. (746)

आत्मा जाने लोक भी, आगति नागति ज्ञान।
जन्म मरण नित्यो-अनित्य, चयनादि अपि जान ।।४.४३.३.७४७।।

जिसे सत्य का ज्ञान है, संवर आस्रव सार।
जाने दुख और निर्जरा, सम्यक् कथन अधिकार ।।४.४३.४.७४८।।

अत्ताण जो जाणइ जो य लोगं जो आगतिं जाणइऽणागतिं च ।
जो सासयं जाण असासचं च जातिं मरणं च चयणोववातं ।।३।।

अहो वि सत्ताण वि उट्टणं च, जो आसवं जाणति संवरं च ।
दुक्खं च जो जाणइ णिज्जरं च, सो भासिउ-मरिहति किरियवादं ।।४।।

आत्मानं यः जानाति यश्च लोकं यः आगतिं नागतिं च ।
यः शाश्वतं जानाति अशाश्वतं च जातिमरणं च च्यवनोपपातम्।।३।।

अधः अपि सत्त्वानाम् अपि ध्वं य आस्रवं जानाति संवरं च ।
दुःखं चं यः जानाति निर्जरां च सभाषितुम् अर्हति क्रियावादान् ।।४।।

जो आत्मा को जानता है लोक को जानता है, आगति और अनागति को जानता है, शाश्वत-अशाश्वत, जन्म-मरण, चयन और उपवाद को जानता है, आस्रव और संवर को जानता है, दुःख और निर्जरा को जानता है वही क्रियावाद का अर्थात् सम्यक् आचार-विचार का कथन कर सकता है।

He (alone) can properly preach about Right thought and Right conduct (samyak acharvichar) i.e. ritualism (kriyavad), who knows present and future immortal and mortal birth and death dripping and being reborn in heavens; inflow and stoppage of karmas; sorrow and shedding off of karmas. (747 & 748)

मिला कभी ना पूर्व में, जिन का अमृत सार।
सुगति मार्ग जो मिल गया, भय मरना बेकार ।।४.४३.५.७४९।।

लद्धं अलद्ध-पुव्वं, जिण-वयण-सुभासिदं अमिद-भूदं ।
गहिदो सुग्गइ-मग्गो, णाहं मरणस्स बीहेमि ।।५।।

लब्धमलब्धपूर्वं, जिनवचन-सुभाषितं अमृतभूतम्।
गृहीतः सुगतिमार्गो नाहं मरणाद् बिभेमि ।।५।।

जो मुझे पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ वह अमृतमय सुभाषित जिनवचन आज मुझे उपलब्ध हुआ है और तदनुसार सुगति का मार्ग मैंने स्वीकार किया है। अतः अब मुझे मरण का कोई भय नही है।

I have attained that well said vector like preachings of jina (jinavachan) today that I never attained so far. I have accordingly adopted that way of achieving higher grade of life. I do not fear death now. (749)

प्रकरण ४४ - वीरस्तवन

Chapter 44- Hymn To Mahavira

ज्ञान दर्शन की शरण, चरित्र है मम धीर ।
तप संयम की शरण मैं, मैं शरण महावीर ।।४.४४.१.७५०।।

णाणं सरणं में, दंसणं च सरणं च चरिय सरणं च ।
तव, संजमं च सरणं, भगवं सरणो महावीरो ।।१।।

ज्ञानं शरणं मम, दर्शनं च शरणं च चारित्र शरणं च ।
तपः संयमश्च शरणं, भगवान् शरणो महावीरः ।।१।।

ज्ञान मेरा शरण है, दर्शन मेरा शरण है, चारित्र मेरा शरण है, तप और संयम मेरा शरण है तथा भगवान महावीर मेरे शरण है ।

I am under the shelter of knowledge; I am under the shelter of perception; I am under the shelter of conduct; I am under the shelter of austerities and restraints; and I am under the shelter of lord Mahavir. (750)

केवलज्ञानी सर्वदर्शी, मूल, स्थित, धीरवान ।
भयरहित अपरिग्रही, सर्वजगत विद्वान।।४.४४.२.७५१।।

से सव्वदंसीअभिभूय णाणी, णिरामगंधे धिइयं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ।।२।।

स सर्वदर्शीअभिभूज्ञानी, निरामगन्धो धृतिमान् स्थितात्मा ।
अनुत्तरः सर्वजगति विद्वान्, ग्रन्थादतीतः अभयोऽनायुः ।।२।।

वे भगवान महावीर सर्वदर्शी, केवलज्ञानी, मूल और उत्तर-गुणों सहित विशुद्ध चारित्र का पालन करनेवाले, धैर्यवान और ग्रन्थातीत अर्थात् अपरिग्रही थे। अभय थे और आयुकर्म से रहित थे ।

Lord Mahavir was omnipercept, omniscient follower of pure conduct with all its basic/original (Mula) and subsequent/ posterior (uttar) attributes, Enduring, possessionless anthatila/ devoid of knots) fearless and free of age karma.(751)

अनियताचारी, केवली, अनन्तदर्शी, भव पार।
अग्नि से ज्यूँ तम मिटे, ज्ञान से अंधकार ।।४.४४.३.७५२।।

से भूइ-पण्णे अणिएय-चारी, ओहंतलरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्ते तवति सूरिए व, वइरोयणिंदे व तमं पगासे ।।३।।

स भूतिप्रज्ञोऽनिकेतचारी, ओघन्तरो धीरोऽनन्तचक्षुः ।
अनुत्तरं तपति सूर्य इव, वैरोचनेन्द्र इव तमः प्रकाशयति।।३।।

वे वीरप्रभु अनन्तज्ञानी, अनियताचारी थे। संसार-सागर को पार करनेवाले थे। धीर और अनन्तदर्शी थे। सूर्य की भाँति अतिशय तेजस्वी थे। जैसे जाज्वल्यमान अग्नि अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश फैलाती है, वैसे ही उन्होंने भी अज्ञानांधकार का निवारण करके पदार्थों के सत्यस्वरूप को प्रकाशित किया था।

Lord Mahavir had infinite knowledge (Anant jnani) and indefinite conduct (Aniyata chari/of unfixed/indeterminate conduct. He had succeeded in crossing the ocean of the world. He was enduring and possessed of infinite perception (Anantdarshi). He was extremely brilliant (Tejasvi/illustrous) like sun just as fireablaze/destroys darkness and brings enlightenment; similarly lord Mahavir had removd the darkness of ignorance and thrown light on the true nature of essential elements (Padartha). (752)

ज्ञानी अनन्त अनिकेत है, अनन्त दर्शी धीर।
सूर्य सा है तेजस्वी, तम निवारण वीर ।।४.४४.४.७५३।।

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो, णिव्वाण वादी–णिह नायपुत्ते।।४।।

हस्तिष्वेरावणमाहुः ज्ञातं, सिंहो मुगाणां सलिलानां गङ्गा ।
पक्षिषु वा गरुडो वैनतेयः निर्वाणवादिनामिह ज्ञातपुत्रः ।।४।।

जैसे हाथियों में ऐरावत, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा, पक्षियों में वेणुदेव (गरुड़) श्रेष्ठ हैं, उसी तरह निर्वाणवादियों में ज्ञातपुत्र (महावीर) श्रेष्ठ थे।

The son of Jnat (Mahavir) was best of all the propounders of salvation (Nirvanvadis), in the manner in which Airavat is best of all the animals, Ganga is best of all the rivers; and eagles (venudev/Garud) is best of all the birds. (753)

अभय दान में श्रेष्ठ है, वचन न पीड़ा तीर।
तप में उत्तम ब्रह्मचर्य श्रमण श्रेष्ठ महावीर ।।४.४४.५.७५४।।

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति ।
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ।।५।।

दानानां श्रेष्ठमभयप्रदानं, सत्येषु वा अनवद्यं वदन्ति।
तपस्सु वा उत्तमं ब्रह्मचर्यं, लोकोत्तमः श्रमणो ज्ञातपुत्रः ।।५।।

जैसे दानों में अभयदान श्रेष्ठ है सत्यवचनों में अनवद्य वचन (पर–पीड़ाजनक नहीं) श्रेष्ठ है। जैसे सभी सत्यतपों में ब्रह्मचर्य उत्तम है, वैसे ही ज्ञातपुत्र श्रमण लोक में उत्तम थे।

The supermost saint son of Jnata was supreme in the universe in the like manner in which the charity of protection (Abhaya-dan) is supermost of all the charities in which flawless and blameless speech (Anavadya-vachan) is supermost of all the true speeches; and celibacy (Brahma-charya) is supermost of all the true austerities (Satya-tapa). (754)

ज्ञात योनि जीव जगत, गुर जग आनन्द जान ।
नाथ जगत है बंधु जगत, महावीर भगवान ।।४.४४.६.७५५।।

जयइ जगजीवजोणी-वियाणओ जगगुरु जगाणंदो ।
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ।।६।।

जयति जगज्जीवयोनि-विज्ञायकों जगद्गुरुर्जगदानन्दः ।
जगन्नाथो जगद्बन्धु-र्जयति जगन्पितामहो भगवान् ।।६।।

जगत् के जीवों की योनि अर्थात् उत्पत्तिस्थान को जाननेवाले, जगत् के गुरु, जगत् के आनन्ददाता, जगत् के नाथ, जगत् के बन्धु, जगत् के पितामह भगवान जयवन्त हों।

May the lord-who knows the Yonis (breeding-centers/ generation centers) of all the living beings of the universe; who gives joy to universe; who is the lord of the universe; the brother of the universe and the great grant father of the universe be ever victorious. (755)

ज्ञाता हैं श्रुतज्ञान के, ये तीर्थंकर वीर।
लोक गुरु जयवन्त कहो, ये वीर महावीर ।।४.४४.७.७५६।।

जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरु लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ।।७।।

जयति श्रुतानां प्रभवः, तीर्थ कराणामपश्चिमो जयति।
जयति गुरुर्लोकनां, जयति महात्मा महावीरः ।।७।।

द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान के उत्पत्तिस्थान जयवन्त हों, तीर्थकरों में अन्तिम जयवन्त हों। लोकों के गुरु जयवन्त हों। महात्म महावीर जयवन्त हों।

May the generation center of scriptural knowledge, that consists of twelve limbs (Dwada sanga-vani) the last amongst the twenty four tirthankars be victorious; May the great soul Mahavir be victorious. (756)

(इति खंड - ४)